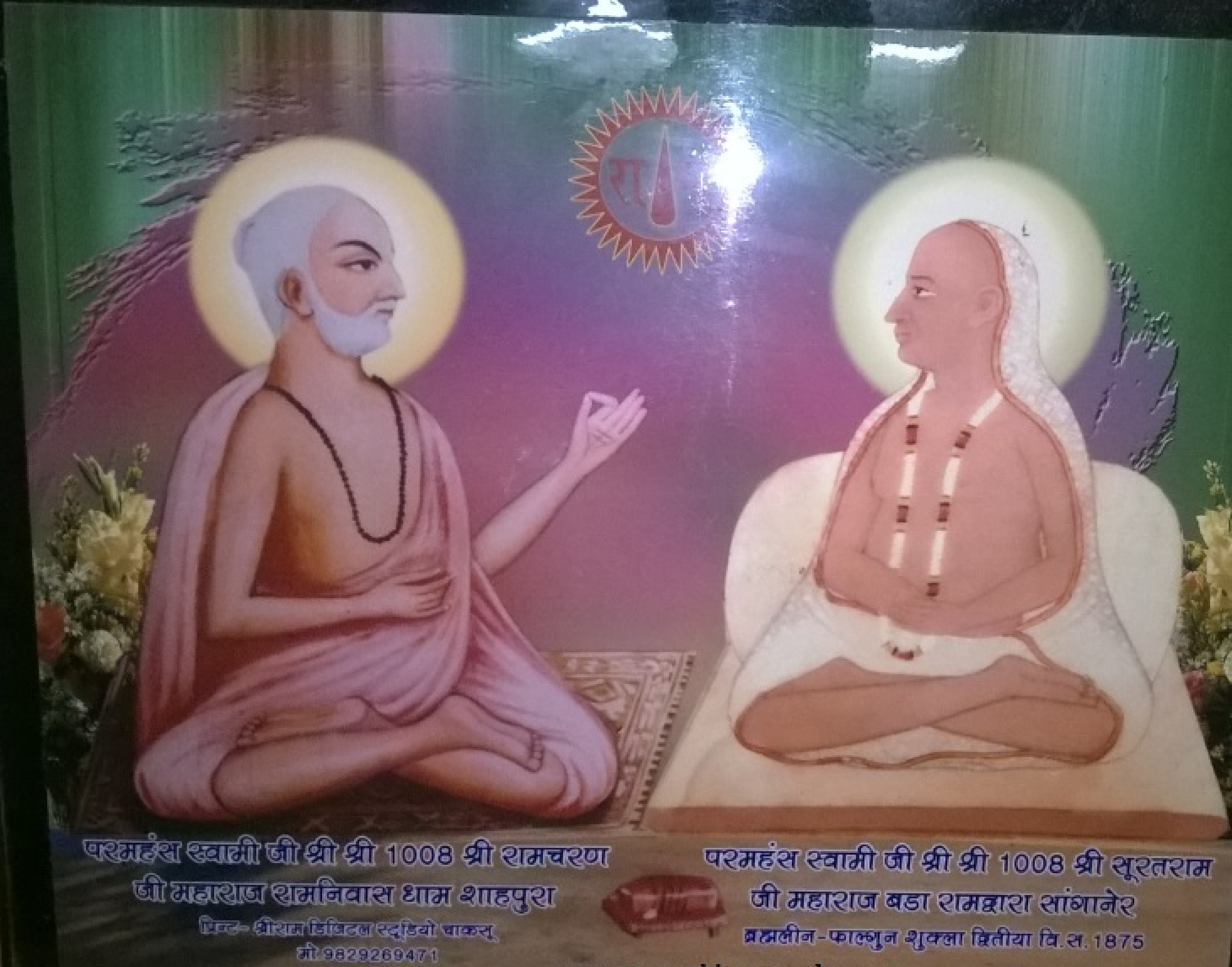

www.ramsnehisampraday.com

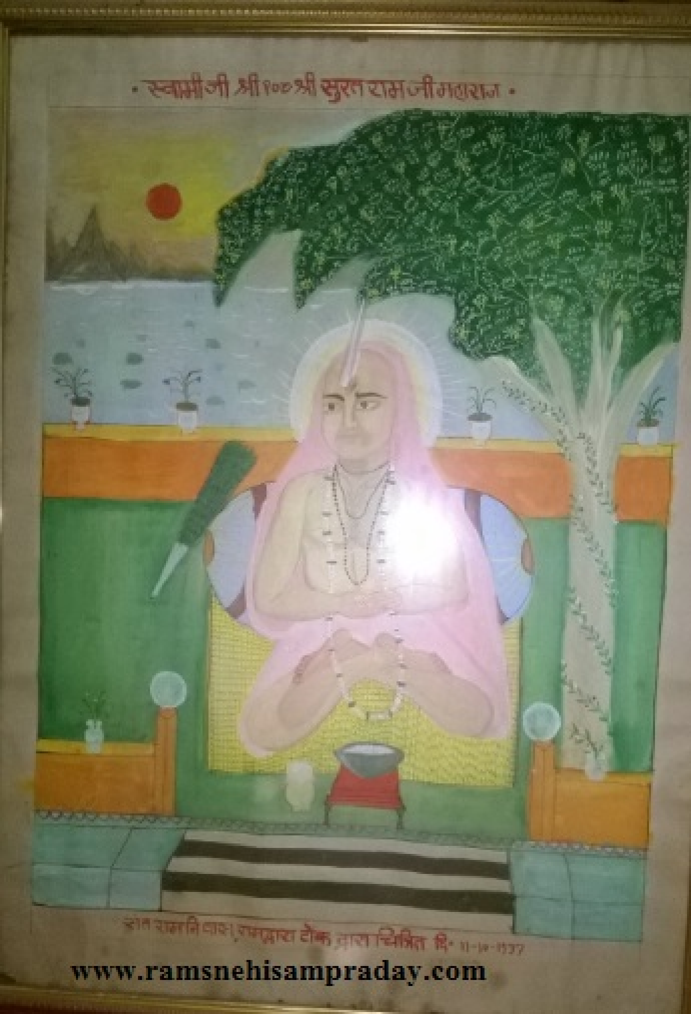

www.ramsnehisampraday.com

अन्तर्राष्ट्रीय श्रीरामस्नेही सम्प्रदाय का मुख-पत्र

श्रीरामस्नेही सन्देश

रामस्नेही दिव्य सन्देश मेतत् सम्यक् चित्ता: श्रद्धया ये पठन्ति।
भक्तिरेषा श्रीहरिपाद पद्मे गेहे-गेहे सत्कथा मङ्गलानि॥

रमतीत राम गुरुदेवजी पुनि तिहूँ कालके सन्त। जिनकूँ रामचरण की वन्दन बार अनंत ॥

श्रीपरमहंस वाणी विशेषांक

विषय-सूची

श्रीरामस्नेही संदेश, वैक्रमीयाब्द-२०४२ रामचरणाब्द २६६

विषय	पृष्ठ संख्या	विषय	पृष्ठ संख्या
सम्पादकीय	क	रेखता संभाग	६०
आत्मनिवेदन	ख	ग्रन्थ संभाग	
अनुभव वाणी-स्तुति	१	गुरु प्रकाश	६४
साखी सम्भाग	७	नाम बत्तीसी	६६
चन्द्रायणा संभाग	४४	चेतावनी बोध	१००
सवैया संभाग	६१	कका बत्तीसी	१०२
झूलणा संभाग	७२	भ्रम–खण्डन	१०३
कबित्त संभाग	७४	सत्संग सार	१०५
कुण्डल्या संभाग	७८	आरति	११६

चित्र-सूची

१. 'परमहंस' अष्ठोत्तरशत श्रीस्वामी सुरतरामजी महाराज
२. श्रीस्वामी रामबक्षजो महाराज
३. श्रीरामनिवासधाम में श्रीपरमहंस महाराज की समाधि
४. श्रीपरमहंस महाराज की फूल समाधि

वार्षिक सदस्यता शुल्क
भारत में–११.०० रुपये
विदेश में–३१.०० रुपये

वर्ष-३ अंक-१

आजीवन सदस्यता शुल्क
भारत में–१०१.०० रुपये
विदेश में–३५१.०० रुपये

सम्पादक :—सन्त उत्तमराम 'रामस्नेही'
ब्रजेन्द्र कुमार सिंहल

सम्पादकीय

श्रीरामस्नेही संदेश नाम्नी त्रैमासिक पत्रिका का सम्पादन तथा प्रकाशन वि० सं० २०३६ के फूलडोल महोत्सव से श्रीरामस्नेही युवा संत परिषद् के तत्वाधान में प्रारम्भ हुआ। जहाँ एक ओर संदेश के माध्यम से सनातन धर्म की सेवा करने का लक्ष्य रखा गया वहीं दूसरी ओर सम्प्रदाय के साहित्य, जो कर्पट मंजुषाओं के आवेष्टनों से अलंकृत हुआ रामद्वारों की शोभा बढ़ा रहा है, को सर्व साधारण को सुलभ कराने का भी रखा गया।

इसी क्रम में 'परमहंस' अष्टोत्तरशत श्रीस्वामी सुरतरामजी महाराज की अनुभव वाणी के पूर्वार्ध का प्रकाशन किया जा रहा है। श्रीपरमहंस स्वामी की सपूर्ण अनुभव वाणी का परिमाण अनुष्टुप श्लोकांक १०१५७ है जिसमें से पूर्वार्ध में मात्र २०५४ श्लोकांक परिमाण अनुभव वाणी का ही प्रकाशन हो रहा है। प्रकाशित वाणी—साखी ४३६, चंद्रायणा ३१६, सवइया १५०, भूलणा ३१, कवित्त ७०, कुण्डल्या ३८७ रेखता १०१, गुरुप्रकाश ६१, नाम बत्तोसी ८३, चेतावनी बोध ४२, ककाबत्तीसी ४१, भ्रमखण्डन ५६ सत्संगसार २७७ तथा अप्रकाशित वाणी—मननिरुपण १६५, ज्ञान-सागर २२००, विचारबोध ७४७, सुमरणबोध १६१५, सुखबोध २६१०, पद ४६६ सर्ववाणी परिमाण श्लोकांक १०१५७ है। पत्रा तथा पुस्तक-दोनों ही उपलब्ध प्रतियों में मननिरुपण नाम का ग्रंथ उपलब्ध नहीं होता। इसको प्राप्त करने का हमने अन्यत्र भी प्रयास किया किन्तु यह ग्रंथ उपलब्ध नहीं हो सका यदि उत्तरार्द्ध प्रकाशन के समय यह ग्रंथ उपलब्ध हो सका तो निश्चय ही इसे भी प्रकाशित किया जायगा। श्रीब्रजेन्द्रकुमारजी सिंहल श्रीपरमहंस स्वामी के स्तम्भ तथा अनुभव वाणी के बारे में गंभीर विवेचन भूमिका के रूप में देना चाहते थे किन्तु कई कारणों से उसे हम नहीं दे पाये हैं। इस पुस्तक को मूर्तरूप देने में श्रध्देय महंत श्रीस्वामी रामबक्षजी महाराज, सांगानेर तथा महंत श्रीस्वामी कीतिरामजी महाराज, सवाईमाधोपुर के प्रति श्रद्धावनत होना हम अपना परम कर्तव्य समझते हैं। समय-समय पर पाठ संशोधन, पाठ मिलान शब्दार्थों का विनिश्चय आदि में यदि इन दोनों ही महापुरुषों का सहयोग नहीं रहा होता तो बहुत सम्भव है पुस्तक इस रूप में सभी के समक्ष प्रस्तुत न हो पाती। प्रूफ संशोधन में बाड़मेर के संत श्रीरामस्वरूपजी दर्शन—व्याकरणाचार्य का अवर्णनीय सहयोग रहा है। संप्रदायेतर सहयोगियों में महन्त श्रीरामप्रसादजी स्वामी (दादूपंथी-निवाई हवेली-जयपुर) का उनकी रुग्णावस्था में भी सहयोग मिलना हमारे उत्साह सम्वर्धन में बहुत ही प्रेरक रहा है। इन सभी के सहयोग से श्रीपरमहंस स्वामी की वाणी का पूर्वार्ध सभी के समक्ष प्रस्तुत है। आशा है पाठक वृन्द भ्रमरवत् सारग्राही बनकर इसका उपयोग करेंगे।

अन्त में, हम प्रिन्टिंगसेण्टर, चौड़ा रास्ता जयपुर के संस्थापक संचालक श्रीकल्याणजी शर्मा, श्रीशीतल शर्मा व उनके कर्मचारीवर्ग के प्रति आभार प्रदर्शित किये बिना भी नहीं रह सकते जिनके आत्मीय सहयोग के फलस्वरूप ही इस पुस्तक का इतना शीघ्र मुद्रण हो सका।

यद्यपि हमने प्रूफ संशोधन काफी सावधानी पूर्वक किया है किन्तु फिर भी कुछ अशुद्धियां रह ही गई हैं। हम समयाभाव के कारण शुद्धाशुद्ध पत्र भी नहीं लगा पा रहे हैं। आशा है, पाठक हमारी विवशताओं को ध्यान में रखते हुए क्षमा करेंगे।

—संत उत्तमराम 'रामस्नेही'

॥राम:॥

आत्मनिवेदन

यथास्तम्भाश्रयाऽभावे, न तिष्ठन्ति गृहाणि वै ।
तथा प्रचारकाऽभावे, न चलन्ति मतान्यपि ॥१॥

भवन का निर्माण नींव के अभाव में असम्भव है। नींव की गहराई, मोटाई, सुदृढ़ता, उसमें प्रयुक्त कच्चा माल, बनाने वाले कलाकार की सूझबूझ, चतुराई एवम् कला नैपुण्य ही भवन की दीर्घायुष्य का निर्णय करती है। नींव के अभाव में भवन का बनना, अस्तित्व में रहना तथा दीर्घकाल तक अपनी सेवा प्रदान करते रहना सर्वथा असम्भव है। समय-समय पर उसकी रख-रखाव (Maintenance) की व्यवस्था भी उतनी ही आवश्यक है जितनी बनाते समय उसकी सुदृढ़ता स्थायित्वादि के विषय में व्यवस्था करना आवश्यक समझा जाता है। ठीक इसी प्रकार, मत, पंथ, संप्रदाय, धर्म, दर्शन, विचारधारा आदि को अस्तित्व में लाने, प्रचारित करने, उत्तरोत्तर वृद्धि करने तथा वृद्धि को स्थायित्व प्रदान करने के लिए एक सुदृढ़ संस्थापक की तो आवश्यकता होती ही है, इसे भविष्य में सही दिशा देने, प्रचारित करने के लिये कुशल, ध्येयनिष्ठ, प्रपत्तिभावप्रधान, त्यागी, संयमी, चतुर, सूझबूझ से युगानुकूल समझौता करके चलने वाले अनुयायियों की भी परमावश्यकता होती है। आगामी समय में भवन की मरम्मत की भांति विचारधारा की युगानुकूल वृद्धि भी अपरिहार्य है। अन्यथा भवन आंधी अंधकार में तथा विचारधारा वाद विवाद के कंटकाकीर्ण पथ में विचलित होकर धराशाही होने में सर्वथा सक्षम हो जाते हैं। निष्कर्षत: मत पंथ मजहब आदि को चलाने के लिये संस्थापक तथा आगामी समय में होने वाले प्रचारकों एवं अनुयायियों का महत्व अतुलनीय है।

परम श्रद्धेय, प्रातर्वन्दनीय, कलिकल्मष कलित जीवोद्धारक, अनन्तश्री विभूषित परमहंस चक्र चूडामणि श्रीस्वामी रामचरण महाप्रभु ने निर्गुण भक्ति शून्य मेवाड़ देशस्थ भीलवाड़ा में विक्रम सम्वत् १८१७ में रामस्नेही सम्प्रदाय की नींव डाली। यह भक्ति रूपी वृक्ष मात्र मेवाड़ देश में ही पल्लवित पुष्पित नहीं हुआ बल्कि इसका विस्तार सम्पूर्ण संसार में हो गया। आज असंख्यों तनधारी उस भक्ति भागीरथी में स्नान कर-करके मोक्ष मार्गी बन रहे हैं, बने हैं तथा भविष्य में बनते रहेंगे।

इस पुण्य सलिला में प्रवृत्ति मार्गियों ने तो स्नान किया ही है, निवृत्तिमार्गी भी प्रतिस्पर्धा में पीछे नहीं रहे हैं। निवृत्तिमार्गियों का श्रीगणेश संत श्रीभक्तरामजी से होता है। इनके पश्चात् इसी वृद्धिगत माला को सुशोभित करते हुऐ ३६ वें* क्रमांक पर हमारे (चरित्र नायक) परमहंस श्रीस्वामी सुरतरामजी महाराज का नाम आता है।

---

*श्रीरामनिवास धाम शाहपुरा (मेवाड़) की बारहद्वारी की पूर्वाभिमुख भित्ति पर अंकित श्रीमहाराज की शिष्य नामावली का क्रमांक। संत श्रीभागीरथरामजी किशनगढ़ की सद्धर्म प्रबोध नाम्नी पुस्तक से ज्ञात होता है कि परमश्रद्धेय प्रातर्वन्दनीय, विद्यावाचस्पति नवमाचार्य श्रीस्वामी धर्मदासजी महाराज के कठोर अध्यवसाय से यह नामावली तैयार होकर, बारहद्वारी की भित्ति पर लिखवाई गई जिसका छंद चौबोल में इन्होंने पद्यानुवाद किया। रामस्नेही संप्रदाय शाहपुरा का जितना भी साहित्य प्रकाश में आसका है तथा जितना

परमहंस महाराज की गद्दी के वर्तमान महंत* श्रीस्वामी रामवक्षजी, आयुर्विद् की वर्षों से यह प्रबल इच्छा रही है कि परमहंस महाराज से सम्बद्ध संपूर्ण साहित्य प्रकाशित कराया जावें। इन पंक्तियों के लेखक का इस संप्रदाय का अनुयायी होने के नाते पूर्व से ही सम्पर्क था। लेखक ने परमहंस महाराज के बारे में जब सर्व प्रथम इदमित्थम् जानकारी करनी चाही तो महंत महाराज ने निस्संकोच भाव से 'वैराग्य बोध' तथा 'गुरुब्रह्मलीन योग' ग्रंथ की प्रतियाँ लेखक को थमाते हुए कहा कि आप इनके सम्पादन की व्यवस्था करें, प्रकाशन की व्यवस्था भी हो जायगी। लेखक का नया नया जोश तरंगें लेने लगा। फलतः परमहंस महाराज का एक संक्षिप्त जीवन परिचय तैयार कर लिया गया। वही संक्षिप्त परिचय 'परमहंस स्वामी श्रीसुरतरामजी महाराज' के नाम से विजयवर्गीय संदेश, कोटा से धारावाहिक रूप में अप्रेल १९७९ से जुलाई १९७९ तक प्रकाशित हुआ। संपूर्ण विषयवस्तु को मात्र १३ पृष्ठों में जिनका आकार २० × ३०/८ था, में समावेशित किया गया। कुछ साहित्य प्रकाशित हुआ किन्तु महंत महाराज की इच्छा तृप्त नहीं हो सकी। वे बराबर इस बात पर जोर देते रहे कि मूल ग्रंथों का सटिप्पण प्रकाशन होना ही चाहिये। पहले तो अपनी सीमाएं सोचकर मैं चुप हो गया किन्तु परम-श्रद्धेय, प्रातर्वंदनीय, श्रोत्रिय, ब्रह्मनिष्ठ मम गुरुदेव ज्योतिष-व्याकरण-संगीताचार्य महंत श्रीस्वामी कीर्तिरामजी महाराज, सवाई माधोपुर का निर्देशन मिल जायगा इस आशा के आधार पर मैंने हाँ भरली। मेरी साहित्य के प्रति अनुरक्ति, साहित्य की सेवा तथा साहित्यानुशीलन सभी कुछ इन्हीं महापुरुष की देन है। अतः इस क्षेत्र में यदि मेरे पास अपना कुछ है तो वह सभी कुछ इनकी महती कृपा का ही मधुर प्रसाद है। वस्तुतः मेरा अपना मेरे पास कुछ है ही नहीं। अस्तु !

हमें अपने विषय पर पुनः लौटना है। हम चर्चा कर रहे थे कि इन ग्रंथों का प्रकाशन किस शृंखला में आबद्ध होकर हुआ। सर्व प्रथम 'वैराग्य बोध' तथा 'गुरु ब्रह्मलीन योग' ग्रंथ प्रकाशित करने की योजना बनाई गई। तत्पश्चात मेरे मस्तिष्क में श्रीमहाराज का यह कथन—**काम्याँ वल्लभ कामणी अरु लोभ्याँ वल्लभ दाम। अमल्याँ वल्लभ अमल ज्यूं यूं साधाँ वल्लभ राम॥ यूं साधाँ वल्लभ राम, राम रट बिरह जगावै। बिरह जगावै प्रेम, प्रेम परकास करावै। परकास परस परमात्मा, पाय रहै बिश्राम। काम्याँ वल्लभ कामणी अरु लोभ्याँ वल्लभ दाम॥'**

अप्रकाशित लेखक को उपलब्ध हो सका है उसके आधार पर यही कहा जा सकता है कि इस नामावली में दिये गये क्रमांक सही नहीं है। इस कथन को पुष्ट करने में मात्र दो तीन उदाहरण ही पर्याप्त होंगे—

पूज्य परमहंसजी महाराज का दीक्षा सम्वत् १८२७ है। द्वितीयाचार्य श्रीस्वामी दूल्हैरामजी महाराज का दीक्षा सम्वत् १८३३ है। चतुर्थाचार्य श्रीस्वामी चतुरदासजी महाराज का दीक्षा सम्वत् १८२१ है। उक्त नामावली में नाम क्रमांक परमहंस महाराज का ३६ वाँ, तृतीयाचार्य महाराज का १७ वाँ तथा चतुर्थाचार्य महाराज का ३७ वें क्रमांक से ४० वें क्रमांक के मध्य है। (श्रीचतुरदासजी नाम के चार संत हुये) अब पाठक स्वयं विचार करें कि क्या उक्त नामावली के क्रमांक यथार्थ है ? पाठक उत्तर देंगे, नहीं। मैं भी पाठकों के उत्तर से सहमत हूं किन्तु उनको समाधान प्रदान करने की स्थिति में नहीं हूं। अतः मेरा सभी समालोचकों, विद्वानों तथा सुहृदय पाठकों से विनम्र निवेदन है कि वे जब तक कोई और व्यवस्थित साहित्य उपलब्ध नहीं हो जाता तब तक इसी नामावली के क्रमांकों को यथार्थ समझें व मानें। **द्रष्टव्य-रामस्नेही सम्प्रदाय पृष्ठ ४४, श्रीदूल्है चरितामृत १८, सद्धर्म प्रबोध २१-२४।**

* रामस्नेही सम्प्रदाय में प्रचलित परम्परा के अनुसार सवाईमाधोपुर, जयपुर (सांगानेर) व उदयपुर के गद्दी अधिष्ठाता अपने नाम के साथ मात्र 'बड़ासाध' पदवी लगा सकते है, महंत नहीं किन्तु हमने रामावत व अन्यान्य संप्रदायों में प्रचलित परम्परा के अनुसार मूल गद्दी अधिष्ठाता को 'आचार्य श्री' पदवी से अलंकृत करते हुए महंत पदवी से तीनों बड़ेसाधों को विभूषित करने का विनम्र प्रयास किया है। आशा है युगानकूल परिवर्तनों में इस परिवर्तन को भी स्वीकृति मिल सकेगी।

घूमने लगा। जिसमें कहा गया है कि जिस प्रकार कामी की प्रिय वस्तु कामिनी, [illegible] (धन) तथा अमल खाने वाले की अमल है उसी प्रकार साधुओं की प्रिय वस्तु परमप्रभु का [illegible] है। राम नाम सद्गुरुदेव से प्राप्त करके अहर्निश उसका जप किया जावे। जप स्वतः ही विरह उत्पन्न करा देगा। विरह परम प्रेमास्पद रामजी से प्रेम करा देगा तथा प्रेम परमप्रभु परमात्मा का प्रकाश [illegible] प्रकाश होने पर साधक स्वतः ही परमानंद स्वरूप बन जावेगा। बस जीवन का यही लक्ष्य है। [illegible] रामस्नेही साहित्य जितना भी अंगबद्ध स्वरूप में मिलता है वह समस्त इसी क्रम में अंग बद्ध मिलता है। [illegible] मेरे मस्तिष्क में यह बात कौंधी कि क्यों नहीं साखी संभाग के गुरुदेव के अंग से लेकर प्रेम प्रकाश [illegible] तक परमहंस महाराज की अनुभव वाणी भी इस प्रकाशन में जोड़ दी जावे। महंत महाराज से निवेदन [illegible] गया। उन्होंने आदेश ही नहीं दिया, साथ में समर्थन भी किया कि अनुभव वाणी तो साथ में देनी ही चाहिए [illegible] बात दिसम्बर १९७९ की है। उस समय ठीक इसी चिंतन के आधार पर सम्पादन किया गया। किन्तु [illegible] समुचित व्यवस्था न बैठ पाने के कारण प्रकाशन नहीं हो सका।

विक्रम सम्वत् २०३६ के फूलडोल महोत्सव से 'रामस्नेही संदेश' का प्रकाशन श्री रामस्नेही [illegible] परिषद् के तत्वावधान में प्रारम्भ हुआ। प्रेस वालों से परिचय बढ़ाना आवश्यक हो गया। [illegible] परिचय बढ़ा भी। परिणामतः इस ग्रंथ का भी प्रकाशन कराया जावे, ऐसा संकल्प महंत महाराज के [illegible] में पुनः जून १९८४ में आया। पांडुलिपि प्रेस में देने की तैयारी हो गई। बस, इसी मध्य मेरे मस्तिष्क [illegible] और बात आई। वह यह कि क्यों नहीं परमहंस महाराज की सम्पूर्ण अंग बद्ध अनुभव वाणी को ही सम्मिलित कर दिया जावे। महंत महाराज से निवेदन किया गया। उन्होंने सहर्ष आज्ञा प्रदान कर दी।

इन्हीं दिनों रामस्नेही संदेश सम्पादक संतश्रीउत्तमरामजी 'रामस्नेही'; वेदान्ताचार्य जयपुर आये। उनसे भी पुस्तक प्रकाशन सम्बन्धी चर्चा हुई तो उन्होंने प्रस्ताव रखा—"क्यों नहीं 'श्रीपरमहंसवाणी' का [illegible] रामस्नेही संदेश के विशेषांक के रूप में होवे"। बात उचित ही थी किन्तु उचित और अनुचित ठहराने का [illegible] कार हमारे पास सुरक्षित नहीं था, यह अधिकार तो महंतजी महाराज के पास ही सुरक्षित था जिसका [illegible] उन्होंने किया भी। उसी का सुमधुर परिणाम है कि 'श्रीस्वामी सुरतरामजी परमहंस महाराज की अनुभव [illegible] पूर्वार्ध' का प्रकाशन रामस्नेही संदेश के माध्यम से हो रहा है। मेरी योजना थी कि श्रीपरमहंस स्वामी के [illegible] ग्रंथ—'वैराग्य-बोध' तथा 'गुरु ब्रह्मलीन योग' ग्रंथों के साथ-साथ अनुभव वाणी मात्र रेखता संभाग तक [illegible] एवम् गंभीर टीका सहित संपादित होकर प्रकाशित होवे। मैंने इस सम्बन्ध में प्रयास किया भी [illegible] कवित्त संभाग तक पाठकों को उपलब्ध है। आगे की टीका टिप्पणी कई अप्रत्याशित कारणों से रोकनी [illegible] कुण्डल्या तथा रेखता भाग की टीका टिप्पणी तथा जीवन ग्रंथों के स्थान पर अनुभव वाणी के छोटे-छोटे [illegible] गुरुप्रकाश, नामबत्तीसी, ककाबत्तीसी, चेतावनी, भ्रम-खण्डन तथा सत्संग सार देने का निश्चय किया गया। [illegible] बड़े ग्रंथ–ज्ञान सागर, विचार बोध, सुमरण बोध, सुख बोध तथा पद सम्भाग उत्तरार्ध में देना निश्चय [illegible] गया। जीवन सम्बन्धी दोनों ग्रंथ भी उत्तरार्ध में ही देने निश्चय किये गये हैं। प्रयास करना ही हमारा [illegible] है, उसे पूरा करने की जिम्मेदारी श्रीमहाराज की अचिन्त्य महती कृपा पर अवलम्बित है।

जैसा ऊपर निवेदन किया जा चुका है कि मैं न तो लेखक हूँ, न सम्पादक हूँ और न [illegible] बस, 'स्वांतः सुखाय' तथा 'निज गिरा पावनि करन कारण रामजसु तुलसी कह्यो' (मानस) [illegible] कारण ही मेरी इस व्यापार में प्रवृत्ति हुई है। विद्वानों, समालोचकों, लेखकों एवम् सुहृदय पाठकों से [illegible] प्रार्थना है कि वे हंसवत् सारग्राही बनकर गुण रूपी मुक्ताओं को उपभोग करें तथा दोष रूपी शुक्तियों को [illegible] कर देवें। इसी शुभाशा के साथ—

श्रीरामचरण [illegible]
ब्रजेन्द्रकुमार सिंहल

श्रीस्वामी परमहंस महाराज का जीवन परिचय—

परमश्रद्धेय श्रीपरमहंस स्वामी के जीवन पर प्रकाश डालने के लिये संत श्रीरतनदासजी द्वारा विनिर्मित 'वैराग्यबोध' तथा 'गुरुब्रह्मलीनयोग'—दो ग्रंथ उपलब्ध हैं। प्रथम ग्रंथ का निर्माण समय वि० सं० १८२६ तथा द्वितीय ग्रंथ का निर्माण समय विक्रम सम्वत् १८७६ के इर्द-गिर्द है। जहाँ प्रथम ग्रंथ में श्रीपरमहंस स्वामी के प्रारम्भिक जीवन घटनाओं का उल्लेख है वहाँ द्वितीय ग्रंथ में मात्र अन्तिम समय की घटनाओं का उल्लेख है।

दोनों ग्रंथों के अनुशीलन से ज्ञात होता है कि श्रीपरमहंस स्वामी का जन्म मुहाना ग्राम बालनाथ कमधज राठौड़ वंशीय राजपूत परिवार में श्रीदेवीसिंहजी के घर में विक्रम सम्वत् १७६७ में हुआ था। घर, गाँव, देश सभी का पर्यावरण सगुण भक्तिमय था। भक्ति के संस्कारों से बालक रघुनाथसिंहजी का भगवद्भजन की ओर उन्मुख होना कोई आश्चर्य जनक घटना नहीं थी। उपयुक्त आयु होने पर विद्याध्ययन करना प्रारम्भ किया। राजशाही वर्ग से सम्बद्ध होने के कारण तत्कालीन अच्छे विद्वानों के सानिध्य में रह कर विद्याध्ययन किया, जिसका प्रभाव इनकी अनुभव वाणी में स्पष्टतः परिलक्षित होता है। विद्याध्ययन के समय सद्साहित्य के अध्ययन के फलस्वरूप इन्हें सांसारिक भोग विलास फीके लगने लगे। स्वरूप का बोध प्राप्त करने की उत्कंठ जिज्ञासा होने लगी। उस जिजिविषा के मान्यवर श्रोत्रिय एवं ब्रह्मनिष्ठ गुरु की खोज करने लगे। फलतः मुहाना में जो कोई भी साधु, संत, विद्वान् आते, उन्हीं से पूछते, स्वामिन्! मैं कौन हूँ, कहाँ से आया हूँ, क्यों आया हूँ, मेरा क्या कर्तव्य है, उस कर्तव्य का निर्वाह किस कार्य के संपादन से होगा आदि। कोई कुछ उत्तर देता, कोई कुछ। किन्तु कोई भी श्रीरघुनाथसिंहजी की इच्छित विषय वस्तु की जानकारी नहीं करा पाते। समय निकलता गया। आयु बढ़ती गई। एक दिन सोचा—समय निकल जायगा, मनुष्य जन्म प्राप्त करने का स्वर्णिम अवसर समाप्त हो जायगा और अन्त में 'कालहिं कर्महिं ईश्वरहिं मिथ्या दोष लगाय' वाली उक्ति चरितार्थ होने लगेगी। अतः समय का सदुपयोग करना ही चाहिये। इस प्रकार विचार कर ही रहे थे कि इनको एक जाग्रत स्वप्न हुआ जिसमें इन्होंने देखा कि काले कपड़े पहने, हाथ में मिट्टी की हांडी लिये हुये कोई संत गांव में आये हैं। उनसे राम चर्चा हुई। उन्होंने चेतावनी पूर्ण उपदेश दिया। इतना होते ही पुनः आँखें खुल गई। इस स्वप्न का इनके जीवन पर अत्यधिक प्रभाव पड़ा और इन्होंने पूर्ण यौवन भरी आयु में घर को परित्याग कर सद्गुरुदेव की खोज का रास्ता लिया। घूमते-घूमते सांगानेर ग्राम में आये। उस समय सांगानेर ग्राम में बाग बगीचों का बाहुल्य था। स्थान रमणीक तथा भजनानुकूल था अतः इन्होंने स्वयं ही ग्रहस्थोचित वस्त्रों को त्याग करके संन्यासाश्रम का भेष बना लिया। अनवरत रामभजन करने लगे किन्तु कोई एक निश्चित विचार धारा न मिलने के कारण उनकी साधना अपूर्ण ही रही। वे स्वयं भी अनुभव करते रहे कि बिना गुरु के साधना पूर्ण हो ही नहीं सकती। अतः किसी न किसी को गुरु बनाना ही चाहिये। संयोग की बात थी। परमश्रद्धेय प्रातःवंदनीय श्रीस्वामी रामप्रतापजी महाराज वि० सं० १८२७ के चातुर्मास प्रवास में सांगानेर के पास वाटिका ग्राम में विराजमान थे। श्रीपरमहंस स्वामी ने उनकी महिमा सुनी। दर्शनों की लालसा जाग्रत हुई। अन्त में, वाटिका पहुँच ही गये। श्रीपरमहंस स्वामी ने अपनी बीती सारी बातें बताई। श्रीस्वामीरामप्रतापजी ने सारी बातें सुनकर उन्हें सान्त्वना प्रदान की तथा सुझाव दिया कि मैं कुछ ही दिनों में अपने गुरु महाराज के दर्शनार्थ शाहपुरा जाऊंगा, तब आप भी मेरे साथ चल सकते हैं। सम्भव है आपके स्वप्न दृष्ट गुरु वे ही हों। श्रीपरमहंस स्वामी के बात समझ में आ गई। वे लगभग २ माह तक वाटिका में ही रहे। तत्पश्चात् श्रीस्वामी रामप्रतापजी महाराज के साथ शाहपुरा की ओर रामत कर गये। श्रीमहाराज के दर्शन किये। अपनी राम कहानी निवेदित की। श्रीमहाराज ने वास्तविक आत्मजिज्ञासु समझ कर ठाकुर श्रीरघुनाथसिंहजी को संत श्रीमुरतरामजी माघ शुक्ला एकादशी वि० सं० १८२७ को बना दिया। श्रीमहाराज द्वारा निर्दिष्ट साधन पद्धति के अनुसार रामभजन करने

लगे। निरन्तर रामनाम का स्मरण करना ही जीवन का लक्ष्य बन गया था। भजन करते करते स्थिति यहाँ तक पहुँच गई कि ये एक आसन से ७ दिन ७ रात तक लगातार राम भजन करते रहते थे।

यहाँ पर यह बतादेना भी अत्यावश्यक है कि जब ठाकुर श्रीदेवीसिंहजी आदि को यह ज्ञात हुआ कि रघुनाथसिंह स्वामी श्रीरामचरणजी महाराज शाहपुरा से दीक्षित होकर विरक्त वेश प्राप्त कर चुका है, तो उनके हृदय को गंभीर चोट लगी। सोचने लगे—अभी भी अवसर है। सुबह का भूला शाम को भी घर आ जायेगा तो कोई हानि नहीं है। अतः मंत्रणोपरांत इन्हीं के बड़े भाई को परमहंस महाराज के पास शाहपुरा भेजा।

जब व्यक्ति किसी कार्य को प्रारम्भ करता है, तब वह उसकी सफलता के लिये अतीव आशावान होता है। मार्ग को अवरुद्ध करने वाले झंझटों का आना स्वाभाविक होता है किन्तु सफलता तब ही सम्प्राप्त होती है जब प्रतिरोधक झंझावतों को कुचलते हुए लक्ष्य की ओर उन्मुख होता है। इसी प्रकार ज्येष्ठ भ्राता हृदय में नाना संकल्प विकल्प करते हुए श्रीमहाराज की सेवा में शाहपुरा उपस्थित हुए। विभिन्न प्रकार के विचारों का आदान प्रदान हुआ। आखिर; ये भी तो उसी पर्यावरण में पले थे जिसमें लघु भ्राता पले थे। भक्ति संस्कार जागृत हुये। अन्तस्थल भक्ति की रसीली माधुरी में झूम उठा। भूल गये सांसारिक-पारिवारिक सम्बन्ध व उत्तरदायित्व को। लग गई झलक अपने निज स्वरूप के दीदार की। बस, हृदतंत्री बज उठी, प्रभो ! मुझे भी अपनी दीर्घ शरण में स्थान दीजिये। क्यों कल्पतरु के नीचे बैठे हुए पथिक को कंकर पत्थर प्रदान करते हो। क्यों नहीं; इस असार संसार से पार होने का रास्ता प्रदान कर देते।

श्रीमहाराज अपने प्रयोग में सफल हुए। बोले—वैराग्य धारण करना गुड्डियों का खेल नहीं, खांडे की धार पर चलना है। विरक्त हो जाने पर कनक कामनी से प्रथक् रहना होगा। भोजन भिक्षा से लाना होगा। स्वाद वादादि का सर्वथा परित्याग करना होगा। फिर आपके सामने तो एक विकट समस्या है—वह है रघुनाथसिंह का संत हो जाना। चाहे वह पारिवारिक सम्बन्ध से छोटा है किन्तु सन्यासाश्रम के दृष्टिकोण से बड़ा है। आपको उसे प्रणाम भी करना होगा। आदर सम्मान भी प्रदान करना होगा। श्री महाराज इस बात पूरी करते इसके पूर्व ही ज्येष्ठ भ्राता बोल उठे, प्रभो ! प्रत्येक आश्रम व समाज की अपनी मान मर्यादा होती है। उसके घटकों का कर्त्तव्य है कि वे उन्हें अक्षरशः पालन करे। जब मैं इस समाज का घटक बन जाऊँगा तब स्वतः ही उक्त नियम व अन्यान्य नियम पालन करूंगा। श्रीमहाराज ने उपयुक्त समय देखकर राम मंत्र का उपदेश देते हुए शिष्य परम्परा में एक नाम और जोड़ लिया स्वामीयशरामजी का। ये आजीवन परमहंस महाराज की सन्निधि में ही रहे। इनका शिष्य परिवार भी चला किन्तु कुछ समय पूर्व अन्तिम संत श्रीरजरामजी महाराज, भाग के साथ इनका परिवार पुरा हो गया। स्वामी श्रीयशरामजी का परिवार परमहंस महाराज के परिवार के साथ इस प्रकार घुल मिल गया कि इनका प्रथक् अस्तित्व ही नहीं रह सका और सदैव श्रीपरमहंस महाराज के स्तंभ के संत कहलाये।

इस प्रकार कठोर साधना करते करते मात्र ३ वर्ष की अल्पावधि में ही श्री परमहंस स्वामी सिद्ध हो गये। सदैव राम स्मरण करना, अपने पराये का भेदभाव नहीं करना आदि सद्गुण स्वतः ही इनमें समाहित हो गये। यह क्रम आगे की ओर अग्रसर होता ही रहा। १८४२ में स्थिति यहाँ तक पहुँच गई कि इन्हें कोपीन लगाने तक की भी सुध नहीं रहने लगी। एक बार जब ये शाहपुरा गये तब आचार्य श्री श्रीस्वामी दुल्हेरामजी महाराज ने इन्हें मात्र कोपीन लोकलज्जा विचारार्णार्थ लगाने का आदेश फरमाया जिसे इन्होंने आजीवन निभाया।

वैराग्यबोध ग्रन्थ के अनुसार इनके विचरण के प्रमुख स्थान मुहाना, सांगानेर, बाटिका, शाहपुरा, लवबारूवा, सांवरूवा, बगरू पुन: सांगानेर दुर्गापुरा (रोडपुरा), गोपालपुरा, जयपुर, भांडारेज, आमेर, मनोहरपुर, बीलवा आदि रहे थे। संप्रदाय की लम्बी अवधि तक सेवा करते हुए विक्रम सम्वत् १८५५ में ७६ संतों के साथ सांगानेर से गुरुधाम में शरीर छोड़ने के लक्ष्य से शाहपुरा की ओर प्रस्थान किया। वे फाल्गुन शुक्ला द्वितीया वि० सम्वत् १८७५ को प्रातःकाल में वहाँ पहुँचे। पहुँचते ही गुरुधाम के दर्शन कर बारहद्वारी की परिक्रमा की। तत्पश्चात् आचार्यश्री के दर्शन किये। दर्शनोपरांत सिरह भंडार के पीछे वाली छत्री में आसन लगाया और वहीं चिरकाल के लिये राममय हो गये। जयपुर राज दरबार की ओर से श्रीपरमहंस स्वामी की स्मृति को अक्षुण्ण बनाने के लिये तत्कालीन परम्परानुसार २४ कलशों से युक्त शाहपुरा में तथा रामबाग पेलेस (भवानीशंकर पुरा) जयपुर में सुन्दर बारहद्वारियाँ बनवाई गई जो आज भी दृष्टव्य है।

साल सत्तत्तर चेत वदि, मगलवार सुनाम। बणि समाधि सुढार अति हरि सुमरण के काज।। समत अठारासो पिचेत्तर फागुण सुदि भ्रगुवार। दोज तिथि ब्रह्म पद मिले जन सुरतराम निरधार।।' यह बीजक शाहपुरा की छत्री में दृष्टव्य है। 'समत अठारासो सही, पिचेत्तर साल प्रमानू। फागुन सुदि तिथि दोज वार शुक्कर सो जानू।। शाहपुरे सुरतेश प्रात वपु त्यागन करिया। धाम बणो अति ठीक यश सब लोक उचरिया।। वर्ष सत्तत्तर वहाँ हुई यहाँ अठत्तर जान। जयपुर फुल समाधि जो महिमा कहा बखान।। मिती महासुदी २ राम राम राम राम।' यह बीजक जयपुर की बारहद्वारी में अवस्थित शब्द पादुका के है, जो अब सांगानेर रामद्वारे में स्थित है। शाहपुरा छत्री तथा जयपुर शब्दपादुका इन दोनों के ही चित्र इसी प्राग्तांक में उपलब्ध है। शाहपुरा तथा जयपुर बारहद्वारियों के बारे में कई एक परम्पराश्रुत कथन भी है जिन्हें स्थानाभाव से हम यहाँ नहीं दे पा रहे है। अस्तु!

वर्तमान समय में श्री परमहंस स्वामी की निर्वाण तिथि के अवसर पर प्रतिवर्ष ११ दिन की वर्षी का आयोजन किया जाता है। इसका समय फाल्गुन शुक्ला १ से फाल्गुन शुक्ला एकादशी तक है। सन् १९४६ से पूर्व वर्षी का समय 'माघ शुक्ला द्वितीया से पोष शुक्ला १५ तक रहता था। इसका कारण यह था कि इसी दिन श्रीपरमहंस स्वामी की शब्द पादुका जयपुर में पधराई गई थी। जब वर्षी जयपुर रामद्वारे में मनाई जाती थी तब लवाजमें की तथा थालों की व्यवस्था राजदरबार की ओर से हुआ करती थी। किन्तु सन् १९४५ में जयपुर दरबार द्वारा रामबाग पेलेस को नर्सरी घोषित करदी गई तथा रामद्वारा आदि को वहाँ से उठाने को बाध्य किया गया। अन्ततः इस समय जयपुर दरबार तथा रामद्वारा महंत श्रीस्वामी मुक्तारामजी महाराज के मध्य यह तय हुआ कि रामद्वारावाले वर्ष में दो बार अर्थात् गुरुपूर्णिमा को तथा माघ सुदी दोज को यहाँ मेला लगा सकते है। मेले के अवसर पर लवाजमें तथा थालों की व्यवस्था पूर्ववत होगी। इसी के साथ यह भी तय हुआ कि श्री स्वामी परमहंस महाराज की फुल समाधि को बिल्कुल खंडित नहीं किया जायेगा। वर्तमान में उक्त बारहद्वारी ज्यों की त्यों अवस्थित है।

सांगानेर में महंत परम्परा—

प्रायः संत साहित्यानुरागी सज्जन प्रश्न किया करते है कि श्रीस्वामी रामचरण महाप्रभु के कुल कितने विरक्त शिष्य हुए। उनमें से कितने शिष्यों की शिष्यपरम्परा विरूढ हुई। क्या शालाधारी शिष्यों की कोई पृथक् महंत परम्परा है? इन प्रश्नों के उत्तर स्वरूप यही कहा जा सकता है कि विरक्त शिष्यों की संख्या २२५, शालाधारी शिष्यों की संख्या ४१ तथा ४१ में से ही ३ शिष्य महंत परम्पराधारी हुए जिनके नाम सवाई-

माधोपुर के श्रीस्वामी रामप्रतापजी महाराज, जयपुर के श्रीस्वामी सुरतरामजी महाराज तथा उदयपुर श्रीस्वामी रामसेवकजी महाराज है। यहाँ मात्र श्रीस्वामी सुरतरामजी महाराज के सम्बन्ध में ही विचार करना अपेक्षित है।

जयपुर की महंत परम्परा श्रीस्वामी सुरतरामजी महाराज से प्रारम्भ नहीं होकर इन्हीं के शिष्य संत रतनदासजी से प्रारम्भ होती है। इनके जीवन चरित्र के बारे में कोई लिखित सामग्री ही प्राप्त न हो सकी विश्रुत तथा प्रमाण सिद्ध तथ्य है कि संतश्री रतनदासजी तत्कालीन जयपुर राजमाता के गुरु थे। राजमाता नित्य प्रति संत एवम् गुरुदर्शन का लाभ लेने के लिये अपने निजी बाग, जिसे आजकल रामबाग पैलेस कहा जाता है तथा पहले भवानीशंकरपुरा में चार बीघा पक्की जमीन देकर पुख्ता रामद्वारा बनवाया। वर्तमान में रामद्वारा सांगानेर स्थानान्तरित हो गया है किन्तु तत्कालीन जयपुर राजमाता द्वारा बनवायी गई परमहंस महाराज की बारहद्वारी अद्यावधि विद्यमान है।

तत्कालीन जयपुर राजमाता ने ही रामनिवासधाम शाहपुरा में परमहंस महाराज की समाधि बनवाई जिसमें अन्य चतुष्कोणीय चौकियों से विशिष्टता लिये इनकी अष्टकोणीय एवम् चोड़ी ऊँची चौकी रखी गई। आज भी परमश्रद्धेय श्रीस्वामी दुल्हेरामजी महाराज, परमश्रद्धेय श्रीस्वामी हरिदासजी महाराज की समाधि मध्य दर्शनीय है।

परम्परा श्रुत कथन के अनुसार संतश्री रतनदासजी को श्रीपरमहंस स्वामी के ब्रह्मलीन हो जाने उपरांत ही जयपुरस्थ गलता एवम् बालानन्दजी की गद्दी द्वारा महंत घोषित कराया। जिसके संदर्भ परम्परा यह भी सुना जाता है कि जब तत्कालीन आचार्य स्वामीश्री दुल्हेरामजी महाराज ने यह सुना कि श्रीपरमहंस स्वामी के शिष्य संतश्री रतनदासजी महंतों की भांति छत्र, चँवर, मोरछल, पगमंडा आदि का उपयोग करते हैं व्यवहारतः इससे मूल गद्दी का अपमान होता है। तब आचार्यश्री जी ने यह आदेश निकाला कि आजसे संत रतनदासजी जयपुर नहीं रह सकते। वे मात्र सांगानेर ही रह सकेंगे। जब संतश्री रतनदासजी ने आचार्यश्री के आदेश सुना, तब उन्होने तत्काल आदेश के पालनार्थ जयपुर का परित्याग कर दिया तथा आजीवन सांगानेर रहे। संतश्री रतनदासजी सांगानेर में ही ब्रह्मलीन हुऐ तथा तत्कालीन जयपुर राजमाता की ओर सेही उनकी स्मृति को अमर बनाने के लिये वहीं बारहद्वारी बनवाई गई जो अद्यावधि विद्यमान है। इनके ब्रह्मलीन होने सम्बन्धी प्रमाण इस प्रकार उपलब्ध होता है—

सुरतराम महाराज सदा सिर राजै सोई। जा सिष रतनजुदास परम पद पहुँचे जोई ॥
अठारासो की साल वर्ष गुन्यासी जानूं। चैत्र बदी सो जान तिथि साते परमानूं ॥
मंगलवार सो जान प्रात वपु त्यागन कीया। सांगावतीजु नग्र दरश सबही कूं दीया ॥
अठारासे पिच्चासी समै असाढ़ सुदी नौमी करी। ऐ समाधि रतनेस की सुंदर जहां चौकी धरी ॥ (चौकी...

संत श्रीरतनदासजी के पश्चात् इन्हीं के गुरु भाई संत श्रीलवलीनरामजी गादीधर हुऐ थे तथा इनके पश्चात् बैठने वाले अन्यान्य सभी महंत जयपुर ही रहे।

सांगानेर महंत परम्परा इस प्रकार उपलब्ध होती है—

परमहंस श्रीसुरतराम स्वामी बडभागी। रतनदास लवलीन जासु के पद अनुरागी ॥
ता पद रामबिलास रामरंग भये जु खासा। तिनके जरणाराम तासु के रामहुलासा ॥
महंत बिलासीरामजी मुक्तराम फिर साज। तिन पद रामनराणजी रामवक्ष अब राज ॥

महंत श्रीरामनारायणजी पोष सुदी ११ वि० सं० २०१० तदनुसार दिनांक १५-१-५४ को ब्रह्मलीन हुए। इनके पश्चात् वर्तमान महंत श्रीस्वामीरामबक्षजी महाराज गद्दीधर हुऐ। इनका जन्म ग्राम मानपुरा तहसील फागी के राजपूत परिवार में आश्विन शुक्ला १० वि० १९८१ को हुआ। ज्येष्ठ कृष्णा १३ वि० सं० १९९८ में आप रामस्नेही संप्रदाय में दीक्षित हुऐ। माघ कृष्णा ९ वि० सं० २०१० को आपकी गद्दीनशीनी हुई।

श्री रामनिवास धाम शाहपुरा के दक्षिणस्थ
श्री स्वामी सुरतरामजी महाराज 'परमहंस'
की समाधि

बड़ा रामद्वारा सांगानेरस्थ श्री स्वामी
सुरतरामजी महाराज 'परमहंस' की
फूल समाधि

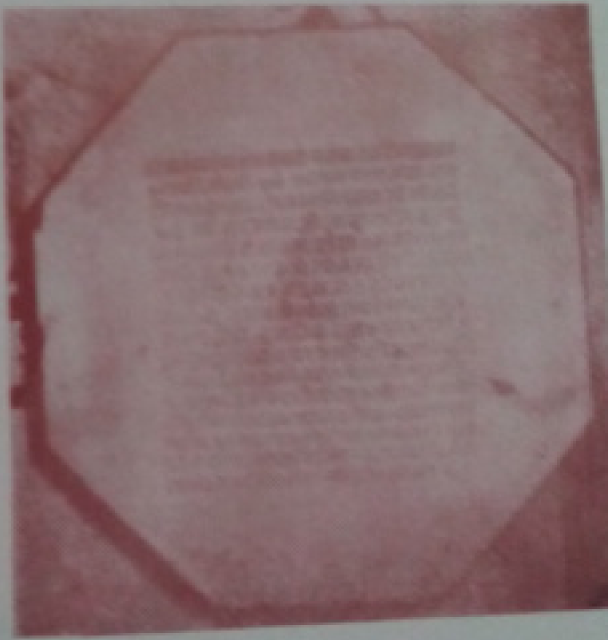

राम राम राम राम राम राम राम राम राम

परमहंस, अष्ठोत्तरशत श्रीस्वामी सुरतरामजी की अनुभव वाणी

निरंजन स्तुति; छंद त्रिभगी :

नमो अमापम, नमो अथापम, नमो नमस्ते, अमदेवम ।
नमो अजनमा, नमो सबनमा, नमो नमस्ते, नाछेवम ।।
नमो अलेखम, नमो अभेखम, नमो नमस्ते, भव पारम ।
उतपति परलय, सथीति पालम, नमो नमस्ते, निरकारम ।।१।।

नमो अकेलम, घट मठ खेलम, नमो अकलमा, आभेवम ।
नमो अविनाशि, तू तत वासी, नमो असो पद सा सेवम ।।
नमो रमइया, नमो समइया, नमो नमस्ते, भव तारम ।
उतपति परलय, सथीति पालम, नमो नमस्ते, निरकारम ।।२।।

नमो अतीतम, नमो अजीतम, नमो नमस्ते, गुण पालम ।
नमो नमो स्वामी, वोहो नामी, बहु नीला, बहु खत ख्यालम ।।
नमो अछेदम, नमो अभेदम, नमो नमस्ते, जग धारम ।
उतपति परलय, सथीति पालम, नमो नमस्ते निरकारम ।।३।।

प्रकृति पुरुषम, युगलं दर्शम, नमो नमस्ते, पुरुषोत्तम ।
नमो अजाती, सथिर शान्ति, नमो अवर्णा ना गोतम ।।
नमो स्रवंगी, नमो अभंगी, नमो नमस्ते, नित न्यारम ।
उतपति परलय, सथीति पालम, नमो नमस्ते, निरकारम ।।४।।

नमो अपारम, तत कृत सारम, नमो अगाधम, एक रसम ।
नमो अरुपम, कृत बहुरुपम, नमो अदर्शी, सब दर्शम ।।
जन सुरतराम, करे प्रमहंस जु, नमो रामजू, करतारम ।
उतपति परलय, सथीति पालम, नमो नमस्ते निरकारम ।।५।।

गुरुदेव स्तुति; छंद कवित्त :

नमो रमइया राम सृष्टि तेरे आधारा ।
नमो नमो गुरु संत सदा मुहि लगो पियारा ।।
तुम्हरे पद की शरण रहे नित ही मम शीशा ।
मैं हूं पामर जीव, आप स्वामी जगदीशा ।।
जन सुरतराम शरणै सदा, करे प्रणाम अनंत ।
तुम अपरम्पार अपार हो, मैं हूं तुम्हरो जंत ।।६।।

राम राम राम राम राम राम राम राम

'परमहंस' अष्टोत्तरशत श्रीस्वामी सुरतरामजी महाराज की अनुभव वाणी

निरंजन स्तुति; छंद त्रिभंगी

नमो अमापम, नमो अथापम, नमो नमस्ते, अमदेवम ।

अंजन = माया; निरञ्जन = माया से रहित नित्य सच्चिदानंद परब्रह्म परमात्मा। किसी भी ग्रन्थ की निर्विघ्न परिसमाप्ति हेतु प्रायः ग्रंथकार मंगलाचरण करता है। इसके मुख्यतया तीन भेद माने गये है १. वस्तुनिर्देशात्मक २. नमस्कारात्मक ३. आशीर्वादात्मक। आलोच्य अनुभववाणी में श्रीस्वामी सुरतरामजी 'परमहंस' महाराज नमस्कारात्मक मंगलाचरण 'नमो' पद से करके वस्तुनिर्देशात्मक मंगलाचरण करते है जिसमें निर्गुण-निराकार ब्रह्म में विधेयात्मक तथा निषेधात्मक गुणों का आरोपण करके उसके स्वरूप का विवेचन करते है।

श्रीपरमहंसस्वामी ने निरंजन ब्रह्म का कथन ५ त्रिभंगी छंदों में किया है। पिंगलशास्त्रानुसार त्रिभंगी दण्डक मात्रिक छंद है। इसमें कुल ३२ मात्राएं होती हैं। १०+८+८+६ पर यति नियत है। प्रारम्भ में 'जगण' वर्जित है। अन्त में गुरु का नियम है। जिस छंद में यतियों का क्रम ८+८+८+८ होता है, वह छंद विशेष सुखकारक होता है। 'प्रथमं दशसु च यतिरनु च वसुषु यतिरथ च तदधिकृति रस कथितं, शेषे गुरु गदितं त्रिभुवन-विदितं जगणविरहितं जगति हितम्। वसुडगणकृतचरणमधिक सुख करण-सकलजनशरण-मति सुमतिः, वदतीति त्रिभङ्गीमिह निरनङ्गीकृत रतिसङ्गी फणिनृपतिः ॥५६॥' (वृत्तमौक्तिक, पृष्ठांक ४२) श्रीपरमहंसस्वामी ने प्रत्येक छन्द में वे ही लक्षण रखे हैं जो श्रीमहाराज ने अपनी अनुभववाणी में रखे हैं। इनकी अनुभववाणियों का अनुशीलन करने पर ज्ञात होता है कि इन्होंने यतियों का क्रम ८+८+८+६ रखा है जो न तो १०+८+८+६ से साम्य रखता है, न ८+८+८+८ से। ऐसी दशा में प्रश्न खड़ा होता है, क्या ये छंद पिंगलशास्त्रानुसार शुद्ध नहीं हे ? तब उत्तर स्वरूप यही कहना होगा कि हमें इस बात का तो मोह छोड़ना ही होगा कि ये छंद त्रिभंगी हैं। जब त्रिभंगी छंद कहने का मोह टूट जायगा, तब स्वतः ही हमारी दृष्टि 'छंद प्रभाकर' के 'झोकहर' अपर नाम 'शुभंगी' पर जायगी जिसके लक्षण बताते हुये कहा गया है कि इस छंद में ८+८+८+६ पर यति होती है जो छंद को ३० मात्रात्मक बनाती है।

पिंगलशास्त्रानुसार, त्रिभंगी के प्रथम तीन वर्ण 'नमो अमापम' ।ऽ। है जो जगण को इंगित करते है। जगण का देवता सूर्य है। फल रोग है। सम्बन्ध सम है। प्रथमाक्षर 'न' दग्धाक्षर है। त्रिभंगी के प्रारम्भ में जगण है। इस समस्त विवेचन से ऐसा प्रतीत होंता है कि कविता का प्रारम्भ ही शुभ नहीं है। इस सम्बन्ध में, मेरा विनम्र निवेदन है कि परब्रह्म परमात्मा को प्राप्त महापुरुषों के लिये 'विधि-निषेध' का द्वार बन्द है। विधि-निषेध का बन्धन मात्र सांसारिक प्राणियों के लिये है। 'नर कायब करबा निमित, बद गण अगण विचार। गुण राघव

नमो अजनमा, नमो सबनमा, नमो नमस्ते, ना छेवम ।

सभ असुभ गण, न को दोस निरधार' ।। (पिंगल रघुवरजसप्रकास, पृष्ठांक ५) 'प्रिय लागिहि अति सबहि, मम भनिति राम जस संग । दारू बिचारु कि करइ कोउ, बंदिअ मलय प्रसंग ।।१०।। क ।। स्याम सुरभि पय बिसद अति, गुनद करहिं सब पान । गिरा ग्राम्य सिय राम जस, गावहिं सुनहिं सुजान ।।१० ख।।' (रामचरितमानस,बालकाण्ड) । ब्रह्मविद् महापुरुष तो लोक कल्याणार्थ एवम् लोक संग्रहार्थ ही कार्य करते हैं । उनको स्वयं तो कोई आकांक्षा होती नहीं है। किसी पूर्ति हेतु वे कोई कार्य करें; वे तो मात्र पारमार्थिक लाभ हेतु ही लोक व्यवहार में प्रवृत्त होते हैं । भगवान श्री कृष्ण कहते हैं 'न मे पार्थास्ति कर्त्तव्यं त्रिषु लोकेषु किंचन । नानवाप्तमवाप्तव्यं वर्त एव च कर्मणि ।।२२।। यदि ह्यहं न वर्त्तेयं जातु कर्मण्यतन्द्रितः । मम वर्त्मानुवर्त्तन्ते मनुष्याः पार्थ सर्वशः ।।२३।। उत्सीदेयुरिमे लोका न कुर्यां कर्म चेदहम् । संकरस्य च कर्त्ता स्यामुपहन्यामिमाः प्रजाः ।।२४।।' इससे स्पष्ट है कि परमात्मा अथवा परमात्मा प्राप्त संतों को कुछ भी अप्राप्त की प्राप्ति नहीं करनी होती, क्योंकि वे अकाम होते हैं । कोई भी कर्त्तव्य शेष नहीं होता, तथापि वे सकाम वर्तते हुऐ दीखते हैं – दुष्टों का संहार करते हुऐ, साधु पुरुषों का परित्राण करते हुऐ, उपदेश देते हुऐ, विवाह करते हुये, सन्तति उत्पन्न करते हुऐ आदि के रूप में दृष्टिगोचर होते हैं । वे सर्व कार्य करते हुये भी अकर्त्ता, क्योंकि उनका व्यवहार असंगता पूर्ण है । परार्थ है, स्वार्थ नहीं । निष्काम कर्म का यही रहस्य है कि कर्त्ता करते हुये भी अकर्त्ता है, भोगता हुआ भी अभोक्ता है, क्योंकि वह सर्व कार्य लोकसंग्रहार्थ, लोक सेवार्थ ही करता है । श्रीमहाराज इस विषय को और अधिक स्पष्ट करते हुये विचार के अंग में 'उपजे ब्रह्म विचार तब, साधन को नास । बर्तै सकल बिहार में, जब लग रहिये दास ।।२०।।' निश्चय के अंग में 'व्यवहार जहाँ ... नहीं, ज्ञान बिहार न होय । रामचरण इक म्यान में, खड़ग न देख्या दोय ।,२४।।' सारग्राही के अंग में ... ताय न्यारा किया, तब नहीं छाछ सूँ काम । बिधि निषेध सब तूतड़ा, रामचरण कण नाम ।।६।। कण ... भेला नीपजे, रामचरण इक खेत । कण अधिकारी मानवी, कूकस पशवाँ हेत ।।१०।।' इन सभी उद्धरणों का तत्व यही है कि जब ब्रह्म ज्ञान का उदय हो जाता है, तब व्यवहार स्वतः ही समाप्त हो जाता है । जब तक व्यवहार रहता है, तब तक ब्रह्मसंस्पर्श प्राप्त होना असम्भव सा है । जब कण रूपी तत्त्वोपलब्धि हो जाती है, तब विधि निषेध रूपी छाकले का राज्य समाप्त हो जाता है । यद्यपि कण रूपी संत तथा छाकला रूपी संसारी इस जगत् में उत्पन्न होते हैं तथापि ज्ञान रूपी बैल द्वारा संत लोग मोक्ष रूपी कण निकाल लेते हैं तथा प्रपंच रूपी छाकले का परित्याग कर देते हैं । ऐसे ही ज्ञानी पुरुष परब्रह्म परमात्मा को प्राप्त कर बिधि निषेध के चक्र का उन्मूलन कर देते हैं, सहजावस्था में ही शरीर का संचालन करते हैं । बालोचित क्रियाएँ करते हैं । अतः निष्कर्षतः यही कहा जा सकता है कि जीवनमुक्त महापुरुषों के संभाषण में विधि-निषेध की गंध के लिये कोई स्थान ही नहीं रह जाता । वाणी उच्चारण में जिज्ञासुओं के कल्याणार्थ ही प्रवृत्त होते हैं, वे संत महापुरुष । आत्मजिज्ञासु ही अपनी समझ के अनुसार उन्हें संकलित-सम्पादित करते रहते हैं । संकलनकार की समझ की क्या सीमा है, पर निर्भर करता है उस संकलन का स्वरूप ! 'सुखबोध' ग्रंथ को संपादित करते हुए संत श्रीरतनदासजी लिखते हैं 'वायक गुरुदेवजी उचार कियो सैंज ब्रह्म छोल मुख आपहो उचारे है । शबद अनेक अंग-अंग जो बखाणे आप ... लगाय जोड़ ग्रंथ बिसतार है । ग्रंथ 'सुखबोध' जीव कारज के हेत जानु मानु उर धार माँहि कारिज सुधारे ... कहत रतनदास भगतां कल्याण हेतु दुष्टां उर शाल एह निश्चय बिचार है ।।' वाणीकार ने सहज भाव से वाणी का उच्चारण किया है । उनकी जोड़ मैंने (रतनदास ने) की है, वाणीकार ने नहीं । जोड़ करने में यदि गल्ती रह गई हो तो वह मेरी है, वाणीकार की नहीं । वाणी उच्चारण का उद्देश्य भक्तों का कल्याण है ...

नमो अलेखम, नमो अभेखम, नमो नमस्ते, भव पारम।
उत्पति परलय, सबीति पालम, नमो नमस्ते, निरकारम ॥१॥

का स्वार्थ साधन नहीं। इस उद्धरण से भी यही सिद्ध है कि संत महापुरुषों की वाणी यदि किसी अंश में छंद-शास्त्रानुमोदित नहीं मिलती तो उसका कारण स्वयं उनके द्वारा संकलित नहीं होना होता है। मात्र संत श्री-सुन्दरदासजी ही एक ऐसे संत है, जिन्होंने स्वयं अपनी देख रेख में अपनी वाणी का लेखन कार्य करवाया। अन्यथा सन्त साहित्य के अन्य सभी संतों की वाणियों का लेखन कार्य उनके शिष्यादि ने किया है। ''मूल प्राचीन गुटका (बीच में सिला हुआ किताब के रूप में पुस्तक) स्वामी सुन्दरदासजी ने अपने सामने ही अपनी देख रेख में स्थान फतहपुर में अपने वैश्य शिष्य वा सेवक लेखक रुपादास से लिखवाया था। जो मिति आषाढ़ शुक्ला ६ शनिवार सम्वत् विक्रमी १७४२ को पूर्ण हुआ। लेखक ने अन्त में लिखा है–'सम्वत् १७४२ वर्षे आषाढ़ सुदी षष्टी शनिवासरे पोथी लिखापितं स्वामीसुन्दरदासजी लिखितं रुपादास महाजन फतहपुर मध्ये पोथी स्वामीसुन्दरदासजी को ग्रंथ सम्पूर्णं।'' (सु० ग्रं० भू० ८) यहाँ तक निरंजन ब्रह्म स्तुति विषयक त्रिभंगी छंदों के बारे में यत्किञ्चित लिखा गया है। अब छप्पय छंद में निबद्ध रमतीतराम–जो संसार में रम भी रहा है तथा उससे सर्वथा अतीत भी है 'मया ततमिदं सर्वं जगदव्यक्त मूर्तिना। मत्स्थानि सर्वभूतानि न चाहं तेष्ववस्थितः ॥४॥' (गीता ९ | ४), संत तथा सद्गुरुदेव की बन्दना पर विचार किया जाता है। छप्पय छंद के लक्षणादि के बारे में कवित्त सम्भाग में लिखा गया है। प्रश्न खड़ा होता है कि श्रीस्वामीसुरतरामजी परमहंस महाराज ने राम का स्वरूप 'रमतीत' माना है जिसका तात्पर्य होता है, वह परमात्मा संसार में उसी प्रकार अनुस्यूत है जिस प्रकार वस्त्र में सूत समाहित होता है। वस्त्र के जर्रे-जर्रे में सूत अन्तर्निहित होता है। इसी प्रकार परमात्मा चराचर सम्पूर्ण सृष्टि में समाया हुआ है। यद्यपि सूत, वस्त्र का निर्माण करता है, उसमें समाया हुआ होता है, तथापि उसे वस्त्र से प्रथक् भी किया जा सकता है। इसी प्रकार परमात्मा संसार में पूर्णतः व्याप्त है तथापि वह उससे सर्वथा अतीत भी है। यथार्थतः परमात्मा असंग है, निर्लिप्त है; फिर भी वह संसार के जर्रे जर्रे में व्याप्त होते हुये भी उससे सर्वथा प्रथक्-अतीत है। रामजी का स्वरूप 'रमतीत' मानने से श्रीपरमहंसस्वामी का सिद्धान्त अद्वैतपक्ष की ओर झुका हुआ लगता है। अद्वैतपक्ष में मात्र स्वयं की ही एक सत्ता मानी है जो सजातीय, विजातीय तथा स्वगत भेद शून्य होती है। इस स्थिति में रमतीत राम, संत तथा सद्गुरुदेव को प्रथम प्रणाम करने से निश्चय ही अद्वैतनिष्ठा में खामी आयी है। इसका उत्तर देते हुऐ संत श्रीसुदन्रदासजी लिखते है–'ब्रह्म प्रणम्य प्रणम्य गुरु, पुनि प्रणम्य सब संत। करत मंगलाचार इम, नाशत विघ्न अनत ॥२॥ उहै ब्रह्म गुरु संत उह, वस्तु विराजत येक। बचन बिलास विभाग त्रय, बन्दन भाव विवेक ॥३॥' (सु० ग्रं० वा० पृष्ठांक ४) ब्रह्म, संत तथा सद्गुरुदेव की प्रथक् सत्ता नहीं, तीनों तत्वतः एक ही है। भक्त भावों में बहकर ही इनकी प्रथक्-प्रथक् वन्दन कर बैठता है। 'ब्रह्म वेद ब्रह्मैव भवति' (मु. ३ | २ | ९); 'तस्मिस्तज्जने भेदाभावात् ॥४१॥ (नारद भक्तिसूत्र) 'ब्रह्मविद् ब्रह्मणि स्थितः। (गी. ५/२०); 'जानत तुम्हहि तुम्हइ होइ जाई ॥' (मा. २/१२७/२); 'भक्त भक्ति भगवन्त गुरु, चतुर नाम वपु एक।' (नाभा. भक्त. दोहा १) इन समस्त उद्धरणों से ज्ञात होता है कि ब्रह्म, गुरु संत इन तीनों की सत्ता एक है, प्रथक्-प्रथक् नहीं। तत्वतः सत्ता एक ही है।

(१) अमापम=मापहीन; अथापम = स्वयं सिद्ध; अजन्मा = जन्म रहित; सबनमा = सर्वव्यापक; नाछेवम=अंतहीन; अलेखम = दृष्ट्यातीत; अभेखम = रूप-रहित।

नमो अकेलम, घट मठ खेलम, नमो अकलमा, आभेवम ।
नमो अविनाशि, तू तत वासी, नमो असी पद, सा सेवम ॥
नमो रमइया, नमो समइया, नमो नमस्ते, भव तारम ।
उतपति परलय, सथीति पालम, नमो नमस्ते, निरकारम ॥२॥

नमो अतीतम, नमो अजीतम, नमो नमस्ते, गुण पालम ।
नमो नमो स्वामि, बोहो नामी, बहु नीला बहु, खत ख्यालम ॥
नमो अछेदम, नमो अभेदम, नमो नमस्ते, जग धारम ।
उतपति परलय, सथीति पालम, नमो नमस्ते, निरकारम ॥३॥
प्रकृति पुरुषम, युगलम दर्शम, नमो नमस्ते, पुरुषोतम ।

---

(२) अकेलम=निष्केवल; घट-मठ खेलम=घटाकाश मेघाकाश तथा जलाकाश में जिस प्रकार महाकाश रूप ब्रह्म व्याप्त है, उसी प्रकार मायाकृत उपाधि से निर्मित इस सम्पूर्ण संसार में वह परमात्मा परिव्याप्त है । 'अन्तर्हितश्च स्थिरजंगमेषु ब्रह्मात्मभावेन समन्वयेन । व्याप्त्याव्यवच्छेद मसंगमात्मनो मुनिर्नभस्त्वं विततस्य भावयेत् ॥४२॥ तेजोबन्नमयैर्भावैर्मेघाद्यैर्वायुनेरितैः । न स्पृश्यतेनभस्तद्वत् काल सृष्टैर्गुणैः पुमान् ॥४३॥ (भा. ११/७); अकलमा = अवयव रहित, निष्पंद; आभेवम् = अचिन्त्य; तू ततवासी = परमब्रह्म परमात्मा सचराचार में परिव्याप्त है; असी पद = अस्ति, भाति एवम् प्रिय स्वरूप । सर्व पदार्थों में पाँच अंश होते हैं । नाम, रूप, अस्ति, भाति तथा प्रिय । 'घट' यह पदार्थ का नाम है । घट का गोलाकार होना रूप है । 'घट है' यह अस्ति है । घट प्रतीत होता है, यह भाति है । घट प्रिय है, आनन्ददायक है, यह 'प्रिय' है । सर्प सर्पिनी को प्रिय है, पुरुष स्त्री को प्रिय है, आदि । इस रीति से यह निष्पन्न हुआ कि सर्व पदार्थों में पाँच अंश होते हैं । उनमें से अस्ति, भाति तथा प्रिय–ये तीन अंश प्रत्येक पदार्थ में व्यापक है । नाम एवम् रूप व्यभिचारी है । जो वस्तु कहीं हो तथा कहीं नहीं हो, उसे व्यभिचारी कहते हैं । 'घट' नाम तथा 'गोल' रूप पट में नहीं है । पट नाम और उसका रूप घट में नहीं है । इस रीति से सर्व पदार्थों में नाम एवम् रूप अंश व्यभिचारी है । अस्ति, भाति और प्रिय रूप सर्व में अनुगत है । जैसे सर्प, दंडादिकों में अनुगत इदम् अंश सत्य तथा अधिष्ठान रूप है, वैसे सर्व पदार्थों में अनुगत अस्ति, भाति प्रिय रूप सत्य है । सर्प, दंडादिकों के समान व्यभिचारी नाम एवं रूप कल्पित है । अस्ति, भाति तथा प्रिय सच्चिदानंद रूप है ।

3) अतीतम=माया से सर्वथा अलग; अजीतम=अजेय; गुण पालम=सत्त्व, रज तथा तम इन तीनों की साम्यावस्था का नाम प्रकृति-माया है । माया की सत्ता-स्फूर्ति ब्रह्म के कारण है । वह ब्रह्म अपनी सनातनी माया को अपने वश में करके सृष्ट्योपत्ति करता है । सृष्टि के उत्पादन में वह माया का सहकार लेता है, इसलिये वह गुण पाल । 'प्रकृति स्वामवष्टभ्य विसृजामि पुनः पुनः ॥' (गी० ९।८ पूर्वार्ध), बहुनीला=नीले आकाश की भाँति महद्?; खत ख्यालम= संसार को बनाना, उसका पालन करना तथा उसका संहार मात्र नट के ख्याल-तमाशे के समान करना ? । अछेदम=अच्छेद्य-अखंडनीय; अभेदम=भेदरहित-सजातीय, विजातीय तथा स्वगत भेद शून्य, धारम = जगत् का अभिन्ननिमित्तोपादान कारण, जगत का आधार-अधिष्ठान ।

प्रकृति-पुरुषम=सांख्यशास्त्र में दो पदार्थ अनादि माने हैं । पुरुष तथा प्रकृति । पुरुष को चैतन्य, निर्विकार

नमो अजाती, सथिर शान्ति, नमो अवर्णा ना गोतम ॥
नमो अवंगी, नमो अभंगी, नमो नमस्ते, नित न्यारम ।
उतपति परलय, सथीति पालम, नमो नमस्ते निरकारम ॥४॥

नमो अपारम, तत कृत सारम, नमो अगाधम, एक रसम ।
नमो अरुपम कृत बहु रूपम, नमो अदर्शी, सब दर्शम ॥
जन नरतराम, करे प्रमहंसजु, नमो रामजू, करतारम ।
उतपति परलय, सथीति पालम, नमो नमस्ते निरकारम ॥५॥

गुरुदेव स्तुति; छंद कवित्त:

नमो रमइया राम सृष्टि तेरे आधारा । नमो नमो गुरु संत सदा मुहि लगे पियारा ॥

...की उत्पादिका माना है । सांख्य दो तत्वों की सत्ता मानता
साक्षी, निष्क्रिय, उदासीन तथा प्रकृति को जड़, जगत्
है, इसलिये द्वैतवादी दर्शन कहलाता है । यहाँ भी 'प्रकृति पुरुषम, युगलमदर्शम' से द्वैतवाद की गंध आने लगती
हुई सी प्रतीत होती है किन्तु 'नमो नमस्ते पुरुषोतम' पद उस पर डाटा लगा देता है । भगवान् श्रीकृष्ण कहते हैं-
'द्वाविमौ पुरुषौ लोके क्षरश्चाक्षर एव च । क्षरः सर्वाणि भूतानि कूटस्थोऽक्षर उच्यते ॥१६॥ उत्तमः पुरुषस्त्वन्यः
परमात्मेत्युदाहृतः । यो लोकत्रय माविश्य बिभर्त्यव्यय ईश्वरः ॥१७॥ यस्मात्क्षरमतीतोऽहमक्षरादपि चोत्तमः
अतोऽस्मि लोके वेदे च प्रथितः पुरुषोत्तमः ॥१८॥ (गीता१५।१६-१८) क्षर एवम् अक्षर से उत्तम पुरुषोत्तम
परम-ब्रह्म परमात्मा मैं स्वयं श्रीकृष्ण हूँ । क्षर=माया, अक्षर=जीव ही सांख्य के प्रकृति तथा पुरुष हैं । प्रकृति
जड़ है । जीव प्रकृति के संग से ही भोक्ता प्रतीत होता है, अन्यथा वह तो शुद्ध बुद्ध, नित्य सच्चिदानंद स्वरूप ही
है । पुरुषोत्तम तथा पुरुष या यों कहें आत्मा तथा परमात्मा दोनों की सत्ता एक ही है, पृथक् नहीं । 'प्रकृति
पुरुषं चैवविद्ध्यनादी उभावपि । विकारांश्च गुणांश्चैव विद्धि प्रकृति संभवान् ॥१९॥ कार्यकरण कर्तृत्वे हेतुः
प्रकृतिरुच्यते । पुरुषः सुखदुःखानां भोक्तृत्वे हेतु रुच्यते ॥२०॥ पुरुष प्रकृतिस्थोहि भुङ्क्ते प्रकृतिजान्गुणान् । कारणं
गुण संगोऽस्यसदसद्योनिजन्मसु ॥२१॥ (गीता १३), अजाती=अजात-जो कभी जन्मा ही न हो, सथिर=स्थिर-
एकरस; अवर्णा=अवर्ण्य-वर्णनातीत; नागोतम=गोत्रहीन, नामहीन, संज्ञाहीन, वंशहीन; अवंगी=सर्वव्यापक 'सर्वतः
पाणिपादं तत्सर्वतोऽक्षिशिरोमुखम् । सर्वतः श्रुतिमल्लोके सर्वमावृत्य तिष्ठति ॥१३॥ (गी.३)

(५) तत कृतसारम=माया कृत संसार का सार तत्व, प्रकृति स्वयं मिथ्या है तब उसकी विकृति स्वतः ही मिथ्या
सिद्ध हो जाती है । क्योंकि माया अनादि किन्तु शांत है, यह ज्ञानोपरांत बाधित हो जाती है । अतः इस संसार
में मात्र एक ब्रह्म ही अनुगत है, वही सत्य है, तदन्यतर मिथ्या है । 'ब्रह्म सत्य जगन्मिथ्या जीवो ब्रह्मैव नापरः
अगाधम= जिसकी गहराई की थाह का पता न लगा सके 'अणोरणीयान्महतो महीयानात्मास्य जन्तोर्निहितो गुहा
याम्॥ (कठो. २।२।२०) एक रसम=सदा एक जैसा रहने वाला, अविकारी; अरुपम कृत बहु रुपम=रूप रहित
किन्तु भक्त वत्सलतावश बहुत से रूप धारण करने वाला यथा नृसिंह, शूकर आदि; अदर्शी सब दर्शम=निराकार
होने से स्थूल रूप में अदर्शनीय किन्तु भक्त वत्सलतावशात् सगुण साकार रूप में दर्शनीय ।

(६) रमइया=जो सर्व प्राणियों में रम रहा है । सचराचर में एकरस व्याप्त है । सत एवम् सद्गुरु इसलिये स
प्रिय लगते हैं क्योंकि इन्हीं दयार्णव महापुरुषों की महती कृपा के फल स्वरूप जीव शिव बन पाता है, अन्यथा

तुम्हरे पद की शरण रहे नितही मम शीशा। मैं हूँ पामर जीव, आप स्वामी जगदीशा
जन सुरतराम शरणें सदा, करे प्रणाम अनंत। तुम अपरम्पार अपार हो, मैं हूँ तुम्हरो जन ॥

बनना सर्वथा असम्भव ही नहीं अपितु अकल्पनीय भी है। सद्गुरु तथा संत को जगदीश स्वरूप बताने का
भी यही है कि तीनों ब्रह्म स्वरूप है, तीनों की सत्ता एक है। संत तथा सद्गुरु लोक कल्याणार्थ मात्र व्यवहार
पृथक् दिखते है किन्तु पारमार्थिक सत्ता दोनों की एक है।

पिंगलशास्त्रानुसार 'साखी' कोई छंद नहीं है। 'साखी' छंद संत साहित्य का प्राण है। संत साहित्य के
'साखी' का विश्लेषण करने पर, इसमें वे ही लक्षण मिल जाते है जो 'दोहा' छंद में मिलते है। दोहा
मात्रिक छंद है। इसके प्रथम तथा तृतीय चरण में तेरह तथा द्वितीय एवं चतुर्थ चरण में ग्यारह मात्राएँ
हैं। द्वितीय तथा चतुर्थ चरण के अंत में गुरु लघु का योग होता है। कुल मात्रा ४८ तथा प्रति पंक्ति २४ मा
होती है। प्रथम तथा तृतीय चरण में जगण वर्जित है। 'तेरह ग्यारह तेरहे, ग्यारह दोहा चार। दोहा
सोरठा, विदित सकल संसार ॥२॥ प्रथम तीसरे चरण में, जगण जोहिये जासु। सो दोहा चंडालिनी,
बिबिधि बिनासु ॥४॥' (छंदार्णव, सप्तम तरंग; पृष्ठांक ६३-६४)

यथार्थतः साखी साक्षी का अपभ्रंश है। संत श्रीकबीर साहब कहते है 'साखी आँखी ज्ञान की, समुझि देख
मांहि। बिनु साखी संसार का, झगरा छूटत नाहि ॥३५॥ (बीजक) साखी आँखों देखे ज्ञान से सराबोर है।
समझ कर, मन से विचार कर देखिये। बिना परमात्म साक्षात्कार किये संसार में आवागमन
झगड़ा नहीं छूट सकता। इसी को अधिक स्पष्ट करते हुए श्रीमहाराज फरमाते हैं—
छके वाणी बके, दाबी दबती नांहि। रामचरण अब ब्रह्म सुख, कहहैं सबदाँ मांहि ॥३५॥' जब साधक
संस्पर्श के आनन्द में निमग्न हो जाता है, तब वह स्वतः ही उस ब्रह्मानन्द का शब्दों में वर्णन करने का
करता है। यद्यपि उसका यह प्रयास 'मूकास्वादनवत्' ही होता है तथापि यथार्थ होने से लोक कल्याणकारी
जाता है। जब साधक ब्रह्मानंद में निमग्न हो जाता है, तब स्वतः ही उसके हृदय में उस ब्रह्मानंद को प्रकट
का उल्लास होता है, गुदगुदी उत्पन्न होती है। वह अपनी सामर्थ्यानुसार उसे गद्य तथा पद्य-दोनों में ही
दोनों में से एक में प्रकट करने का प्रयत्न करता है। चाहे वह कथन अधूरा हो अथवा पूरा, किन्तु होता है
सारा वर्णन आँखों देखा हाल होता है। यहाँ एक बात और बता देना उचित ही होगा; वह यह कि उस अप्रमा
तत्त्व को मायिक पदार्थों से न तो देखा ही जा सकता है, न ही वर्णित किया जा सकता है। 'यतो वाचा निव
अप्राप्य मनसा सह। आनन्द ब्रह्मणो विद्वान् न बिभेति कुतश्चनेति' ॥ (तैत्ति० २।६।१) वहाँ तो 'नेति-नेति
ही काम चला लेना होता है। ऐसी स्थिति में उस साक्षात्कार का यत्किञ्चित् वर्णन वाणी के माध्यम से
द्वारा होता रहा है। बस, वही साक्षात्कार कृत वर्णन साखियों में उपलब्ध है। व्यवहार में प्रायः देखा जाता
कि जब किसी को अत्यधिक आल्हाद होता है तब उसका गला बोलते समय अवरुद्ध सा हो जाता है; कुछ का
बोलने लगता है, बोलना कुछ होता है, बोल कुछ जाता है। जब सांसारिक आनन्द में ही मानव इतना आ
विभोर हो जाता है, तब उस आनंदघन सच्चिदानंद परमात्मा का साक्षात्कार करके आत्म विस्मृत हो जाये
इसमें कौनसी बड़ी बात है! क्योंकि परमात्मा का स्वरूप ही 'आनन्द' है—'आनन्दो ब्रह्मेति व्यजानत्। आनन्द
द्ध्येव खल्विमानि भूतानि जायन्ते। आनन्देन जातानि जीवन्ति। आनन्द प्रयन्त्यभिसंविशन्तीति।' (तैत्ति० ३
इस आनन्द में सराबोर हुआ 'प्रेमाधीना छाक्या डोले। क्यों का क्यों ही वाणी बोले॥ जैसी गोपी भूली देह

साखी संभाग

गुरुदेव (१)

साखी चाहे साखी नेहा ॥४१॥ (गु. ग्रं. पृष्ठांक २२) कुछ का कुछ बोलता है। कुछ का कुछ सुनता है। कुछ का कुछ समझता है। कहने का तात्पर्य यह है कि उसे विधि-निषेध की परवाह रहती ही नहीं वास्तविकता यह है कि श्रोता लोग अपनी रुचि, समझ, बुद्धि आदि के अनुसार ही संतोपदिष्ट वाणी को संग्रहित-सम्पादित करते रहते थे। इस संग्रह में संतों का हाथ कम तथा संग्रहकारों का हाथ ज्यादा रहता था। अतः इनमें संग्रहित भावों को ही देखना चाहिये; इनमें प्रयुक्त छंद अथवा भाषा को नहीं। आचार्य श्रीपरशुराम चतुर्वेदी लिखते हैं—'अतएव, किसी काव्य का वास्तविक महत्व भाषा से अधिक उसके भावों के ही कारण माना जा सकता है। भाव, वस्तुतः काव्य पुरुष का स्वभाव है जबकि भाषा केवल उसका 'शरीर' मात्र ही कही जा सकती है। इस कारण, जिस प्रकार किसी प्राकृत मनुष्य के चरित्र के सुन्दर बने रहते उसके शरीर का भी सुन्दर होना अपेक्षित नहीं, उसी प्रकार उत्कृष्ट भावों की उपस्थिति में काव्य के भाषा सौन्दर्य का भी होना अनिवार्य नहीं कहा जा सकता। इसके सिवा काव्य का कोई भाषागत दोष किसी प्रकार क्षम्य भी हो सकता है, किन्तु उसके भावों की अशोभनता कभी ग्रहणीय नहीं समझी जा सकती है।' (संतकाव्य; भूमिका ३) अस्तु !

जिस बहुलता के साथ साखी छंद संत साहित्य में प्रयुक्त हुआ है, शायद अन्य कोई छंद प्रयुक्त हुआ हो ! इसके कई कारणों में से सबसे बड़ा कारण यह है कि यह छंद सर्वाधिक सरल तथा जन जन के मुँह पर आसीन है। सरलता तथा जन साधारण द्वारा ग्रहित होने के कारण ही संत समुदाय इसकी ओर अधिक आकृष्ट हुआ है। यह बहुत सम्भव है कि श्रीपरमहंस स्वामी ने सर्व प्रथम साखी का ही उच्चारण किया हो किन्तु परमश्रद्धेय श्रीमहाराज की अनुभववाणी में सर्वप्रथम संग्रहित कवित्तों की अनुकृति पर ही यहाँ त्रिभंगी छंद संग्रहित किये गये हों !

यदि यह मान लिया जावे कि श्रीपरमहंस स्वामी ने सर्वप्रथम स्तुति की साखियाँ ही उच्चारित की हैं तो अनुभव वाणी का प्रारम्भ पिंगल शास्त्रानुसार सर्वथा मंगलमय ठहरता है। साखी के प्रथम तीन वर्ण 'प्रथम' नगण को इंगित करते हैं। नगण का देवता नाग तथा फल सर्व सुख है। मित्रादिक स्थिति में मित्र स्थिति है। इससे ग्रंथ का आरम्भ शुभ ठहरता है। यथार्थतः देखा जाये तो संतों का लक्ष्य ग्रंथ निर्माण करना नहीं था। उनका लक्ष्य तो स्वस्वरूप विस्मृत अज्ञ जन मानस को परमप्रभु परमात्मा की ओर उन्मुख करना था। इसीलिये उन्होंने कभी भी विधि-निषेध की परवाह नहीं की। क्योंकि उनकी रचना का लक्ष्य गोस्वामी तुलसी 'स्वांतः सुखाय तुलसी रघुनाथगाथा' की भाँति हो रहा है। फिर 'राम भक्ति भूषित जिय जानी। सुनहहिं सुजन सराहि सुबानी। गुन रहित कुकबि कृत बानी। राम नाम जस अंकित जानी ॥ सादर कहहिं सुनहिं बुध ताही। मधुकर सरिस गुन ग्राही ॥'' (मानस।१।९।४;१०।३) संत तो, इस आदर्श वाक्य को लेकर चले। इसी को उन्होंने अपना आदर्श बनाया। भागवतकार भी इसकी पुष्टि करते हैं–'नयद्वचश्चित्र पदं हरेर्यशो जगत् पवित्र प्रगृहीत कर्हिचित् तद्वायसतीर्थमुशन्तिमानसा न यत्र हंसा निरमन्त्युशिक्क्षया ॥१०॥ तद्वाग्विसर्गो जनताघ विप्लवो यस्मिन् प्रति श्लोकमबद्धवत्यपि। नामान्यनन्तस्य यशोऽङ्कितानियत्, शृण्वन्ति गयन्ति गृणन्ति साधवः ॥११॥'' (श्रीमद्भा...) संत लोग विधि-निषेध से कितना परहेज करते थे, इसका उदाहरण संत श्रीकबीर सहाब के जीवन प्रसंग

प्रथम राम रमतीत जु, सतगुरु सबही संत। जन सुरतराम वन्दन करे, बारम्बार अनंत ॥१॥

में स्पष्टतः मिलता है। उन्होंने संपूर्ण जीवन मोक्षदायिनी काशी में व्यतीत किया। अन्तिम समय आता देख वे उसे त्याग गये तथा ऐसे शहर में जाकर डेरा लगाया जिसके बारे में कहा जाता है कि वहाँ मरने से गधे की योनि मिलती है। "सकल जनम शिवपुरी गवाँइया। मरती बार मगहर उठ धाइया॥" किन्तु उन्हें ... मिली। कहते है, जब कबीर साहब का शरीर शांत हुआ तब उनके हिन्दू एवं मुसलमान अनुयायियों में ... अन्तिम संस्कार करने के बारे में विवाद हुआ। अन्ततः जब चादर उठाकर उनका शरीर देखा गया तो पाया ... वहाँ तो केवल फूल पड़े है. देह का पता ही नहीं है। इससे सिद्ध है कि वे मोक्ष को प्राप्त हुए। अस्तु!

गुरुदेव—(१) श्रीमद्भागवद् के ग्यारहवें स्कन्ध के तृतीयाध्याय में प्रबुद्ध नाम के योगेश्वर सांसारिक माया ... को क्षणिक, नाशवान एवं अल्प सुखदायी बताते हुए निर्णय करते है कि अक्षयानन्द की प्राप्ति हेतु सद्गुरु की शरण ग्रहण करो। अन्यथा स्वस्वरूपानुसंधान सर्वथा असंभव है 'तस्माद् गुरुं प्रपद्येत जिज्ञासुः श्रेय उत्तमम्। शाब्दे परे च निष्णातं ब्रह्मण्युपशमाश्रयम् ॥२१॥ तत्र भागवतान् धर्मान् शिक्षेद् गुर्वात्मदैवतः। अमाययानुवृत्त्या यैस्तुष्येदात्माऽऽत्मदो हरिः ॥२२॥" इसलिये जो परमकल्याण का जिज्ञासु हो, उसे गुरुदेव की शरण ... चाहिये। गुरुदेव ऐसे हों, जो शब्दब्रह्म वेदों के पारदर्शी विद्वान् हों, जिससे वे ठीक-ठीक समझा सकें, तर्क-वितर्क का समाधान उचित रीति से कर सकें; और साथ ही परब्रह्म में परिनिष्ठित तत्त्वज्ञानी भी हों, ताकि अपने अनुभव के द्वारा प्राप्त हुई रहस्य की बातों को बता सकें। यदि ब्रह्मनिष्ठता नहीं है तो उनका वेदों का पारदर्शित्व मात्र शुष्क होगा, उसमें सरसता नहीं होगी। लक्ष्य, सरसता प्राप्त करना ही होता है; शुष्कता नहीं। ... सरसता प्रदान करने के लिये गुरु को ब्रह्मनिष्ठ होना अपरिहार्य है। गुरु का चित्त शान्त हो, व्यवहार के प्रपंच में विशेष प्रवृत्ति न हो। जिज्ञासु को चाहिये कि गुरु को ही अपना परम प्रियतम आत्मा और इष्ट माने। ... निष्कपट भाव से सेवा करे और उनके पास रहकर भागवत धर्म की क्रियात्मक शिक्षा ग्रहण करे। इन्हीं ... से सर्वात्मा एवं भक्त को अपने आत्मा का दान करने वाले भगवान् प्रसन्न होते है। श्रीमद्भगवद्गीता गुरु ... आवश्यकता इन शब्दों में प्रतिपादित करती है—'तद्विद्धि प्रणिपातेन परिप्रश्नेन सेवया। उपदेक्ष्यन्ति ते ज्ञानं ज्ञानिनस्तत्त्व दर्शिनः ॥४।३४॥" वेद में, 'यस्य देवे परा भक्तिर्यथा देवे तथा गुरौ। तस्यैते कथिता ह्यर्थाः प्रकाशन्ते महात्मनः। प्रकाशन्ते महात्मनः ॥ (श्वेता० ६।२३) मानस में–'बिनु गुरु होइ कि ग्यान, ग्यान कि होइ बिराग बिनु। गावहिं बेद पुरान, सुख कि लहहिं हरि भगति बिनु ॥ (मानस ७।८९) वास्तव में, गुरु का माहात्म्य अवर्णनीय है।

(१) ज्ञान भक्ति वैराग्य—ज्ञान तथा भक्ति पदों से समुच्चयवाद तथा वैराग्य पद से ग्रहस्थ समाज का भगवद्भक्ति होने में अयोग्य होना सा सूचित होता है किन्तु बात ऐसी नहीं है। वस्तुतः, रामस्नेही सम्प्रदाय में समुच्चयवाद को स्थान न देकर क्रमसमुच्चयवाद को स्थान दिया गया है। मोक्ष का साक्षात् साधन ज्ञान ही माना गया। भगवान् श्रीकृष्ण गीता में 'तेषां सततयुक्तानां भजतां प्रीतिपूर्वकं। ददामि बुद्धियोगं तं येन मामुपयान्ति ते ॥१०॥' 'उन निरंतर मेरे ध्यान में लगे हुए और प्रेमपूर्वक भजने वाले भक्तों को, मैं वह तत्त्वज्ञानरूप योग ... हूँ, कि जिससे वे मेरे को ही प्राप्त होते हैं।' कहकर क्रमसमुच्चयवाद का ही प्रतिपादन करते है। तीसरे अध्याय में संपूर्ण यज्ञों में ज्ञान यज्ञ को श्रेष्ठ बताया है। कर्मयोग, जिसमें उपासना भी शामिल है, की ...

रामचरण गुरु तपत है, जन सुरतराम के सीस। ज्ञान भक्ति बैराग दे, नाम कर्यो बक्सीस ॥१॥

परिणति ज्ञान को ही बताया है तथा ज्ञान से ही परम शांति की प्राप्ति बताई है। 'श्रेयान्द्रव्यमयाद्यज्ञाज्ज्ञानयज्ञः परंतप। सर्वं कर्माखिलम् पार्थ ज्ञाने परिसमाप्यते ॥३३॥ श्रद्धावाँल्लभते ज्ञानं तत्परः संयतेन्द्रियः। ज्ञानं लब्ध्वा परां शांति मचिरेणाधिगच्छति ॥३६॥'' अतः निष्कर्षतः यह कहा जा सकता है कि शास्त्र सम्मत सिद्धान्त-क्रम समुच्चयवाद ही रामस्नेही-दर्शन का आधार है। वैराग्य प्रत्येक साधन निष्ठा में अपरिहार्य है। महर्षि नारद 'तत्तु विषयत्यागात् सङ्गत्यागाच्च ॥३५॥' यह भक्ति साधन विषय त्याग तथा सङ्ग त्याग से सम्पन्न होता है। 'यो विविक्त स्थानं सेवते, यो लोक बन्धमुन्मूलयति, निस्त्रैगुण्यो भवति, योगक्षेमं त्यजति ॥४७॥' 'जो निर्जन स्थान में निवास करता है, जो लौकिक बन्धनों को तोड़ डालता है, जो तीनों गुणों से परे हो जाता है और जो योग तथा क्षेम का परित्याग कर देता है; भक्ति मार्ग में वैराग्य पक्ष का दृढ़ता के साथ समर्थन करते हैं। भगवान् श्रीकृष्ण ने ज्ञान मार्ग में उपर्युक्त श्लोकों में 'संयतेन्द्रिय' से ही वैराग्य की अपरिहार्यता सिद्ध कर दिया है। वैसे भी, ज्ञानमार्गी मुमुक्षु के लक्षणों में वैराग्य को प्रधान लक्षण माना है। अतः साधन निष्ठा कोई भी हो, सभी में वैराग्य की परमावश्यकता है। भगवत्प्राप्ति का प्रत्येक को अधिकार है—'मां हि पार्थ व्यपाश्रित्य येऽपिस्युः पाप योनयः। स्त्रियोवैश्यास्तथा शूद्रास्तेऽपि यान्ति परां गतिम् ॥' (९।३२) श्रीमद्भागवत् के माहात्म्य को देखने पर भी यही बात सिद्ध होती है। शौनक ऋषि का प्रश्न भी 'भक्ति ज्ञान विरागाप्तो विवेको वर्धते महान्। माया मोह निरासश्च वैष्णवैं क्रियते कथम् ॥' तथा सनकादि का उत्तर 'इदं भागवतं नाम पुराणं ब्रह्मसम्मितम्। भक्ति ज्ञान विरागाणां स्थापनाय प्रकाशितम् ॥' यही सिद्ध करता है कि अंतःकरण की शुद्धि के लिये उपासना तथा मोक्ष के लिये ज्ञान आवश्यक है। वेद भी इसी का समर्थन करता है—'परीक्ष्य लोकान् कर्मचितान्ब्राह्मणो निर्वेदमायान्नास्त्यकृतः कृतेन। तद् विज्ञानार्थं सगुरुमेवाभिगच्छेत् समित्पाणिः श्रोत्रियं ब्रह्मनिष्ठम् ॥' (मु०उ० १।२।१२) कर्म से प्राप्त किये जाने वाले लोकों की परीक्षा करके ब्रह्मजिज्ञासु निर्वेद को प्राप्त हो जाय तथा यह समझ ले कि किये जाने वाले सकाम कर्मों से स्वतः सिद्ध नित्य परमेश्वर नहीं मिल सकता। वह उस परमब्रह्म का ज्ञान प्राप्त करने के लिये हाथ में समिधा लेकर वेद को भली भाँति जानने वाले ब्रह्मनिष्ठ सद्गुरु के पास ही विनय पूर्वक जावे। यथार्थतः मोक्षाकांक्षी को क्षीर नीर विवेक सम्पन्न महद् पुरुष की शरण ग्रहण करनी ही पड़ती है, अन्यथा मतिभ्रम होने का पूर्ण भय होता है। मतिभ्रमित का विनाश अवश्यम्भावी है। 'संशयात्मा विनश्यति।' अतः उर्ध्वगति प्राप्त करने के साधन को प्रयोगत्वाभिमुख नहीं किया जाय, इसका साधन मात्र सद्गुरुदेव का यथार्थ ज्ञानोपदेश ही है। परमात्मा की सृष्टि के विधान को परिवर्तित करने की सामर्थ्य मात्र दो ही में है 'गुरु भृंगी के कृत्य को, कृत्य न पूजे कोय। रज्जब रचना राम की, ये ही पलटे दोय ॥७१॥' (गुरुदेवांग) क्रम समुच्चयवाद का कितना यथार्थ वर्णन है—'जो इन कर्मनि को करे, तजे काम आसक्ति। सकल समर्प्यें ईश्वरहि, तबहि उपजे भक्ति ॥१६॥ कर्म पत्र महि नीकसे, भक्ति हूं पुष्प सुवास। नवधा विधि निशदिन करे। छांड कामना आस ॥१७॥ पीछे बाधा कछु नहीं, प्रेम मगन जब होय। नवधा हू तब थक रहे, सुधि-बुधि रहे न कोय ॥१८॥ तबही उपजे ज्ञान फल, समझे अपनो रूप। चिदानंद चैतन्य घन, व्यापक ब्रह्म अनूप ॥१९॥ वेद वृक्ष यो बरणिये, याही अर्थ विचार। कर्म पात्र ताके लगे, भक्ति पुष्प निरधार ॥२०॥ ज्ञान सुफल ऊपर लग्यो, जाहि कहै वेदांत। महाबचन निश्चय धरैं, सुन्दर तब ह्वै शांत ॥२१॥' (सुंदर ग्रंथावलि पृष्ठ १६ श्रीस्वामी रामप्रतापजी 'भक्ति हाथ बैराग पद, दृष्टि ज्ञान जो होय। तीन मिल्या काज सरे, बस्तु परम पद जोय ॥ कहै 'रामपरताप' बस्तु परम पद जोय, खोय संशय सब दूरा। आतम दृष्टि प्रकाम, ब्रह्म व्यापक सब पूरा॥

रामचरण हरि रूप है, भक्ति भूप है सोय । जन सुरतराम उन सूं मिल्यां, सब मल नाखे धोय ॥२॥
काल कामना सब मिटे, सतगुरु के दीदार । जन सुरतराम सांची कही, कदे न आवे हार ॥३॥
सतगुरु सब गुण मेट दे, निर्गुण करे निराट । जन सुरतराम सांची कही, दे मुक्ति तणी वे बाट ॥४॥
सतगुरु का परताप सूं, तोष प्रगट्यो आय । सुरतराम त्रय लोक धन, मेरे मन नहीं भाय ॥५॥
मेरे मन भावे नहीं, तीन लोक को धन । जन सुरतराम गुरुदेव का, चरणां लाग्यो मन ॥६॥
चल मन अब उठ चालिये, रामचरण के पास । जन सुरतराम सांचो कहै, वे बस्या राम के वास ॥७॥
वास बस्या है राम के, रामचरणजी संत । जन सुरतराम उन सूं मिल्या, उधरे जीव अनंत ॥८॥
जीव तिरे भव सिंधु में, सतगुरु धारे शीस । जन सुरतराम गुरुदेव बिन, बूडे बिस्वावीस ॥९॥
सतगुरु मेघ स्वरूप है, बर्षत है जल ज्ञान । सुरतराम कहै शिष्यकी बुझहै तप्त निघान ॥१०॥

पद में पहुंचे सोय । भक्ति हाथ वैराग पद, ज्ञान दृष्टि जो होय ॥' श्रीमहाराज 'रामचरण सांची कहै, बीच करो विचार । ज्ञान भक्ति वैराग बिनु, कोइ न उतर्‌यो पार ॥१॥ ज्ञान भक्ति वैराग की, खराखरी यह बात । आपा अर्पे आप कूं, करें नहीं पर घात । करे नहीं पर घात, भक्ति जहं भर्म न कोई । ज्ञान सबै निर्दोष, त्याग वैराग होई ॥ रामचरण जे पहुंचसी, निर्भय पद कुशलात । ज्ञान भक्ति वैराग की, खराखरी यह बात ॥'' आदि के अनेक उद्धारण दिये जा सकते है किन्तु स्थानाभाव से समास व्यास रीति से ही लिखा गया है ।

(२) हरिरुप = परमश्रद्धेय, प्रातर्वंदनीय श्रीमहाराज का स्वरुप 'हरिरुप' है क्योंकि वे अपने शरणागत भक्त-जिज्ञासु के समस्त पापों को हर लेते है; उन्हें निर्मल कर देते है; साथ ही चंचलता रूप विक्षेप तथा अज्ञान का आवरण को भग करके निर्मल निराट् बना देते है ।

(३) दीदार=साक्षात्कार; कदे न आवे हार = कभी भी संसार रूपी रणक्षेत्र में हार नहीं होगी । अर्थात् अन्त में स्वस्वरुपस्थ ही हो जाओगे ।

(४) निराट् = जो अपनी बनावट, रूप, विशिष्टताओं आदि के कारण सबसे अलग तरह का और अनोखा, अनूठा, अप्रमेय हो; मुक्ति = अत्यन्त दुःख की निवृत्ति और परमानन्द की प्राप्ति ही मुक्ति का स्वरूप है ।

(५) तोष = आप्तकामता की प्राप्ति हो गई । 'सर्वकर्मा सर्वकामः' (छा० ३।१४।२)

(६) अज्ञानरूपी तिमिरांध को समूल ध्वंस करने तथा स्वस्वरुपस्थ होने के लिये सद्‌गुरुदेव का आधार, अवलम्बन अत्यावश्यक है । गुरु को अधीतवेद, श्रोत, ब्रह्मनिष्ठ तथा जिज्ञासु की कोटि के अनुसार उसकी शंकाओं को निर्मूल करने का अभ्यासी होना चाहिये । 'आचार्यवान् पुरुषोवेद ।' (छा० ६।१४।२) सत्संग का तात्पर्य सत्पुरुषों के संग से है । गुरु भी सत्पुरुष ही हैं । उनके द्वारा प्रदान किया गया ज्ञान भव संतरण के लिये दृढ़ जहाज है ।

(१०) तुलनीय—'सद्‌गुरु मेघ स्वरूप है, शिष जिज्ञासी होय । रामचरण तब नीपजे, निरफल जाय न कोय ॥१॥ रामचरण करसण भगति, सुध हिरदयो सुखेत । नाम बीज गुरु महर जल, ब्रह्म ज्ञान फल देत ॥२॥'

ज्ञान प्रकट तब होत है, सतगुरु धारे सीस । अज्ञ अंधेरो सुरतराम, मिट जाय बिस्वाबीस ॥११॥
धन सतगुरु संसार में, करे जीव सूं सीव । सुरतराम रामहि मिले, पलक न बिसरे पीव ॥१२॥
अगम तणी गम होत है, सतगुरु के परताप । सुरतराम गुरुदेव की, महिमा कहूं लग आप ॥१३॥
नीर नदी शीतल बहै, कोप नदी अति अग । जन सुरतराम कोइ नीसरे, गुरु शब्द सूं लग ॥१४॥

सुमरण (२)

अलख पुरुष अविनाशि है, अखण्ड, खण्ड नहीं होय । सुरतराम सो राम है, निशदिन भजिये सोय ॥१॥

---

(११) सद्गुरु की शरणागत होने से अज्ञान रूपी अंधेरे का नाश तथा ज्ञान रूपी आलोक का उदय बीस बिस्वा हो जाता है । बीस बिस्वा का एक बीघा होता है जो पूर्णता को इंगित करता है । बीघा एक एकड़ का ३/५ वां भाग होता है । एकड़ ४८४० वर्ग गज के बराबर होता है । एकड़ पाश्चात्य माप है ।

(१२) तुलनीय—"राम रच्या जिव सतदास, चौरासी कूं जाहि । गुरु का रचिया राम भज, मिले राम के मांहि ॥३८॥" (श्रीसंतदासवाणी, गुरुदेवांग)

(१३) आप = कहाँ तक सन्मार्ग दर्शक सद्गुरुदेव की महिमा का बखान किया जावे ।

सुमरण (२)— देवर्षि नारद के मत से अपने सर्व कर्मों को भगवान् के अर्पण करना और भगवन् का तनिक सा भी विस्मरण होने में परम व्याकुल होना ही भक्ति है । 'नारदस्तु तदर्पिताखिलाचारिता तद्विस्मरणे परम व्याकुलतेति ॥१६॥' इसी को दृढ़ता के साथ अगले सूत्र में कहते हैं—'अस्त्येवमेवम् ॥२०॥' भक्ति का स्वरूप ठीक उक्त सूत्रानुसार ही है । इसे उदाहरण द्वारा स्पष्ट करते हैं—'यथा व्रजगोपिकानाम्' ॥२१॥ वास्तव में, व्रजगोपियाँ भक्ति की जीवंत मूर्ति थीं । गायों को दुहते हुऐ, धानादि कूटते हुऐ, दही बिलोते हुऐ, आंगन लीपते हुऐ, बालकों को झुलाते हुए कहने का तात्पर्य यह है कि जीवन की प्रत्येक क्रिया को सम्पादित करते समय वे श्रीकृष्ण को एक क्षण भी नहीं भूल पाती । बस, यही सुमरण का स्वरूप है, यही भक्ति का स्वरूप है । इसीलिए श्रीस्वामी रामप्रतापजी ने कहा है—'सुमरण सबके ऊपरे, संतन काढ्यो सोध । रामप्रताप सुमरण कियाँ, मन के लगे प्रमोध ॥ सुमरण सूं मन लाय, राम ही राम उचारो । रेण दिवस अठ याम, नाम कूं पल न बिसारो ॥ तब सुख होवे जीव, पीव कूं परसे भाई । दर्से आनन्द कन्द, बंध भय भोर नसाई ॥ रामप्रताप एह रामजी, सुमर्‌या सारे काज । कलयुग मांहि विशेष ऐ, भव जल पार जहाज ॥" श्रीमहाराज 'रामचरण हम कहत हैं, कह्या कबीरा नाम । सकल शास्तर सोधिया, कलयुग केवल नाम ॥ निशदिन भजिये राम कूं, तजिये नहीं लगार । रामचरण आठों पहर, पल पल बारम्बार ॥'

(१) अलख = इन्द्रियातीत; अविनाशी = नाश रहित, एक रस; पुरुष = 'क्लेशकर्म विपाकाशयैरपरामृष्टः पुरुष विशेष ईश्वर ॥' (यो०स० १।२४) । तुलनीय—'रामचरण का शीश पर, एक निरंजण राम । रात दिवस रटबो करे नहीं आन सूं काम ॥' सुमरण किसका किया जाय, का स्पष्टीकरण इस प्रथम शब्द में ही हो जाता है, हो भी जाना चाहिये । अन्यथा आत्म जिज्ञासु षट्दर्शनों के चक्र में उलझता जायगा तथा निष्कर्ष कुछ भी हाथ नहीं लगेगा ।

राम सजीवन है सही, मृतक सबही जान। जन सुरतराम भज तास कूँ, तज दे फोकट ज्ञान ॥२॥
भजै राम रमतीत कूँ, तजे सकल परिवार। जन सुरतराम वे प्राणिया, वहे न भव की धार ॥३॥
धार बहे नहीं जगत की, भक्त पदी जो होय। सुरतराम भज राम कूँ, सकल वासना खोय ॥४॥
सब ही साधन छांड के, राम रत्त जो होय। राम भजन बिन सुरतराम, मन निर्मल नहीं कोय ॥५॥
पाठ जप तप नेम को, साधन को फल ऐह। सुरतराम रत राम सूँ, दोष न काहू नेह ॥६॥
नेह किया दुख ऊपजे, दोष किया सूँ पाप। जन सुरतराम संतन मतो, जपे राम को जाप ॥७॥
जाप जपे राखे जतन, खत न धरे गुरु शीश। सुरतराम संतन सजन, प्रीत प्रेम भज ईश ॥८॥
नाम तुल्य दीसे नहीं, जप तप पूजा दान। जन सुरतराम तीरथ कहा, नहीं नाम सामान ॥९॥

---

(२) मृतक सबही जान = माया झूँठी है। माया कृत संसार भी झूँठा है। इसकी सत्ता अनादि किन्तु शांत है अतः इसे मृतक तुल्य ही समझना उचित है।

(३) परिवार = संसार के प्रति राग द्वेषों का सर्वथा परित्याग करना अभिष्ट है। 'मोह सकल व्याधिन कर मूला तेहि ते पुनि उपजई बहु सूला ॥" (मानस ७।१२१।१५)

(४) वासना = कोई ऐसी आकांक्षा, इच्छा या कामना जो मन में दबी हुई, बनी या बसी रहती है। यह किन्हीं पूर्व संस्कार के फलस्वरूप मन में बसी रहती है और जब तक इसका अंत नहीं होता तब तक मनुष्य को मुक्ति नहीं मिल सकती। 'लोकवासनया जन्तोः शास्त्रवासनयापिच। देहवासनया ज्ञानं यथावन्नैव जायते ॥ (मुक्तिकोपनिषद्) लोकवासना = कोई भी मेरी निंदा न करे सुतरां स्तुति ही स्तुति करे, इस प्रकार के आग्रह का दृढ़ संस्कार ही लोकवासना है। शास्त्रवासना-सर्वशास्त्रों को, उनके अर्थों को मैं पढ़ूंगा तथा धारण करूंगा, इस प्रकार के आग्रह का दृढ़ संस्कार ही शास्त्रवासना है। देहवासना–स्थूलशरीर के रोगादि औषधि के द्वारा, पाप पुंजों को तीर्थाटनादि द्वारा निःशेष निवारण करूंगा तथा पुष्टि, शोभा, पुण्य आदि गुण का संपादन करूंगा, इस प्रकार के आग्रह का दृढ़ संस्कार ही देहवासना है।

(५) तुलनीय—'सर्वधर्मान् परित्यज्य मामेकं शरणं व्रज। अहं त्वा सर्वपापेभ्यो मोक्षयिष्यामि मा शुचः।' (गीता १८।६६)

(६) तुलनीय-- 'अहो बत श्वपचोऽतो गरीयान्, यज्जिह्वाग्रे वर्तते नाम तुभ्यम्। तेपुस्तपस्ते जुहुवः सस्नुरार्या ब्रह्मानूचुर्नाम गृणन्ति ये ते ॥' (श्रीमद्भा.३।३३।७)

(७) नेह—किसी से प्रेम-प्रीति बढ़ाने से राग का जन्म होता है। दोष=किसी में अवगुण देखने पर, करने पर वैर का जन्म होता है। वस्तुतः राग एवम् द्वेष ही बन्धन के कारण हैं। संत इनसे पृथक् रह रामभजन करते हैं। "राग द्वेषवियुक्तैस्तु विषयानिन्द्रियैश्चरन्। आत्मवश्यैर्विधेयात्मा प्रसादमधिगच्छति ॥ प्रसादेसर्व दुःखानां हानिरस्योपजायते। प्रसन्नचेतसो ह्याशु बुद्धिः पर्यवतिष्ठते ॥६५॥ (गी. २)

(८) खत = दोष

पास रहै नित राम के, छूटे सब विपरीत। सुरतराम हरिभजन सूं, यम दे सके न भीत ॥१०॥
राम भजे जग कूं तजे, सोही उतरे पार। जन सुरतराम साँची कहै, जिनसे सुक्ख अपार ॥११॥
ऊठत बैठत राम भज, श्वाँस न खोय निकाम। जन सुरतराम साँची कहै, पावे पूरो धाम ॥१२॥
भजिये भजिये राम कूं, तजिये तजिये काम। जन सुरतराम वे प्राणिया, पावे पूरो धाम ॥१३॥
सुमरण कीजे राम को, तोड़ भरम की बार। जन सुरतराम साँची कहै, मत बिसरो करतार ॥१४॥
काम करत है हाथ सूं, मुख में जीभ निकाम। सुरतराम तासूं कहो, ऊठत बैठत राम ॥१५॥
सनकादिक ग्रह शेष मुनि, रटैं रामहि राम। सुरतराम तिहि छाँड के, करे मूढ बहु काम ॥१६॥
श्वाँस उश्वाँसा ध्याइये, दम नहीं खाली खोय। जन सुरतराम साँची कहै, अरस परस मिल सोय ॥१७॥
राम भजन सूं सुरतराम, कर्म कटैं ततकाल। जैसे काकी राग सूं वृक्ष सबहि बिहाल ॥१८॥
तन देवल है सुरतराम, मूरति चेतन राम। सेवा सुमरण साजिये, और छाँड सब काम ॥१९॥
सब घट व्यापक रम रह्या, सब देवन का देव। जन सुरतराम अघ हरन है, इही राम गुरुदेव ॥२०॥
रुचि कर भजिये राम कूं, वासूं करिये नेह। जन सुरतराम साँची कहै, जन्म-जन्म सुख लेह ॥२१॥
चार वेद मंडाण हैं, सब जग का विस्तार। इनसूं न्यारा सुरतराम, राम नाम तत सार ॥२२॥

---

(१२) तुलनीय—'ऊठत बैठत जागतां, सूतां सुमरण होय। रामचरण ररंकार धुनि, बाहर लखै न कोय ॥'

(१४) भ्रम की बाड़—सीमा को तोड़कर राम भजन करो। नाम एवं नामी का अभिन्न समझना, नाम का जप नाम के अर्थ की भावना के साथ करना, कलियुग में भगवत्प्राप्ति का सरलतम साधन भगवन्नाम जप ही है, आदि सिद्धान्तों पर अटल रहना ही भ्रम की बार-सीमा तोड़ना है।

(१५) प्रायः प्रश्न किया जाता है कि क्या प्रत्येक परिस्थिति में ही भगवन्नामजप विधेय है। तब उत्तर स्वरूप भगवान् श्रीकृष्ण का कथन स्मरण हो जाता है—'तस्मात् सर्वेषु कालेषु मामनुस्मर युध्य च ॥' (गी.८।७ का पूर्वार्ध) श्री-महाराज तर्क प्रमाण से सिद्ध करते हैं-'जान अजान परे पग पावक सो सत मान जरे ही जरेंगे। जान अजान छुवे पारस मैल विकार हरे ही हरेंगे ॥ जान अजान पिवे कोइ अमृत जासुके शोक टरेहि टरेंगे। जान अजान रटे नित राम कूं रामचरण तिरे हि तिरेंगे ॥' गोस्वामी तुलसी 'भाव कुभाव अनख आलस हूं। नाम जपत मंगल दिशि दश हूं ॥' (मा. बा.२८।१ का पूर्वार्ध)।

(१८) कर्म कटैं ततकाल– श्रीमहाराज फरमाते हैं-'मैलो कपड़ो मैल सूं, कदे न उज्ज्वल थाय। रामचरण सा[…] दिया, मैल दूर हो जाय॥५६॥ कर्म करत सब जीवड़ा, संशय साध्या मोख। तो निवृति क्यूं पूजिये, कोइ न ल[…] दोख ॥६०॥' मैल से मैल की निवृत्ति नहीं होती। मैल की निवृत्ति साबुन से ही होती है। ऐसे ही परमात्म-प्रा[…] क्रिया साध्य नहीं होकर भाव एवं ज्ञान साध्य है।

(१९) तुलनीय–'देही सोही देहुरो, राम निरंजण देव। आरति सोही आरती, सुमरण सोही सेव। सुमरण सोही [...] नईविद आपो अर्पण। तजिये दिल की दूज, पूज यूं देवत परसण ॥ रामचरण जे थिर भया, जिन वे पाया भेव। सोही देहुरो राम निरंजण देव ॥६५॥ (अनुभवविलास, तृतीय प्रकरण)

(२२) मंडान=मंडित करने की क्रिया या भाव। वेदों में कर्मकाण्डीय विषय अधिक है। कर्मकाण्ड सां[…]

संसार समद तिरियो चहै, तो बैठो नाम जहाज। सतगुरु केवट सुरतराम, तो सारे सब काज ॥२
नौका है इक नाम की, जगत सरोवर माहि। पापी पामर सुरतराम, बैठे सो तिर जाहि ॥२
बैठे सो तिर जायँगे, भिन्न भेद कुछ नाहि। ऊँच नीच कोइ सुरतराम, राम भज्या शुच पाहि ॥२
गुण इन्द्री मन चंद्र को, होई गत परकास। ज्ञान अर्क हुय सुरतराम, सुमरण इवासो स्वांस ॥२
पाँच तत्व बिनसैं सही, गुण तीनों को नास। सुरतराम थिर राम है, सुमर्‍याँ निश्चल वास ॥२
निश्चल होवे राम संग, चंचलता जाय ऊठ। जन सुरतराम सुख में मिले, जन्म मरण सूं छूट ॥२
योग यज्ञ तीरथ सबहि, राम नाम आधार। निशदिन भजिये सुरतराम, ऐसा सुमरण सार ॥२
राम नाम मंतर अजब, पार करे पल माहि। सुरतराम बोहिथ बनी, चढ़े स बूड़े नाहि ॥३
राम नाम नित निर्मला, काटे अनंत विकार। जन सुरतराम साँची कहै, रट्याँ उतारे पार ॥३
भूमि भक्ति जल ज्ञान को, बीज राम को नाम। मोक्ष धाम प्रगटे तबहि, निपजे सूरतराम ॥३
खोय वासना धोय मन, सथिर होय तब चित्त। सुरतराम रामै भज्याँ, कटे कर्म का खत्त ॥३
घट माहि परगट भया, सुरतराम के राम। राग दोष सब गत भया, चूरण कीन्हो काम ॥३
काम झाल सबही बुझी, भज्याँ राम को नाम। जन सुरतराम मल जल गया, उत्तम भइ जू धाम ॥३
देह धाम तो बिनससी, थिर नहीं दीखे कोय। सत्य धाम है सुरतराम, ब्रह्म माहि गछ होय ॥३
सबही साधन छाँडिके, राम रत्त जो होय। रामभजन बिन सुरतराम, मन निर्मल नहीं कोय ॥३
राम कहै दरया गहै, जन्म सफल विस्तार। जन सुरतराम साँची कहै, विलसै सुक्ख अपार ॥३८

रागादि का ही वर्द्धन करता है, परमात्मा सम्बन्धी विषय नहीं। इसीलिये राम नाम को इससे पृथक् कहा गया त्रैगुण्यविषया वेदा निस्त्रैगुण्यो भवार्जुन। निर्द्वन्द्वो नित्यसत्त्वस्थो निर्योगक्षेम आत्मवान् ॥(गी. २।४५)

(२३-२५) तुलनीय–'अपारसंसार समुद्रमध्ये सम्मज्जतो मे शरणं किमस्ति। गुरो कृपालो कृपया वदैतद्विश्वेश पादाम्बुज दीर्घनौका ॥'(प्रश्नोत्तरी) राम भजन करने में लिंग, वर्ण, देश, काल आदि किसी भी प्रकार का कोई व्यवधान नहीं है। राम नाम रूपी जहाज का प्रत्येक शरीर धारी उपयोग कर सकता है।

(२६) गुण का प्रकाश निर्गुण होने पर, इन्द्रियों का बल वृद्धावस्था आने पर, मन का वेग सतत् अभ्यास वैराग्य से तथा चंद्रमा का प्रकाश सूर्योदय होने से स्वतः ही गत हो जाता है। इसी प्रकार ज्ञान रूपी सूर्योदय अज्ञान रूपी अंधकार तत्काल तिरोहित हो जाता है।

(२७) 'भूमिरापोऽनलो वायुः खं मनो बुद्धिरेव च। अहंकार इतीयं मे भिन्ना प्रकृतिरष्टधा ॥' (गीता ७।४) अष्टधा प्रकृति जड़ है, विनाशी है। अविनाशी तत्त्व मात्र परमात्मा है।

(३०) बोहिथ=नाव, जहाज। 'जासु नाम सुमिरत इक बारा। उतरहिं नर भव सिंधु अपारा ॥' (मानस २।१०। २ का पूर्वार्ध)

(३२) तुलनीय–भाव भूमि भगति बिरछ, हरि पद फल ता मांहि। पर दुई ज्ञान विराग सूँ, खगवत साधु पांहि ॥ खगवत साधु पांहि और भी अधिक उम्हावे। पैं मुख सूँ कीरति करैं, परा बिनु पैंडित न पावे ॥ रामचरण तरुवर नि[…] केहरि भूखे जाहि। भाव भूमि भगति बिरछ, हरि पद फल ता मांहि ॥ (अनुभववाणी कुं० विचाराग)

रामभजन सूं सुरतराम, बुधि निर्मल हो जाय। जन्म जन्म का पाप ही, रटतहि गया बिलाय ॥३९॥
रटतहि गया बिलाय सब, पाप ताप दुख काल। जन सुरतराम साँची कहै, राम करे प्रतपाल ॥४०॥

नाम सामर्थ्य

राम भजन सूं सुरतराम, बधिक तिर्‌यो तिहि बार। किते पतित पावन भये, राम नाम उर धार ॥४१॥
राम नाम सूं सुरतराम, जल तिरिया पाखाण। मिनख तिरन कहा बेर है, राम नाम निर्वाण ॥४२॥
सार शब्द तिहुं लोक में, ध्यावत शेष महेश। जन सुरतराम साँची कहै, ध्रुव कूं देख विशेष ॥४३॥
रामभजन सूं सुरतराम, गनिका ह्वे गई पार। पुरी सहित राजा तिर्‌यो, राम नाम ततसार ॥४४॥
तीन लोक उच्चार है, ऐक रमइया राम। जन सुरतराम साँची कहै, अैसा समरथ राम ॥४५॥
रामभजन सूं सुरतराम, गज तिरियो तिहि बार। करुणा करके टेरियो, छण में लियो उबार ॥४६॥
हेला सुनत दोउ उधरं, तिरता लगे न बार। जन सुरतराम साँची कहै, अैसा सुमरण सार ॥४७॥
भजन करत गुजरी तिरी, यमुना दीनों पार। जन सुरतराम साँची कहै, साखि बदत संसार ॥४८॥
राम नाम सूं सुरतराम, सब कारज सिध होय। कहा सुरासुर नर स्वपच, सुमर्‌या सदगति जोय ॥४९॥
सुमर्‌या सदगति पाइहैं, कहा स्वपच कहा ऊँच। रामभजन बिन सुरतराम, सबही जाणूं नूंच ॥५०॥६४॥

---

(४१) वधिक=सदन कसाई; कसाई होते हुए भी जीव हिंसा नहीं करते थे। आजीविका व कुलाचार समझकर दूसरों से मांस खरीदकर बेचा करते थे। मापक (बाट) के रूप में शालग्राम की मूर्ति अनजाने में काम लेते थे। किसी संत ने भगवान् की मूर्ति समझकर सेवापूजार्थ मांग ली। सदनकसाई ने सहर्ष दे दी किन्तु भगवान् को संत का षोडशोपचार पूजा पसंद नहीं आया। रात्रि में संत को स्वप्न दिया कि मुझे वापिस सदन भक्त के पास पहुँचा दो। अन्ततः संत ने शालग्राम को सदन भक्त के पास पहुँचा दिया।

(४२) जल तिरिया पाखान=रामजी ने वाल्मीकि के आदेशानुसार पत्थरों पर 'रा' 'म' लिख-लिख कर समुद्र में छोड़ा। वे तिर गये। आने-जाने का पुल बन गया। इसी प्रकार, रामजी का नाम भव संतरण के लिए दृढ़ पुल है।

(४४) गनिका=वेश्या वृत्ति करती थी। एक शुक पाल रखा था। उसे सतत् 'राम-राम' रटवाती। स्वयं भी राम राम बोलती। अन्त समय में, पूर्वाभ्यासवश, राम राम का स्मरण स्वतः ही हुआ। फलतः मोक्षगामिनी हुई।

(४६) गज तिरियो=जब एक सहस्र वर्ष तक अपने बल पर लड़ते हुऐ हाथी चूर चूर हो गया। तब अन्ततः पूर्व जन्म संस्कारवशात् भगवान् को याद किया। भगवान् विष्णु गरुड़ को भी छोड़कर पैदल ही सत्वरता के साथ दौड़े। अन्ततः गज का ग्राह से उद्धार किया।

(४८) गुजरि तिरी=गोकुल की गोपबालाऐं। सतत् श्रीकृष्णानुशीलन करते करते तद्रूप हो गई। भक्ति संप्रदाय सर्वस्व बन गई। 'यथा व्रज गोपिकानां' (नारद भक्ति सूत्र २१) गोपीकाओं की दिनचर्या का दिग्दर्शन भागवतकार के शब्दों में—'या दोहनेऽवहननेमथनोपलेप प्रेङ्खेङ्खनार्भरुदितोक्षणमार्जनादौ गायन्तिचैनमनुरक्तधियोऽश्रुकंठयो धन्याव्रजस्त्रिय उरुक्रम चित्तयानाः ॥(१०।४४।१५)

विनती (३)

मैं अपराधी जीवड़ो, सुणिये राम अखण्ड । जन सुरतराम विनती करे, करो न यम का दण्ड ॥१॥
मेरी कुछ श्रद्धा नही, अरज करूं कर्तार । जन सुरतराम कहे रामजी, दूर करो सब भार ॥२॥
तन को भारज नाखियो, मनवो छोडत नाहि । जन सुरतराम कहे रामजी, तुमरे मुश्किल नाहि ॥३॥
तन धन बल मेरे नही, सुनो रमइया राम । सुरतराम के एक तू, कर्म न आवे काम ॥४॥
शिष सुत बल है कोइके, कोई के परिवार । सुरतराम के एक तू, सुणियो राम अपार ॥५॥
कुछ करणी कर्तब नही, तप बल नाही कोय । सुरतराम कहे रामजी, एक आसरो तोय ॥६॥
ना मैं नाटक चेटकी, रिधि सिधि नाहि कोय । सुरतराम के रामजी, एक धणी है सोय ॥७॥
रिधि सिधि नाटक चेटकी, बूडे नरक मंझार । सुरतराम कूं रामजी, राखो करणी लार ॥८॥

विरह (४)

नयना झरणा झरत है, विरहिनि के अठ याम । जन सुरतराम सांची कहे, दरसोने क्यूं राम ॥१॥

विनती(३)–अध्यात्म-मार्ग-पथिक को विनय शील सम्पन्न होना अनिवार्य है । अन्यथा वह सत्संग का लाभ, सद्गुरु की संगति का लाभ सच्छास्त्रों का लाभ-कुछ भी नहीं ले सकता । अर्जुन भगवान् श्रीकृष्ण के सामने पंडितों जैसी बातें करता रहा । भगवान् सुनते रहे तथा वही करते रहे, जो अर्जुन कहता रहा । अन्ततः अर्जुन विनय पूर्वक भगवान् की शरणागत होता है 'कार्पण्यदोषोपहतस्वभावः पृच्छामि त्वां धर्म संमूढचेताः । यच्छ्रेयः स्यान्निश्चितं ब्रूहि तन्मे शिष्यस्तेऽहं शाधि मां त्वां प्रपन्नम् ॥ (२।७) तथा पूछता है कि मेरा श्रेय किसमें है, वह निश्चय पूर्वक मुझे कहिये । मैं आपकी शरण में हूँ' । अर्जुन श्रीकृष्ण के शरणागत हुआ कि तत्काल उन्होंने अपना उपदेश प्रारम्भ कर दिया । यही विनय सम्पन्नता का फल है । चौथे अध्याय में भी कहा है –'तद्विद्धि प्रणिपातेन परिप्रश्नेन सेवया । उपदेक्ष्यन्ति ते ज्ञानं ज्ञानिनस्तत्त्वदर्शिनः ॥३४॥' कि तत्त्व के जिज्ञासु को तत्त्ववेत्ता की शरण ग्रहण करनी चाहिये । शरण अहंकार पूर्वक ग्रहण नहीं होती, विनय पूर्वक ही होती है । क्योंकि शरणागति में 'अहम्' को कोई स्थान ही नहीं होता ।

(२) भार लिया ते बूडिया, भव सागर की धार । राम सुमर हलका भया, सो नर उतरया पार ॥' अहंकार ही भार है । भक्ति मार्ग में भगवत्प्रीत्यर्थ ही सर्व कर्म किये जाते है । अतः अहंकार स्वतः ही गलित हो जाता है । ज्ञान मार्ग में कर्ता अपने को कर्त्ता ही नहीं मानता । अतः अहंकार कौन करे ? मार्ग कोइ सा भी हो, अहंकार सर्वत्र में वर्जित है । 'क्लेशोऽधिकतरस्तेषामव्यक्तासक्तचेतसाम् । अव्यक्ता हि गतिर्दुःखं देहवद्भिरवाप्यते ॥ (गी. १२।५)

विरह(४)–प्रेम (परमब्रह्म परमात्मा) के प्रकाश के लिये, दीदार–साक्षात्कार के लिये विरह की कितनी आवश्यकता है अथवा विरहाभाव में क्या प्रेम प्रकाश हो सकता है; का गूढ़तम चित्रण श्रीमद्भागवत के दशमस्कंध अध्याय ३० 'रासक्रीडायां कृष्णान्वेषणं नाम त्रिंशोऽध्यायः' में किया गया है । जब महाभागवती गोपियों को कृष्ण मिलन का कुछ गर्व हो गया तब तत्काल वे अन्तर्ध्यान हो गये । 'तासां तत् सौभागमदं वीक्ष्य मानं च

दर्शों तो आनंद हुए, दीज्यो तुम दीदार। सुरतराम अब बिरहिन, निशदिनी करे पुकार ॥२॥
निशदिन रहै पुकारती, पल भर रहती नाहिं। सुरतराम बिरहिनि तणी, खबर लीजिये आहि ॥३॥
तन सूक्यो खड़खड़ भयो, रह्यो न लोही मांस। जन सुरतराम बिरहिनि कहै, टूटत आवे श्वांस ॥४॥
टूटत टूटत श्वर चलै, राम पधारो आप। जन सुरतराम बिरहिनि कहै, निशदिन तुमरो जाप ॥५॥
चाम सकुचि भेली भई, हाड रह गये तन्न। सुरतराम बिरहिनि कहै, तुम बिन लगे न मन्न ॥६॥
मन लागे भागे भरम, कर्म रहै नहीं कोय। सुरतराम ऐ विरह का, लक्षण कहिये सोय ॥७॥
कंत पधारे महल में, होइ आनंद अनंत। जन सुरतराम साँची कहै, कहैं सबेही संत ॥८॥८०॥

प्रेमप्रकाश (५)

प्रेम पदारथ अजब अति, नियम सुध रहे नाहिं। सुरतराम शंका मिटे, राम गुरु दरशांहि ॥१॥८१॥

केशवः। प्रणमाय प्रसादाय तत्रैवान्तरधीयत ॥' तत्काल गोपियों की वैसी ही दशा हो गई जैसी यूथपति गजराज
के बिना हथिनियों की होती है। उनका हृदय विरह की ज्वाला से जलने लगा। वे कभी वृक्षों से पूछती है, कभी
लता-गुल्मों से पूछती है, कभी कृष्णाभिनय करने लगती है, कभी अन्यमनस्क होकर कृष्णानुशीलन में निमग्न
हो जाती है, कभी बेसुध होकर कृष्ण कृष्ण पुकारती है। कहने का तात्पर्य यह है कि उनकी चित्त वृत्ति पूर्णतः
श्रीकृष्णमय बन गई। उन्हें कृष्णेतर न कुछ दिख रहा था, न सुन रहा था। न उनसे कुछ विचारा जा रहा था।
वस्तुतः उनका स्वरूप ही कृष्ण रूप हो गया था। तादात्म्य सम्बन्ध स्थापित हो गया था 'तन्मनस्कास्तदालापा-
स्तद्विचेष्टास्तदात्मिकाः। तद्गुणानेव गायन्त्यो नात्मागाराणि सस्मरुः ॥४४॥' कभी कभी वे यहाँ तक भी कह उठी
कि क्या प्रेम करके प्रेमिका को नहीं मिलना उसका बध नहीं है? 'वरद निघ्नतो नेह किं वधः ॥२॥' जब इस
प्रकार का तीव्रतम विरह उनके हृदय में उमड़ गया तब तत्काल भगवान् श्रीकृष्ण उनके बीच प्रकट हो गये–
'इति गोप्यः प्रगायन्त्यः प्रलपन्त्यश्चचित्रधा। रुरुदुः सुस्वरं राजन् कृष्ण दर्शन लालसाः ॥१॥ तासामाविर
भूच्छौरिः स्मयमानमुखाम्बुजः। पीताम्बरधरः स्रग्वी साक्षान्मन्मथ मन्मथः ॥२॥' अतः इस दिव्य लीला कथानक
से यही निष्कर्ष निष्पन्न होता है कि परमात्मा प्राप्ति के लिये विरहानुभूति आवश्यकतम सोपान है। चाहे साधन
पथ सगुण साकार की ओर झुका हुआ हो अथवा निर्गुण निराकार की ओर।

प्रेम(५)—भाव की परिपक्वावस्था का नाम ही प्रेम है। महर्षि नारद ने प्रेम का स्वरूप इस प्रकार बतलाया है
"गुणरहितं कामना रहितं प्रतिक्षणवर्धमानम् अविच्छिन्नं सूक्ष्मतरमनुभवरूपम् ॥५४॥" (नारद भक्तिसूत्र) प्रेम
गुण रहित एवं कामना रहित होता है। प्रतिक्षण अविच्छिन्न रूप से बढ़ता रहता है। सूक्ष्म से भी सूक्ष्मतर है और
अनुभव रूप है। किसी में कोई गुण विशेष को देखकर जो प्रेम उत्पन्न होता है वह अवगुण दीखने पर विच्छिन्न
हो सकता है किन्तु वास्तविक प्रेम व्यवहार में गुणावगुण देखने का अवकाश ही नहीं रहता। प्रेमी प्रेमास्पद
से लौकिक या पारलौकिक किसी भी वस्तु की कामना की पूर्ति नहीं करवाना चाहता क्योंकि वह आप्तकाम
की साधना करते-करते स्वयं आप्तकाम बन जाता है। जब तक भुक्ति मुक्ति की स्पृहा रूपी
पिशाचिनी हृदय में विद्यमान है तब तक साधक वास्तविक प्रेमी नहीं बन सकता। सच्चा प्रेम
उसी प्रकार बढ़ता जाता है जैसे कुन्दन को तपाने से उसकी दीप्ति बढ़ती जाती है। अत्यधिक ताप देने

परिचय (६)

राम नाम जिभ्या जपै, कंठ हृद नाभि जाय। त्रिकुटि गढ़ हुय सुरतराम, चौथे रहै समाय ॥१॥
मीन वचन जाके नहीं, नहीं देह वैदेह। जन्म मरण जाके नहीं, जन सुरतराम सो लेह ॥२॥
शुन्य शिखर में सुरतराम, भरया अमी का कुंड। झिलमिल दोऊ मिलत है, सुरति शब्द का भुंड ॥३॥

पर मिल जाता है तथा अभिन्नरूप ही हो जाता है, उसी प्रकार साधक प्रेमास्पद का अविच्छिन्न चिन्तन करते तदाकार ही हो जाता है। भेद के लिए कोई स्थान ही नहीं रह जाता। यद्यपि कुंदन का उदाहरण एकदम एकदेशीय है तथापि कुछ अंश में समान है। प्रेमी प्रेमास्पद से किसी भी कामना की पूर्ति के लिए आकांक्षा ही नहीं करता, उसके हृदय में तो कामना के उदय होने के बीज ही समाप्त हो गये होते हैं। विरह की तीव्रतम वेदना रूपी अग्नि कामना रूपी जंगल को समूल भस्म कर देती है। प्रेम को न तर्क की कसौटी पर कसा जा सकता है न शास्त्र बल पर समझाया जा सकता है। वह सर्वथा अनुभवगम्य विषय है। श्रीरूप स्वामी के अनुसार 'सम्यङ् मसृणितस्वान्तो ममत्वातिशयाङ्कितः। भाव स एव सान्द्रात्मा बुधैः प्रेमा निगद्यते ॥१॥' (भ. र. सि., पूर्वविभाग च. ल.)

परिचय(६)—'न तत्र चक्षुर्गच्छति न वाग्गच्छति नो मनो न विद्मो न विजानीमो यथैतदनुशिष्यादन्यदेव तद्विदितादथो अविदितादधि। इति शुश्रुम पूर्वेषां ये नस्तद् व्याचचक्षिरे। (केन उ. १/३) उस ब्रह्म तत्व तक न चक्षु आदि ज्ञानेन्द्रियाँ न वाकादि कर्मेन्द्रियाँ और न मन ही पहुँच सकते हैं। वह तो इनसे सर्वथा अतीत है। अतः किस प्रकार ब्रह्म के स्वरूप को बतलाया जाय कि वह ऐसा है। इस बात को न तो हम स्वयं अपनी बुद्धि से जानते हैं और न दूसरों से सुनकर ही जानते हैं क्योंकि वह जाने हुये पदार्थ समुदाय से भिन्न ही है और इन्द्रियों द्वारा न जानने में आने वाले से भी ऊपर है। यह पूर्वाचार्यों के मुख से सुनते आये हैं जिन्होंने हमें ब्रह्म का तत्व भली भाँति व्याख्या करके समझाया था।

इस श्रुति कथन से स्पष्ट है कि उस अचिन्त्य चिन्मय तत्व का बोध प्राकृत साधनों द्वारा सम्भव नहीं मात्र अनुभव गम्य है। जब अनुभव द्वारा-अपरोक्षानुभूति द्वारा उसकी उपलब्धि हो जाती तब अनुभवी की स्थिति 'मूकास्वादनवत्' हो जाती है। वह कुछ भी कहने में अपने आपको सर्वथा अक्षम पाता है। मूक किसी पदार्थ का स्वाद वाणी से न बता पाकर हाथादि की भाव-भंगिमा से बताने का प्रयत्न करता है जो असफल होता है। ठीक इसी प्रकार ब्रह्म साक्षात्कार प्राप्त संत महापुरुष उस परमतत्व का परिचय प्राप्त जन साधारण को यथा सम्भव उसका निर्देश करते हैं।

(१) तुलनीय—चौकी भजन प्रताप की, संत कह गये च्यार। रामचरण या सत्य है, दूजा भरम असार॥ रसन कंठ रस पीय के, हिरदय सुक्ख विलास। नाभि कमल सूं उलट कै, सुरति गई आकाश ॥२॥ (अनुभव परिचयांग)

(२) जीवनमुक्त-ब्रह्म साक्षात्कार प्राप्त की दशा का वर्णन है।

(३) सुरति—संत साहित्य अध्येताओं ने इस शब्द पर गम्भीर विवेचन प्रस्तुत किया है। कोई स्मृति, कोई वृत्ति, कोई चित्त की उर्ध्वगामिनी वृत्ति, कोई जीव, कोई बहिर्मुख आत्मा, कोई ख्याल-याद आदि के विकल्प

सुरति शब्द का जोड़ हुय, शून्य शिखर कूँ जाय। सुरतराम आनन्द में, निर्भय रहै समाय ॥४॥
निर्भय रहै समाय के, सुरति सुंदरि नारि। सुरतराम जहं रामजी, नयना लिये निहारि ॥५॥

सुरति का अर्थ स्पष्ट करते हैं। सामान्यतः राजस्थान में कहा जाता है 'मोकूँ तेरी बात की सुरत ही नहीं रही ख्याल में यूँ ही निकल गई, तेरी बात।' (राज० राज्यान्तर्गत सवाईमाधोपुर जिले में बोली जाने वाली बोली का स्वरूप) इस वाक्य को देखने से ज्ञात होता है कि यहाँ सुरति शब्द का प्रयोग स्मृति, याददास्ति या ख्याल के रूप में हुआ है। इस बात को पुष्ट करते हुये दादूजी महाराज फरमाते हैं–'जब नाहीं सुरति शरीर की, बिसरे सब संसार। आत्म न जाने आपको, तब एक रह्या निरधार ॥१५३॥" (परिचयांग, पृष्ठांक ११६) इसका अनुवाद संत श्रीनारायणदासजी करते हुऐ लिखते हैं 'जब स्मरण करते-करते शरीर का भी ध्यान नहीं रहता तब तो साधक सम्पूर्ण सांसारिक भोगवासनादि विकारों से मुक्त हो जाता है और जीवात्मा अपने को ब्रह्म से भिन्न नहीं जानता। तब विचार द्वारा यही निर्णय होता है, एक–अद्वैत ब्रह्म ही सम्पूर्ण विश्व में भरा हुआ है। संतश्री लवलीनरामजी की वाणी में भी स्पष्टतः यही उद्घोषित होता है–'सैंया मैं सुरति सब भूली, कुसुम सेज भई सूली। तेरे बिनु जुलम सी गुजरे, तुझे कुछ नाहि रे सुध रे॥" हे मेरे मालिक! मैं सम्पूर्ण सांसारिक सुध बुध भूल चुकी हूँ। बस, मेरी स्मृति पथ में आपके अतिरिक्त कुछ है ही नहीं। आपके विरह में, फूलों की सेज भी शूलों की सेज में परिणित हो गई है। आपके बिना मेरा जीना भी दूभर हो गया है; किन्तु हे प्राणधन! आपको मेरी तनिक भी सुध नहीं है।

मानस में भी 'सुरति' शब्द का व्यवहार काफी हुआ है। मात्र एक उदाहरण देकर कथन को स्पष्ट करने का प्रयत्न करेंगे—'यह बिचारि नहि करउँ हठ, झूँठ सनेह बढ़ाइ। मानि मातु कर नात बलि, 'सुरति' बिसरि जनि जाय ॥५६॥ (अयोध्याकांड) नित्यलीलालीन भाईजी श्रीहनुमानप्रसादजी पोद्दार अनुवाद करते हुये लिखते हैं—'यह सोचकर झूँठा स्नेह बढ़ाकर मैं हठ नहीं करती। बेटा! मैं बलैया लेती हूँ, माता का नाता मानकर मेरी सुध मत भूल जाना। श्रीस्वामी रामचरण महाप्रभु भी सुरति का स्मृति के रूप में ही प्रयोग करते हुये कहते हैं –'राम नाम परताप 'सुरति' कर जोय रे। या बिनु तारक नाहि दूसरो कोय रे॥ जड़ तिरे जल मांहि लिख्यो ररकार रे। पर हाँ, पाहण उतरे पार जीव क्या बार रे॥१०॥ (चं. मु.) श्रीस्वामी रामचरण महाप्रभु फरमाते हैं कि राम नाम के प्रताप को, पिछले इतिहास को साक्षी बनाकर स्मरण कीजिये, स्मृति में लाकर देखिये, तब मालूम होगा कि इसके अतिरिक्त संसार जलधि से पार उतारने में कोई भी सक्षम नहीं है। जब जड़ पाषाण ही जल पर राम नाम के प्रभाव से तैर गये तो जीव का उद्धार होने में कितनी देर लगेगी! स्मृति हमेशा पुराने देखे हुये प्रसंगों की ही होती है। प्रायः व्यवहार में भी कहा जाता है कि मैं अमुक बात को भूल गया था। अब प्रसंग प्राप्त होते ही पुनः स्मृति हो आई है। वस्तुतः किसी कारण से भूली हुई बात का पुनः प्राप्त होना स्मृति कहलाती है। नयी बात का 'चिन्तन' और पुरानी बात की 'स्मृति' होती है। अतः चिन्तन संसार का तथा स्मृति स्वस्वरूप की होती है; क्योंकि संसार पहले नहीं था और स्वस्वरूप-परमात्मा अनादि काल से है। स्मृति में कर्त्तापन का भाव कम रहता है जबकि चिन्तन में कर्त्तापन का भाव अधिक रहता है। महर्षि पतञ्जलि समाधि पाद में वृत्ति के ५ भेद 'प्रमाण विपर्यय विकल्प निद्रास्मृतयः ॥६॥' प्रमाण, विपर्यय, विकल्प, निद्रा और स्मृति बताकर सभी के लक्षण बताते हैं; स्मृति का लक्षण इस प्रकार बताते हैं—'अनुभूत

दिल दर्पण कर सुरतराम, निरखि आत्मा नूर। सुरति चक्षु परगट भया, शब्द गुरो को सूर ॥
नयन सुरति का गगन मधि, खुटा जाय जरुर। सुरतराम जहँ ब्रह्म है, रह्या आप भरपूर ॥
सबं आप भरपूर है, खाली नहिं तिलमात। जन सुरतराम वा देश में, सब संतन को साथ ॥
योगी योग समाधि सूं, विरहमंड रह छाय। जन सुरतराम हरि भजन बिनु, ब्रह्म सुख नहीं पाय ॥
शून्य शिखर में सुरतराम, राम विराजे आप। परसत ही सब मल गया, रह्या न पिछला पाप ॥
पाप ताप जाके नहीं, नहीं पुण्य को रेख। सुरतराम तासुं मिल्या, धरे न कोई भेख ॥
नहीं नारि पुरुषा नहीं, नहीं राग वैराग। सुरतराम सो राम है, नहीं वृक्ष नहीं बाग ॥
देह की कोइ आंख सूं, देख्या चाहे राम। सुरतराम चख सुरति का, निरखत है वा धाम ॥

विषयासम्प्रमोषः स्मृतिः ॥११॥' प्रमाण, विपर्यय, विकल्प और निद्रा—इन चारों वृत्तियों से जो संस्कार
में पड़े हैं उनका पुनः किसी निमित्त को पाकर स्फुरित हो जाना स्मृति है। इससे यह सिद्ध हुआ कि स्मृति
में अन्य चारों वृत्तियों का स्वयमेव समावेश हो जाता है। तब सिद्धान्ततः वृत्ति ही सुरति ठहरती है।
की वृत्तियों का निरोध ही योग है। जब चित्त की वृत्तियों का ही निरोध हो गया तो दृष्टा का स्वस्व
अवस्थान भी निश्चय ही हो गया। 'योगश्चित्तवृत्तिनिरोधः ॥२॥ तदा द्रष्टुः स्वरूपेऽवस्थानम् ॥३॥'
सुरति योग भी शब्द—परमब्रह्मपरमात्मा—स्वस्वरूप का ज्ञान है। सुरति—वृत्ति है। बिखरी हुई सुरति
समेट कर स्वस्वरूपानुसंधान में लगाकर उसी में निमग्न हो जाना 'शब्द सुरति योग' है। निष्कर्षतः सुरति
वृत्ति है। भगवान् श्रीकृष्ण से अर्जुन कहते हैं—'नष्टो मोहः स्मृतिर्लब्धा त्वत्प्रसादान्मयाच्युत।' प्रभो! आ
प्रसाद से मेरा मोह नष्ट हो गया है तथा मैंने—भूली हुई स्मृति को पुनः प्राप्त कर लिया है। वेदांतानुसार
सदैव ब्रह्म ही है किन्तु अविद्या की उपाधि से वह अपने स्वरूप को विस्मृत कर चुका होता है। जैसे भर
के पास हिरणी का बच्चा प्रारम्भ से ही रहा; वह मानवाकृति को ही अपना सजातीय समझता था किन्तु
एक बार हिरणियों का एक झुंड आया तो उसे अपनी असली जाति का पता लगा और वह तत्काल उस
में सम्मिलित होकर भरतजी का साथ छोड़ गया। बस, इसी प्रकार जब जीव अपनी वृत्ति को चारों ओ
समेट कर स्वस्वरूपानुसंधान में निमग्न हो जाता है तो संतों के कथनानुसार सुरति—वृत्ति का शब्द—स्वस्
में अवस्थान हो जाता है। जीव-ब्रह्म का भेद जो कल्पित है, वह मिट जाता है तथा मैं ब्रह्म ही हूँ
अनुभव होने लगता है। वृत्तिप्रभाकर के अनुसार—'अंतः करण का और अज्ञान का परिणाम
कहलाती है।'

(९) दिल को दर्पण बनाकर उसमें आत्मा रूपी प्रकाश देखिये। देखने के लिए चक्षु चाहिए। सुरति को चक्षु बना लीजिए। तब गुरु प्रदत्त शब्द रूपी सूर्य का प्रकट हुआ प्रकाश स्पष्टतः दिखने लगेगा।

(१०) मल = पाप, यहाँ मल, विक्षेप तथा आवरण इन तीनों का ही विनाश अपेक्षित है।

(१३) 'न तु मां शक्यसे द्रष्टुमनेनैव स्वचक्षुषा। दिव्यं ददामि ते चक्षुः पश्य मे योगमैश्वरम् ॥' (गीता ११/८

ररो ममो दुइ नयन कर, मुकुर बन्यो वैराग।
कर सुरति कर सुरतराम, ब्रह्म निरखो सुमरण लाग ॥१४॥
सुरति निहारे ब्रह्म कूँ, अरसि परसि कर प्रीति। सुरतराम नहचल भई, चंचलता कूँ जीति ॥१५॥
मूरख कूँ कहिये कहा, मानत नाही मूल। सुरतराम वा देस मे, नाही कोइ सबूल ॥१६॥
सुरतराम सब जग कहै, ब्रह्म को मुक्ख बताय। कहवे तो आवे नहीं, राम कहे सो पाय ॥१७॥
रसना सूँ लाग्यो रहै, राम सरुपी ध्यान। सुरतराम वे प्राणियाँ, मिलसी ब्रह्म निधान ॥१८॥
साध बण्यो परब्रह्म को, नहीं देह आकार। जन सुरतराम कहिये कहा, ऐसो मुक्ख अपार ॥१९॥१००॥

पतिव्रता (७)

सुरति मिलाई पीव सूँ, सब सूँ होय निशंक। जन सुरतराम साँची कहै, तोड़ जगत की शंक ॥१॥
कोइ नारि झल में जले, कोइ करे व्रत बहु खेद। सुरतराम पतिव्रत की, महिमा गावे वेद ॥२॥
पतिवरता पति छोड के, न्यारी होय न मूर। सुरतराम रामै भजे, मुख पर झलके नूर ॥३॥
नूर चमके रैण दिन, पतीव्रता के सोय। सुरतराम विभचारणी, धींगा के वस होय ॥४॥
पतिव्रता के सुरतराम, नही कामना कोय। रंगरती इक पीव कै, तन मन अरप्या दोय ॥५॥
अन जल खावे पीव का, बार बार सुख गात। जन सुरतराम तजिये नही, राम पिया का सात ॥६॥
आपा सौंपे पीव कूँ, तन मन अपना लाय। जन सुरतराम साँची कहै, ऐहो पीव सुभाव ॥७॥
पीव रीझ तब देत है, तत में तत्त्व मिलाय। जन सुरतराम साँची कहै, ऐही पीव सुभाव ॥८॥

---

(१४) ब्रह्म साक्षात्कार—अपरोक्षानुभूति के साधनों का वर्णन किया गया है। 'राम' की दोनों आँखें बनानी चाहिये। भौतिक पदार्थ देखने में चक्षु ही समर्थ है। ब्रह्म दर्शन मात्र राम नाम स्मरण से ही हो सकता है। आँख सबको देखती है किन्तु स्वयं को नहीं देख पाती। अतः स्वयं को देखने के लिये दर्पण की आवश्यकता होती है। इसी प्रकार सुमरण को निर्वेद का सहयोग परमावश्यक है। चीजे को पकड़ने का साधन हाथ होता है। राम नाम को पकड़ने का साधन वृत्ति है। बहिर्मुख वृत्ति को शब्द के साथ जोड़कर अन्तर्मुखी करने से ही लक्ष्य वेधित हो सकेगा।

पतिव्रता(७)—'अन्याश्रयाणाम् त्यागोऽनन्यता ॥१०॥' (नारद भक्ति सूत्र) अपने प्रियतम परमात्मा को छोड़कर दूसरे अन्य सभी आश्रयों के त्याग का नाम अनन्यता है। 'मयि चानन्ययोगेन भक्तिरव्यभिचारिणी। विविक्तदेशसेवित्व मरतिर्जन संसदि ॥' (गीता १३/१०) हे अर्जुन ! मुझ परमेश्वर में अनन्य योग के द्वारा अव्यभिचारिणी—केवल परमात्मा में ही अटल और पूर्ण विशुद्ध प्रेम करके निरन्तर परमात्मा का ही भजन, ध्यान करते रहना, भक्ति तथा एकान्त और शुद्ध देश में रहने का स्वभाव और विषयासक्त मनुष्यों के समुदाय में प्रेम का न होना आदि धारण करना योग्य है। इन सभी उद्धरणों में पातिव्रत्य—अनन्यता का पाठ पढ़ाया गया है। मात्र परमात्मा में एकान्तिकी स्नेह करके सांसारिक लोक–लज्जा, वाद-अपवाद, निन्दा-स्तुति आदि समस्त द्वन्द्वों को परित्याग कर देना ही सच्चा पातिव्रत धर्म है। वह अहर्निश अपने पति में ही निमग्न रहती है। अन्ततः पति रूपी परमेश्वर पत्नी रूपी साधक को अपने स्वरूप में ही विलय कर लेता है।

आन देव सब जार है, एक रमइया कंत । तन मन धन सब सौंप दे, सुरतराम सो संत ॥
पत्नी पावे सुख सरस, जावे दुःख बिलाय । जन सुरतराम आनंद में, शोक कदै नहीं थाय ॥१
पीव परसि निर्भय भई, लव लागी दिन रैण । जन सुरतराम साँचो कहै, दाय न आवे फैण ॥१
पतीव्रता की देह पर, तन मन वारुं जीव । जन सुरतराम साँची कहै, गह्या राम इक पीव ॥१

सुरतराम पिव राम है, आदि अंत भरतार ।
मनख पीव बहु मल भर्‌या, या देह तणो व्यवहार ॥१३॥११३॥

व्यभिचारिणी (८)

सुरतराम विभचारणी, जार मिल्या आनंद । पति सूं तो बेमुख फिरै, ज्यूं मद बहत गयंद ॥१
सुरतराम कहिये कहा, अद बद कथा अपार । राम पीव कूं छाँडि कै, आन धींग सूं प्यार ॥२

---

(१३) इस साखी से स्वयं वाणीकार ही अपना मंतव्य स्पष्ट करते हुए कहते हैं कि अध्यात्म मार्ग में पंच तत्वों निर्मित शरीर वाला पति नहीं है । वह तो तरह-तरह के दुर्गुणों की खान है । फिर वह आदि अंत वाला है । तो मात्र देह सम्बन्ध का पति है । वास्तविक पति तो परमात्मा ही है जो सर्व सद्गुणों का आकर, आदि एवम् मध्य में एक रस रहने वाला तथा अकल-कलाविभाग रहित है । कला विभाग मात्र अवतारों में ही है । जैसे—राम षोड़सकला, परशुराम एकादश कला आदि । अतः साधक रूपी पत्नी का पति तो परमात्मा है । संत श्रीरज्जब ने बड़ा ही सुन्दर वर्णन किया है—सूरज देखे सकल दिशि, चलिबे को दिशि एक । त्यों रहि राम सौं यहु गति बरत विवेक ॥१॥ (प्रतिव्रतांग, पृष्ठांक ४२३)

व्यभिचारिणी(८)—जो पतिव्रता नहीं है, वह व्यभिचारिणी है । इसकी स्थिति ठीक वैसी ही होती है जैसी के वशीभूत हुए मद बहते हाथी की होती है । काम के वशीभूत हुआ हाथी इतना मद होश हो जाता है कि असली अथवा नकली हथिनी का ही बोध नहीं रहता । वह काठ की बनी हुई नकली हथिनी से सम्पृक्त हो अपनी काम वासना की पूर्ति करना चाहता है किन्तु वह अपने आपको भी फँसा लेता है तथा काम पूर्ति भी कर पाता । श्रीस्वामी रामचरण महाप्रभु कहते हैं–"घणाँ जार परमोधतां बाँट्या पड़ गयो जीव । रामच व्यभिचारणी परिहरि मेल्हो पीव ॥१२॥" कई प्रेमियों के साथ केलिक्रीड़ा करते करते अपनत्व की भावना एक में नहीं बन पाती । बस, अपनी स्वार्थ पूर्ति का ही लक्ष्य प्रधानतः रह जाता है । अपने पति से भी प्र जाती है । परिणामतः स्थिति, न कुत्ता घर का न घाट का, जैसी बन जाती है । इसीलिये भगवान् कृष्ण ने में कहा है–'कामैस्तैस्तैर्हृतज्ञानाः प्रपद्यन्तेऽन्यदेवताः । तं तं नियममास्थाय प्रकृत्या नियताः स्वया ॥ २० ॥ यो यो यां यां तनुं भक्तः श्रद्धयार्चितुमिच्छति । तस्यतस्याचलां श्रद्धां तामेव विदधाम्यहम् ॥२१॥ स तया श्र युक्तस्तस्याराधनमीहते । लभते च ततः कामान्मयैव विहितान्हितान् ॥२२॥ अंतवत्तु फलं तेषां तद्भवत्यल्पमेधस देवान्देवयजोयान्ति मद्भक्ता यान्ति मामपि ॥२३॥

(२) अदबद = व्यभिचारिणी की बातें परनिंदा में परिगणित होने से अधिक विस्तार पूर्वक कहना उचित धींग = जार, परपति ।

गली डाँगती नित फिरै, जन सुरतराम विभचार । राम पीव निरखै नहीं, अज्ञान ज काजल सार ॥३॥
अञ्जन कियो अज्ञान को, जन सुरतराम संसार । भलो बुरो देखै नहीं, नौड़ करै विभचार ॥४॥
जन सुरतराम साँची कहै, कहै सबैही जन्न । राम नाम बिन भरम है, ज्यूं बिभचारिणि को मन्न ॥५॥
बखान जु करती मर गइ, ज्यूं र कँवारी नार । जन सुरतराम साँची कहै, मिल्या नहीं भरतार ॥६॥
लम्बो घूंघट काढ़ कै, करै पीव की बात । आपो सौंपै जार कूं, जन सुरतराम कूं घात ॥७॥१२०॥

साधु (६)

जुगति पाय जोगी कहै, मुख सूं एकहि राम । जन सुरतराम भर्म नहीं, भोगा सूं निष्काम ॥१॥
कोई तरसे ज्ञान कूं, कोई तरसे ध्यान । जन सुरतराम रत राम सूं कोई संत सुजान ॥२॥
ज्ञान अध्यातम राम रत, सुरति वासना हीन । जन सुरतराम नामी सोहि, तेई साधु प्रवीन ॥३॥

---

(३) गली डाँकती = व्यभिचारिणी कामाभिभूत हुई जारों के डेरों पर इधर उधर घूमती फिरती है। ऐसे ही साधक कामनाओं के वशीभूत हुआ विभिन्न देवी देवताओं की सेवा पूजा करता फिरता है। अज्ञान ज काजल सार = व्यभिचारिणी सत्यासत्य का निर्णय इसलिये नहीं कर पाती क्योंकि उसने अपनी आँखों में ज्ञानांजन की जगह अज्ञानाञ्जन आंजा हुआ होता हैं।

(६) कोई अविवाहिता नारी गीत तो गाये पति के विरह के किन्तु विवाह उसका होवे ही नहीं, तो उसका गाना वृथा ही होता है। ऐसे ही अन्य देवोपासना से परमार्थ लाभ हो नही सकता। भगवान् श्रीकृष्ण रासलीला प्रारम्भ करने से पूर्व गोपियों को उद्घोषित करते हुए कहते है—'भर्तुः शुश्रूषणम् स्त्रीणां परो धर्मोह्यमायया। तद्बन्धूनां च कल्याण्यः प्रजानां चानुपोषणम् ॥२४॥ दुःशीलोदुर्भगो वृद्धो जडो रोग्यधनोऽपिवा। पतिः स्त्रीभिर्न हातव्यो लोकेप्सुभिरपातकी ॥२५॥ अस्वर्ग्यमयशस्यं न फल्गु कृच्छ्रम् भयावहम्। जुगुप्सितं च सर्वत्र औपपत्यं कुलस्त्रियाः ॥२६॥ (श्रीमद् भा० १०/२९)

साधु (६)—रामस्नेही हस्तलिखित संपूर्ण साहित्य में प्रायः 'साधु' शब्द के स्थान पर 'साध' शब्द प्रयुक्त हुआ है। शुद्ध शब्द साधु होने से हमने सर्वत्र साधु पद ही काम लिया है। 'साधु अंग' में मात्र संतों के लक्षण ही दर्शाये गये है। साधु संगति आदि विषयों पर स्वतंत्र अंग हैं। साधु के लक्षणों के विषय में प्रत्येक ग्रंथ कुछ न कुछ कहता ही है। कारण स्पष्ट है—अध्यात्म पक्षीय ग्रंथ या तो साधकों द्वारा लिखे गये है, या सिद्धों द्वारा लिखे गये हैं, या ब्रह्म मुख निःसृत उसी की अमोघ वाणी है। अतः साधु के लक्षण, गुण, माहात्म्य, संगति पर प्रकाश डाला जाना अपरिहार्य सा हो जाता है। इसीलिये संत के बारे में प्रत्येक ग्रंथ मुखर है। यहाँ पर श्रीमद्भागवद् के ११/११ के २९ से ३३ तक के पाँच श्लोक नमूने के तौर पर उपस्थित किये जा रहे है—'कृपालुरकृत द्रोहस्तितिक्षुः सर्वदेहिनाम्। सत्यसारोऽनवद्यात्मा समः सर्वोपकारकः ॥२९॥ कामैरहतधीर्दान्तो मृदुः शुचिरकिञ्चनः। अनीहो मित भुक् शान्तः स्थिरोमच्छरणो मुनिः ॥३०॥ अप्रमत्तो गंभीरात्मा धृतिमाञ्जित षड्गुणः। अमानी

वैराग्यं परमोलाभः संस्कारेण हि लभ्यते। ज्ञानोदयो भवेन्मुक्तः सर्वकर्माद्विमुच्यते ॥४॥
सत बोले तोले वचन, कौडी रखै न पास। जन सुरतराम वे साधवा, बस्या राम के बास ॥५॥
तन मन सूँ तोड़ै सही, सुरति शब्द सूँ जोड़। जन सुरतराम वे साधवा, तजे सकल ही खोड़ ॥६॥
खोड़ खोट सबही तजै, आसन संयम साध। जन सुरतराम सो साधवा, साधे ब्रह्म समाध ॥७॥
मन इंद्री जीते सही, बीते घट को काम। जन सुरतराम सो साधवा, भजे अखंडित राम ॥८॥
राम भजै सो साधवा, स्वाद वाद परित्याग। जन सुरतराम साँची कहै, परगट पूरण भाग ॥९॥
देही को अभिमान तज, भज पूरण भगवान। जन सुरतराम वे साधवा, गावे निशदिन राम ॥१०॥
राम भजन का जोर सूँ, सब विघ्नन को नाश। जन सुरतराम वे साधवा, रहै राम के पास ॥११॥
राम भजन रत नय चलै, शीतल बचन सुभाव। जन सुरतराम संसार में, विरला साधु पाव ॥१२॥
कुत्ता रुपी जगत है, भूँके वाद विवाद। लघुता की लाठी करै, सुरतराम सो साध ॥१३॥

मानदः कल्पो मैत्रः कारुणिकः कविः ॥३१॥ आज्ञायैवं गुणान् दोषान् मयादिष्टानपि स्वकान्। धर्मान् सन्त्यज्य यः सर्वान् मां भजेत स सत्तमः ॥३२॥ ज्ञात्वा ज्ञात्वाथ ये वै मां यावान् यश्चास्मि यादृशः। भजन्त्यनन्य भावे ते मे भक्ततमा मताः ॥३३॥"

(४) वैराग्य परम लाभ है। वैराग्योदय संस्कार से ही होता है। ज्ञानोदय से मुक्ति की प्राप्ति होती है। सर्वकर्मों से विमुक्ति मिल जाती है। संसार एवम् संसार के समस्त प्रपंचों से वैराग्य हो जाना परम लाभ-मोक्ष प्राप्ति सदृश है। ज्ञानोदय से मुक्ति, सर्वकर्मों से विमुक्ति तब ही सम्भव है, जब साधक माया तथा तत्कार्य संसार के संपूर्ण प्रपंचों से सर्वथा राग शून्य हो जाये। संसार में उसी प्रकार रहे जैसे कमल जल में रहता है। वैराग्य ज्ञानोदय का प्रथम सोपान है। इसके अभाव में आगे की कोई भी क्रिया संपादित नहीं हो सकती।

(१०) देही = देह। यहाँ मात्रा पूर्ति हेतु देह को देही किया गया है। अर्थ देह से ही निकालना है, देही से नहीं।

(१३) ब्रह्मर्षि नारद लिखते हैं—'वादो नावलम्ब्यः ।७४।' भक्त को वाद-विवाद नहीं करना चाहिये। क्यों 'बाहुल्यावकाशादनियतत्वाच्च ।७५।' क्योंकि वाद विवाद में बाहुल्य का अवकाश है और वह अनियत है, अतः है। अतः वाद विवाद करने वालों को कुत्ता सदृश बताकर नम्रता की लाठी तैयार करने का आदेश ग्रंथक कर रहे हैं। कुत्ता लाठी से ही भगाया जाता है। इसी प्रकार शुष्क तर्कियों को नम्रता से, दीनता से भगाया सकता है। साधुओं के लक्षण, गुण, माहात्म्य, संगति आदि पर कुछ भी लिखना सूर्य को दीपक दिखाना है जिस प्रकार, जिस व्यक्ति ने अपने जीवन में कभी भी हीरे को देखा ही न हो, वह उस हीरे को कैसे पहच सकता है। उसका मौल कैसे कर सकता है? वस्तुतः नहीं कर सकता। जन्मांध व्यक्ति, जिसने हाथी का क नाम भी न सुना हो, उससे हाथी के बारे में पूछा जाये तो वह उसके बारे में कुछ भी यथार्थ नहीं बता सकता। भक्त एवम् भगवान् के बारे में वेदादि ग्रंथों में जो भी कुछ कहा गया है, वह मात्र आंगुल्यनिर्देश न्यायानु यत्किञ्चित् वर्णन ही है। संत श्रीदादू साधु को साकार परमात्मा घोषित करते हुऐ कहते हैं—'निराकार सुरति सौं, प्रेम प्रीति सौं सेव। जे पूजे आकार को, तो साधू प्रत्यक्ष देव ॥२॥' (पृष्ठांक २९९)। गोस्व

तन मन छोड़ि उपाय सब, छांड़े बाद विवाद। राम रता निशदिन रहै, जन सुरतराम सो साध ॥१४॥
जन सुरतराम संसार में, संत बड़े दरियाव। महिमा नदियाँ बहु पड़े, उलझि कदे नहि जाव ॥१५॥१३५॥

साधुमहिमा (१०)

भूमि पवित्र संत चरण, रसना उचरत राम। जन सुरतराम साँची कहै, जहँ संत करत विश्राम ॥१॥
संता का दीदार सूँ, सुधरे सबही काम। जन सुरतराम साँचो कहै, मन पावै विश्राम ॥२॥१३७॥

असाधु (११)

पंच विषय के बस पड़्या, जैसे जड़्या जंजीर। जन सुरतराम जग सूरता, साधु नहि वे बीर ॥१॥
छाँया कूँ निरखत फिरै, परखै दाम विशेष। मन का मार्‌या सुरतराम, असाधु लख वे देष ॥२॥
राम कह्याँ निंद्या करै, ल्यावै बेहद ज्ञान। जन सुरतराम असाधु वे, नरक माँहि हैरान ॥३॥१४०॥

साधु संगति (१२)

सार वस्तु को सोचबो, सत्संगति में होय। जन सुरतराम सत्संग बिनु, सार न दीसे कोय ॥१॥

तुलसी कहते हैं—'मोरे मन प्रभु अस बिस्वासा। राम ते अधिक राम कर दासा ॥ राम सिंधु घन सज्जन धीरा। चन्दन तरु हरि संत समीरा ॥'' (मानस उ० का० १२०।८–९)

साधु महिमा (१०)–(१) ''संत जहाँ परगट भये, सोही तीरथ धाम। और सबै ही भूमिका, भरी कामना काम ॥ भरी कामना काम, जगत का काज सँवारे। संत चरण जलपान, कामना मन की गारे ॥ रामचरण पद रेणुका, तन वंदन अभिराम। संत जहाँ परगट भये, सोही तीरथ धाम ॥'' (अनु. वाणी. अमृतउप० ३।२७) 'तीर्थी कुर्वन्ति तीर्थानि सुकर्मी कुर्वन्ति कर्माणि सच्छास्त्री कुर्वन्ति शास्त्राणि ॥६५॥' नारद भक्ति सूत्र। भागीरथ गंगा से कहते हैं—'साधवो न्यासिनः शान्ता ब्रह्मिष्ठा लोक पावनाः। हरन्त्यघंतेऽङ्ग सङ्गात् तेष्वास्तेह्यघभिद्धरिः ॥'' (श्रीमद्भा. ९।९।६) इसी तथ्य को संत रज्जब उदाहरण द्वारा इस प्रकार समझा रहे हैं—'साधू चन्दन बावना, नर तरु बावहि बास। आदम भार अठार की, तिनहीं न परसे पास ॥५॥' (पृष्ठांक २२३)

(२) दीदार = दर्शन, साक्षात्कार। विश्राम = पूर्ण आराम, संकल्प-विकल्पों की गति पूर्णतः निरुद्ध; फलत परमानन्द रूप मोक्षोपलब्धि।

असाधु (११)–(१) पंच विषय-शब्द, स्पर्श, रूप, रस एवम् गंध।
(२) छाँया = शरीर। दाम = धन सम्पत्ति।
(३) बेहदज्ञान = शुष्कज्ञान, करणीहीन ज्ञान।

साधु संगति (१२)–'तुलयाम लवेनापि न स्वर्गं ना पुनर्भवम्। भगवत्संगिसंगस्य मर्त्यानां किमुताशिषः ॥' (श्रीम १/१८/१३) हे सौम्य ! भगवत्सङ्गी प्रेमियों के निमेषमात्र के सङ्ग की तुलना, स्वर्गादि की तो बात ही क्या, पु का नाश करने वाली मुक्ति के साथ भी नहीं की जा सकती, फिर मर्त्यलोक के राज्यादि सम्पत्ति की तो बात ह है। ठीक ऐसा ही मानसकार कहते हैं—'तात स्वर्ग अपवर्ग सुख, धरिअ तुला इक अंग। तूल न ताहि सकल

साधु संगति बिन ना लघे, बेड़ा पहली पार। जन सुरतराम साँची कहै, उलझ पुलभ संसार ॥२॥
उलझ-पुलझता हु रह्या, भक्ति नहि उरधार। जन सुरतराम साँची कहै, बेनर भया ख्वार ॥३॥
मन को मेट भिरात सब, संतों को ले शीत। जन सुरतराम भय नामहु भेव, निय होय प्रतीत ॥४॥

कुसंगति (१३)

जो सुख लव सतसंग ॥" महर्षि नारद—'महत्सङ्गस्तु दुर्लभोऽगम्योऽमोघश्च ॥३९॥ लभ्यतेऽपि तत्कृपयैव ... तदेव साध्यतां तदेव साध्यताम् ॥४२॥' महापुरुषों का सङ्ग दुर्लभ, अगम्य और अमोघ है ॥३९॥ ... कृपा से ही महापुरुषों का सङ्ग मिलता है ॥४०॥ अतएव उस महत्सङ्ग की ही साधना करो, उनकी ही ... करो ॥४२॥' इन सभी उद्धरणों से साधु सङ्गति के महत्त्व पर पर्याप्त प्रकाश पड़ता है।

(१) सार वस्तु को सोधबो = सार वस्तु स्वस्वरूप का बोध है। उसका शोधन मात्र सत्संगति में एवम् सद्गुरु की शरणावलम्बन से ही हो सकता है।

(२) बेड़ा = नाव, जहाज; पहली पार = गन्तव्यस्थान

(४) शीत = संतों की जूंठन को शीथप्रसाद कहते हैं। नारदजी के शब्दों में—'उच्छिष्ट लेपाननुमोदितो ... सकृत्स्म भुञ्जे तदपास्तकिल्बिषः। एवं प्रवृत्तस्य विशुद्धचेतसस्तद्धर्म एवात्मरुचिः प्रजायते ॥" (श्रीमद्भा. १/५/२४) संतों की अनुमति प्राप्त करके बर्तनों में लगा हुआ जूंठन मैं एक बार खा लिया करता था। ... मेरे सारे पाप धुल गये।। इस प्रकार उनकी सेवा करते-करते मेरा हृदय शुद्ध हो गया और वे लोग जैसा ... पूजन करते थे, उसीमें मेरी भी रुचि हो गयी। "चरणामृत चितवन हरे, चित की रामचरण। परसादी ... सूं, करे पवित्तर मन्न ॥ करे पवित्तर मन्न, तोष समता उपजावे। काम-क्रोध अरु भर्म, भान निज नाम ... उभय लोक आनंद करन, जो दे किरपा सूं जन्न। चरणामृत चितवन हरे, चित की रामचरण्ण ॥३॥ ... परसाद, आध कण आनन्द कारी। शोक रोग भय हरे, भ्रत्य कूं करे सुखारी ॥ सुर सुरपति के आस, ... नरतन पावे। वेद कहै बाखाण, जासु गुण गिणति न आवे ॥ ता प्रसाद नारद भयो, हरि को निज हित ... रामचरण भागोत में, कह्यो कृष्णद्वैपाण ॥८॥ (अनुभव वा. जिज्ञासु एवं साधु संगति अंग) शीथ के ... पर वेद, स्कंदपुराण, ज्ञानार्णव, हारीत स्मृति, पद्मपुराण, मनुस्मृति, भागवत् आदि में विपुल प्रमाण ... स्थानाभाव से यहाँ नहीं दिये हैं। भिरात = भ्रांति। राम, राम के दास-भक्त तथा सद्गुरुदेव—इन ... पृथक् मानने की भ्रांति को मेटकर संतों का शीथ ग्रहण करना चाहिये। वस्तुतः तीनों की सत्ता एक ... नाभाजी तो भक्तमाल में भक्ति को सम्मिलित करते हुये इनकी संख्या चार कर देते हैं—'भक्ति भक्त ... चतुर नाम वपु एक।'

कुसंगति (१३)—गोस्वामी तुलसी लिखते हैं—हानि कुसंग सुसंगति लाहू। लोकहुँ बेद बिदित सब का... चढ़इ रज पवन प्रसंगा। कीचहिं मिलइ नीच जल संगा ॥ साधु-असाधु सदन सुक सारीं। सुमिरहिं राम देहिं ... धूम कुसंगति कारिख होई। लिखिय पुरान मंजु मसि सोई ॥ सोइ जल अनल अनिल संघाता। होइ जल... दाता ॥" (मानस बा. का.)

बीस पान बीड़ी बंधी, तामें एक गलात । जन सुरतराम वा राखतां, उगणीसूँ ही जात ॥१॥
एक गया उर सोक हुय, रहता बांधो गाढ । कांजी टपके सब फटे, जन सुरतराम बिन ग्राढ ॥२॥
अनेक अगुण उर में धरे, बरज्या रहै न कोय । जन सुरतराम हरि भक्ति में, लाजां मरै जु खोय ॥३॥
या खोई अकाज है, भला जु नाहीं होय । जन सुरतराम मुख मूँदता तृप्ति किस विधि जोय ॥४॥१४८॥

मन (१४

जब लग मन सुलझै नहीं, तब लग चंचल जान । जन सुरतराम साँची कहै, भर्‍या अविद्या प्रान ॥१॥
भरी अविद्या प्राण में, काम क्रोध सँग जोय । जन सुरतराम साँची कहै, मन चंचल यूँ होय ॥२॥

---

(१) बीस पानों की एक पुड़िया, संयोग से एक पत्ता गला हुआ; निश्चित है गला हुआ अकेला पत्ता बाकी उन्नीस पत्तों को भी गला देगा । किन्तु उन्नीस बढ़िया पत्ते उस गले पत्ते को नहीं सुधार सकते । अतः कुसंग करना ही नहीं, कुसंग का नाम भी बुरा है ।

(२) कांजी = ऊख के रस (सिरका) में नमक, राई आदि डालकर तैयार किया जाने वाला एक प्रसिद्ध पेय पदार्थ जो स्वाद में खट्टा होता है । (मानक शब्द कोष १/४६६) दूध में काँजी के गिर जाने से दूध फट जाता है ।
(३) अनेक अवगुणों से जो लज्जित नहीं होता किन्तु हरि भक्ति में लज्जानुभव करता है, वह सदैव खोता ही खोता है, पाता कुछ भी नहीं है ।
मन (१४)—पाँचों भूतों के सत्व गुणांश मिलकर अन्तःकरण की उत्पत्ति करते हैं । पाँचों ही गुणों का सत्वांश अन्तःकरण में होता है, इसलिये इसे सत्व भी कहा जाता है । देह के आन्तरभाग में स्थिति है, इसलिये अन्तः कहा जाता है । ज्ञान का साधन होने से करण कहा जाता है । अतः मूलतः अन्तःकरण ज्ञान का साधन है । अन्तःकरण के परिणाम को वृत्ति कहा जाता है । वृत्ति ४ प्रकार की है । पदार्थ के भले बुरे स्वरूप का निश्चय करने वाली वृत्ति बुद्धि है । संकल्प विकल्पात्मक वृत्ति मन है । चिंतन वृत्ति चित्त है तथा अहंकारात्मक वृत्ति अहंकार है । न्याय मतानुसार परम अणु ही मन है । वैशेषिक मतानुसार यह उभयात्मक अर्थात् कर्मेन्द्रिय और ज्ञानेंद्रिय दोनों के गुणों से युक्त माना गया है । योगशास्त्र में चित्त कहा गया है । साधारणतः मन का प्रयोग व्यापक है । अनुभव करना, बोध प्राप्त करना, विचार करना, संकल्प-विकल्प करना, सोचना-समझना, जानना आदि सभी मन के क्षेत्र में आते हैं । कुछ अवस्थाओं में यह चित्त और हृदय का पर्याय भी समझा जाता है ।

(१–२) माया शुद्ध सत्व गुण प्रधान है । सत्व गुण से ज्ञानोत्पत्ति होती है । मलिन सत्वगुण प्रधान को अविद्या कहा जाता है । इसमें रजोगुण तथा तमोगुण का आधिक्य होता है । अविद्या ही आवरण है । आवरण से ही ईश्वर तथा जीव में पार्थक्य भाषता है । अविद्योपहित होने से वृत्ति चंचल हो जाती है । चंचल वृत्ति भगवदुन्मुख नहीं होने देती । योग शास्त्र 'अभ्यास वैराग्याभ्यां तन्निरोधः' कहकर अभ्यास एवं वैराग्य से इसका निरोध करने को कहता है । इसी प्रकार गीता --'असंशयं महाबाहो मनो दुर्निग्रहं चलम् । अभ्यासेन तु कौन्तेय वैराग्येण च गृह्यते'' (६/३५) भी कहती है । प्रश्न उठता है, अभ्यास किसका ? तब श्रीस्वामी रामचरण महाप्रभु कहते है— 'कर्म बन्न परहार नाम रिपु बड़ो कुठारो । साखि भरे शुकदेव संत सब कहत पुकारो ॥ मन बस करण उपाय ना बिनु दूजा नांहि । उपजे नहीं बिकार नाम आवे मन मांहि ॥ बाहिर को साधन कियां दूणी बधे उपाधि रामचरण मन बस करे तो राम नाम कूँ साधि ॥६॥ (अनु० कु० वि० सुम०) प्राण = प्राणी, जीव ।

मन मिरगा चंचल सदा, मारे फलंग उलंग। मिरगी पाँच पचीस है, जन सुरतराम ना संग ॥३॥
जाली सदगुरु शब्द की, चोड़े रोपी श्राव। जन सुरतराम फंद में पड्यो, मन मिरगो कित जाय ॥४॥
मन भँवरा श्रटक्यो रहे, नाम पुहुप के संग। काँटो करम टलाय जे, जन सुरतराम नहीं भंग ॥५॥
मनवा तो पिंगल भया, काट किया चवरंग। जन सुरतराम रामे भज्या, कर न सके बहुरंग ॥६॥१२८॥

वाचक ज्ञानी (१५)

ज्ञानी उलझ्या वाद में, स्वाद राम रस छाँड। मारग छाँड रु सुरतराम, पड़े भर्म की खाड़ ॥१॥
खाड़ पड़ेगा नियश नर, झूँठी बात बनाय। जन सुरतराम सत शूरिवा, झूँठी संग न जाय ॥२॥

---

(३) पाँच-पचीस = पाँच तत्त्व-पच्चीस प्रकृति। पृथिवी, जल, अग्नि, वायु, श्राकाश ये पाँच तत्त्व हैं। पृथिवी की प्रकृति—श्रस्थी, माँस, त्वचा, नाड़ी, रोम; जल की प्रकृति—बिंदु, मूत्र, पसीना, लार, रुधिर; अग्नि की प्रकृति—क्षुधा, तृषा, निद्रा, श्रालस्य, कान्ति; वायु की प्रकृति—संकोचन, चलना, उड़ना-उछलना, दौड़ना, फैलना; श्राकाश की प्रकृति—भय, मोह, क्रोध, काम, लोभ। (श्रानंदामृतवर्षिणी) उलंग-फलंग—निस्सीम गति से मन यत्र-तत्र सर्वत्र घूमता है।

(४) मन को बस में करने का उपाय—गुरु का शब्द ही पिंजरा है। शब्द तथा मन का एकाकार हो जाना ही पिंजरे में बंद होना है। सिद्धान्ततः राम नाम जप ही मन को वश में करने का उपाय है।

(६) पिंगल = पंगु। चौरंग = गतिहीन बना दिया गया। बहुरंग = गतिहीन बनने से श्रब उसका घूमना फिरना बंद हो गया। निश्चल हो गया।

वाचक ज्ञानी (१५)—'नायमात्मा प्रवचनेन लभ्यो न मेधया न बहुना श्रुतेन। यमेवैष वृणुते तेन लभ्यस्तस्यैष श्रात्मा विवृणुते तनूँ स्वाम् ॥२३॥' (कठो० १/२/२३ एवं मुण्डको० ३/२/३) परमात्मा न तो उनको मिलता है जो शास्त्रों को पढ़ सुनकर उसका नाना प्रकार से वर्णन करते हैं, न उन तर्कशील बुद्धिमान् मनुष्यों को ही मिलता है, जो बुद्धि के श्रभिमान में प्रमत्त हुए तर्क के द्वारा विवेचन करके उसे समझाने की चेष्टा करते हैं श्रौर न उनको ही मिलता है जो परमात्मा के विषय में बहुत कुछ सुनते रहते हैं। वह तो उसी को प्राप्त होता है जिसको वह स्वयं स्वीकार कर लेता है। श्रौर वह स्वीकार उसी को करता है जिसको उसके लिये उत्कट इच्छा होती है, जो उनके बिना रह नहीं सकता। जो श्रपनी बुद्धि या साधन पर भरोसा न करके केवल उसकी कृपा की ही प्रतीक्षा करता रहता है। ऐसे कृपा-निर्भर साधक पर परमात्मा कृपा करता है श्रौर श्रविद्या के श्रावरण को हटाकर स्वयं प्रत्यक्ष हो जाता है। श्रीस्वामी रामचरण महाप्रभु स्पष्ट करते हुए कहते हैं—'बद्ध ज्ञानी का शब्द सीख कहै पंचिर ज्ञानी। करणी को बल नाहिं रैण दिन कहै कहानी॥ थोथी बातां मांहि लाभ कहो कैसे पावे। बिनु दरस्या दीदार नहीं निश्चय ठहरावे॥ इन्द्रयाँ स्वारथ कारणे रह्या भजन सूँ हार। रामचरण

बात बणावे ज्ञान की, पक्ष जु करम लाय।
जन सुरतराम वे जन्म जन्म में, मार सीस में खाय ॥३॥
बात करे मुख ज्ञान की, फिर रहणी रह सोय।
जन सुरतराम धन धन्य वे, पूज्य सकल का होय ॥४॥१५८॥

चितकपटी (१६)

कपट भक्ति संसार में, खाली हेरे सोय।
जन सुरतराम साँची कहै, या सू मुक्ति न होय ॥१॥
भक्ति होय नहीं कपट सूँ, समझ देखिये सोय।
जन सुरतराम इकराम बिनु, तीन लोक नहीं कोय ॥२॥१६०॥

रामविमुख (१७)

प्रीति लगी धन धाम सूँ, निशदिन दौड़ा दोड़।
जन सुरतराम मूरख जगत, रह्या राम सूँ तोड़ ॥१॥१६१॥

लख जीव की बैठा ब्रह्म विचार ॥" इन उद्धरणों से सिद्ध है कि परमात्मा की प्राप्ति मात्र शुष्क ज्ञान अथवा तर्क से नहीं होती। जब ज्ञान को कार्यरूप में परिणित कर दिया जाता है, तबही उसका नाम कला कहलाता है। कला, विज्ञान–सिद्धान्त को मूर्तरूप प्रदान करती है। अतः जीवन कलामय–आचरणमय होना चाहिये। "रामचरण वेदी अड़े भेदी सूँ बेकाम। वेदी पर भाखी कहे भेदी परसी धाम ॥५७॥ वेदी सूँ वेदी मिलें तब आम्ही साम्ही भोड़। रामचरण साखी कहै लाँबी नांही दोड़ ॥५८॥"

चितकपटी(१६)—मन में होने वाला वह दुराव या छिपाव जिसके कारण किसी को उचित, ठीक या पूरी बात नहीं बतलाई जाती है। यह दुराव या छिपाव जान-बूझकर किया जाता है। दूसरे पक्ष को धोखा देने या हानि पहुँचाने का विचार अन्तहृदय में प्रायः होता है। इसी को कपट कहते हैं। चित कपटी का तात्पर्य है—ऐसा व्यक्ति जिसका चित्त सदैव छल छद्मों में संलग्न रहता है। कपटी की कैसी दुर्दशा होती है? इसका उदाहरण गोस्वामी तुलसी लिखते हैं—'मान्य मीत सों सुख चहै, सो न छुऐ छल छाहँ। ससि त्रिसंकु कैकेइ गति, लखि तुलसी मन माहँ ॥३२४॥' (दोहावली) परमात्मा के यहाँ तो राई–राई का लेखा है। वहाँ पोपाँ बाई का राज्य नहीं है। वहाँ कपट युक्त भक्ति की भी कोई इज्जत नहीं है।

रामविमुख(१७)—'राम विमुख का रामचरण, सुणिये नांहि बैण। भसमी डारे भरम की, फोड़े चारुँ नैण ॥१॥ राम विमुख के, चार चिह्न भासंत। अहम कुबुधि अरु कपटता, जन देख्या दार्भत ॥" इसी प्रकार रामचरण हरि बिमुख के, चार चिह्न भासंत। अहम कुबुधि अरु कपटता, जन देख्या दार्भत ॥" इसी प्रकार गोस्वामी तुलसी भक्तिमती मीरा को परामर्श देते हुए कहते हैं—"जाके प्रिय न राम वैदेही। तजिये ताहि कोटि बैरी सम जद्यपि परम सनेही ॥ नाते नेह राम के मनियत सुहृद सुसेव्य जहाँ लों। अञ्जन कहा आँख जेहि फूटे बहुतक कहों कहाँ लों ॥ तुलसी सो सब भाँति परमहित पूज्य प्राण ते प्यारो। जासों होय सनेह राम पद येतो

ज्ञानी (१८)

भोग भावना दूर कर, सुरति राम में लीन। तत ज्ञानी सो सुरतराम, सब संतन सूं दीन ॥१॥
संतन सेती दीनता, राखे हिया मंझार। नमन करे समता धरे, जन सुरतराम तरसार ॥२॥१६

मतो हमारो ॥" वस्तुतः राम विमुख, गुरु विमुख, संत एवं सत्संग विमुख की गति निम्नगामी ही होती है। में अपयश परलोक में दुःख ही इसके परिणाम है। राम विमुख होने का प्रमुख कारण—परमात्मा की सत्ता स्वीकार नहीं करना है। परमात्मा तर्क द्वारा प्राप्त हो नहीं सकता। वह तो भाव के द्वारा या भाव द्वारा प्राप्त हो सकता है। महाभारत में कहा है—"तर्कोऽप्रतिष्ठः श्रुतयो विभिन्ना नैको ऋषिर्यस्य प्रमाणम्। धर्मस्य तत्त्वं निहितं गुहायां, महाजनो येन गतः स पंथा ॥" (महा० वन० ३१३/११७)

ज्ञानी(१८)—ज्ञानी का चित्रण करते हुये संत श्रीनिश्चलदासजी लिखते है—'एक अखंडित ब्रह्म असंग अदृश्य अरूप अनामें। मूल अज्ञान व सूक्ष्म थूल समष्टि न व्यष्टि पनो नहीं तामें ॥ ईस न सूत्र विराट न तैजस विश्व स्वरूप न जामें। भोग न जोग न बंध न मोक्ष नहि कछु वा में रू है सब वामें ॥१६२॥ जागृत में प्रभासत सो सब बुद्धि विलास बन्यो है। ज्यूं सुपने महि भोग्य न भोग तऊ इक चित्र विचित्र जन्यो है ॥ लीन मैं मति होतहि भेद भगे इक रूप सुन्यो है। बुद्धि रच्यो जु मनोरथ मात्र सूं निश्चल बुद्धि प्रकाश भयो है ॥ जाके हिय ज्ञान उजियारो तम अंधियारो खरो विनास। सदा असंग एक रस आतम ब्रह्म रूप सो स्वयं प्रकाश ना कछु भयो न है नहीं व्है है जगत मनोरथ मात्र विलास ॥ ताकी प्राप्ति निवृत्ति न चाहत ज्यूं ज्ञानी के न आस ॥१६४॥ देखें सुनें न, सुनें न देखें सब रस ग्रहे न लेत न स्वाद। सूंघि परसि परसे न न सूंघे बोले करे विवाद ॥ ग्रहि न ग्रहे मल तेज न त्यागे जले नहीं अरु धावत पाद। भोगे युवति सदा संन्यासी लखि यह अद्भुत संवाद ॥१६५॥ निज विषयन में इन्द्रिय बर्तें तिनतें मेरो नाहि संग। मैं इन्द्रिय नहीं इन्द्रिय नहीं मैं साक्षी कूटस्थ असंग ॥ त्यागहु विषय कि भोगहु इन्द्रिय मोकूं लगे न रंचक रंग ॥ यह ज्ञानी को जातें कर्त्ता दीखे करें न अंग ॥१६६॥ (विशेष दृष्टव्य गीता १२/१३-२०; ५/७-६; चूडामणि ४२६—४४५) 'न निरोधो न चोत्पत्तिर्न बद्धो न च साधकः। न मुमुक्षुर्न वै मुक्त परमार्थता ॥३२५॥" (पंचदशी, चित्रदीप प्रकरण)

(२) नमन करे समता धरे = 'समत्वं योग उच्यते' आचार्य शंकर इसका भाष्य करते हुये लिखते है—तृष्णा शून्येन क्रियमाणे कर्मणि सत्त्वशुद्धिजा ज्ञान प्राप्ति लक्षणा सिद्धिः तद्विपर्यंजा असिद्धिः तयो सिद्धयसि अपि समः तुल्यो भूत्वा कुरु कर्माणि। कः असौ योगो यत्रस्थः कुरु इति उक्तम् इदम् एव तत् सिद्धयसि 'समत्वं योग' उच्यते" फल—तृष्णा—रहित पुरुष द्वारा कर्म किये जाने पर अन्तः करण की शुद्धि से उत्पन्न वाली ज्ञान प्राप्ति तो सिद्धि है और उससे विपरीत (ज्ञान प्राप्ति का न होना) असिद्धि है, ऐसी सिद्धि असिद्धि में भी सम होकर अर्थात् दोनों को तुल्य समझकर कर्म कर। वह कौनसा योग है, जिसमें होकर कर्म करने के लिये कहा है? यही जो सिद्धि और असिद्धि में समत्व है, इसी को योग है। (गीता २/४८)

अज्ञानी (१६)

करणी ओछी ऊँचमन, वचन तेग सामान। नकल करे पुनि खेचरी, जन सुरतराम अज्ञान ॥१॥
वधिक पाँच लारे लग्या, जीव मृग ज्यूँ खेल। जन सुरतराम मोह फंद पड़्यो, मार विषय के सेल ॥२॥
काम क्रोध सिलता बणी, मोह नीर ता माहि। माहि पड़ै अज्ञान नर, जन सुरतराम बह जाहि ॥३॥
जन सुरतराम मूरख नरा, मरकट के सामान। पर मुख भड़का सुननही, जभी पड़त है आन ॥४॥
राम नाम लेवो नहीं, वकै और सूँ और। जन सुरतराम वे मानवी, बिना पूँछ का ढोर ॥५॥
सूर प्रकास्या सुरतराम, ब्रह्मांड होय प्रकास। घूघू वागल कोचरी, चोरां होय उदास ॥६॥
जन सुरतराम उदोत होय, ज्ञान प्रकासै वेन। विदु जन आनंद मानहै, फूटै अग का नेन ॥७॥
ओछो नाड़ो सुरतराम, तुछ वर्षा भर जाय। मास दोय पीछे कहूँ, जल की बूंद न पाय ॥८॥१७१॥

अज्ञानी(१६)—(१) जो ज्ञानी नहीं है, वे ही अज्ञानी है। अज्ञानी के लक्षणों पर प्रकाश डाला जा रहा है। कर्म नीचों जैसे, मन में विचार ऊँचों जैसे, वचन तलवार जैसे पैने, प्रतिकृति कपटियों जैसी; ये लक्षण हैं अज्ञानी के। संत श्रीरज्जब 'खेचर' का अर्थ स्पष्ट करते हुए लिखते है—'उष्ण तेल अरु आरसी' तीजे खर का मांस। रज्जब सुधरे राख से, त्यों खेचर का मांस ॥१॥ गर्म तेल, दर्पण तथा गधे का मांस भस्म-राख से ही सुधरते है। ऐसे ही, कपटी का कपट लताड़ने से ही समाप्त हो सकता है। कपटी की प्रकृति सुधर सकती है। (पृष्ठांक ६८०)

(२) पाँच वधिक—शब्द, स्पर्श, रूप, रस एवम गंध। 'कुरंग अरु भृंग मातंग फंद में पड़े मीन सो लोह लग मृत्यु पाई। रूप कूँ देख जर छार पतंग भी होत नहीं बार कोई लगत काई ॥ शब्द का भोग सूँ हरिण मार्‌यो परयो भ्रमर सो नासिका मूल खोयो। गज बलवान सो काम बस होय के खोय बल मूढ़ पड़ि खानि रोयो ॥ एक इक स्वाद के जीव जे बस भया तास कूँ काल गह तुरत खाया। एक ही जीव जो पंच बस होय के तासु का दुःख अपार गाया। स्वर्ग पाताल भू थान मानें नहीं जानि जग जाल में काल खासी। रामप्रताप इन पंच कूँ पेलिये खेलिये राम सूँ राम पासी ॥' (श्रीरामप्रतापवाणी, रेखता भाग, उपदेशांग)

(४) मरकट के समान—रात्रि के समय जब बंदर वृक्ष पर बैठता है तब वह अपनी परछाई देखता रहता है। बन्दर को पकड़ने वाला बघेरा उस परछाई के ठीक विपरीत दिशा में बैठकर मौका देखता रहता है। मौका मिलते ही वह उस परछाई पर हाथ मारता है। उस थाप का बंदर के मस्तिष्क पर इतना प्रभाव पड़ता है कि वह पेड़ से पृथिवी पर आ गिरता है। गिरने से या तो प्राणांत हो जाता है या बघेरे द्वारा पकड़ा जाता है।

(६) घुग्घू = उल्लु नाम का पक्षी (मानक शब्दकोष २/१७१) ; कोचरी = एक प्रकार का पक्षी जो सायं का[ल] होते ही भीं भीं करने लगता है। काले रंग का होता है। (मा० को० १/५८७) ; बागल = दिन में कु[छ] नहीं दिखता, उल्टी लटकी रहती है, रात्रि में दिखता है। यह जहां भी रहती है, वहां उजाड़ चाहती है। चोर = पराये धन को चुराने वाला—इन चारों को रात्रि प्रिय है। ऐसे ही अज्ञानी को अज्ञान पसंद है।

(७) विदु = बुद्धिमान। अग = मूर्ख।

(८) ओछो नाड़ो = छोटी-छोटी ताल तलैया।

गुरुविमुख (२०)

नुगरा नर नुगरा करे, उलटो भयो कुभाव।
जन सुरतराम साँची कहै, साख जु नाहि फलाव ॥१॥१७२॥

काल (२१)

काल किलकिलो सिर खडो, पड़ै अचानक आय। जन सुरतराम या जीव कूँ, मच्छी ज्यूँ ले जाय
ले जावे इक पलक में, ढील नहीं तिल मात। जन सुरतराम या जीव की, काल करत है घात
घात करत है काल नित, मूरख कूँ गम नाहि। जन सुरतराम ढीलो नहीं, मार लेहु छिन माहि
क्षण माहि मारे सही, जाणिक तीतर बाज। जन सुरतराम त्रय लोक में, काल तणो है खाज
काल करे चकचूर सब, तन धारी जेते। जन सुरतराम जन ऊबरे, राम नाम लेते
राम नाम लेबो करैं, कर साधाँ सूँ हेत। क्या कुदरत है काल की, साम्हा झाँकि नेत
काल गमन जब करत है, रोके दसों दुवार। जन सुरतराम साँची कहै, सूता अंध गँवार
सूता जग का जीवड़ा, मोह महल में जाय। जन सुरतराम साँची कहै, काल पछाड़ै आय

काल (२१)–'जो परत्र दुख पावहि, सिर धुनि धुनि पछताय। कालहि चेकर्महि ईश्वरहि मिथ्या दोष लगाय॥' श्री... पाद कहते हैं कि परलोक में जब इस लोक के रोजनामचे देखे जाते हैं तथा जीव को दोषी ठहराकर दुखित किया जा... तब वह, समय नहीं मिला, कह कर काल को, भाग्य में भजन करना लिखा ही नहीं था, कहकर कर्म को तथा भगव... के अभाव में कौन क्या कर सकता है, कह कर ईश्वर को दूषित करता है। यथार्थतः सम्पूर्ण दोषों का भाग... विचारणीय जीव ही होता है। किन्तु वह अपने प्रमादी स्वभाववश दूसरों को दोषी ठहराने का प्रयत्न करता... उसका यह प्रयत्न सर्वथा अनुचित और हास्यास्पद ही सिद्ध होता है। समय अमूल्य है। इसका उप... प्रत्येक क्रिया को संपादित करते हुऐ भी करना चाहिये। 'तस्मात् सर्वेषु कालेषु मामनुस्मरयुध्य च;' भगवान... युद्ध में भी अपना चिन्तन करने का आदेश देते हैं। श्रीस्वामी रामचरण महाप्रभु तर्क से सिद्ध करते हुऐ फ... हैं कि अग्नि की दाहिका शक्ति न दिन देखती है न रात; वह तो अपने स्वभाव वश सामने आई हुई चीज... जलायेगी ही। इसी प्रकार पारस लोहे को, बिना समय को देखे, बिना लोहे के स्वामी की परख किये उसे... बना देता है। इसी प्रकार प्रत्येक समय का किया हुआ भगवच्चिंतन साधक का कल्याण ही करता है। अतः प्र... क्षण भगवच्चिंतन में ही व्यतीत हो, काल के अंग का यही प्रयोजन है।

(४) खाज=तीनों लोकवासीयों काल की खाद्य सामग्री है। काल का क्षेत्र तीनों लोकों तक है।

(६) कुदरत=काल की प्रकृति-स्वभाव तब ही क्रूर बनती है जब राम भजन व साधु संग से जीव ... हो जाता है।

(७) दशद्वार= दो नांक, दो कान, दो आंख, एक मुँह, गुदा, उपस्थ तथा ब्रह्मरन्ध्र 'नवद्वारे पुरे देही नैव ... कारयन्' (गी० ५।१३) यदाजिघृक्षन् पुरुषः कात्स्न्येंन प्रकृतेर्गुणान्। नवद्वारं द्विहस्ताङ्घ्रि तत्रामनुत साक्षि... (भा० ४।२६।४) आदि से नव द्वारों की ही ध्वनि निकलती है। ब्रह्मरंध्र को दसवाँ द्वार माना गया है। 'दस द्वा...

काल पछाड़ै जीव कूँ, मांडल नाही धीर । जन सुरतराम साँची कहै, कहा रंक कहा मीर ॥९॥
जगत चबेणों काल को, छोड़ै नही लगार । जन सुरतराम साँची कहै, चुण खावे संसार ॥१०॥
अबर्‌यो चाहूँ राम कहु, येहि ज्ञान विचार । जन सुरतराम साँची कहै, समझ गहो करतार ॥११॥
ओट गहो करतार की, भजे नाही कार । जन सुरतराम साँची कहै, राम तणो दरबार ॥१२॥
गोत्र कुटुम्बी ठग सबे, स्वारथ सूँ मन लाय । जन सुरतराम इन संग ते, काल तुरतही खाय ॥१३॥१८५॥

चेतावनी (२२)

मानुष देही पाय के, मूरख कर्‌यो अकाज । जन सुरतराम नर देह का, मूढ़ बिगार्‌यो साज ॥१॥
कहा कियो ईं कलि मंही, मिनखा देही पाय । जन सुरतराम साँची कहै, गया जु मूल गुमाय ॥२॥
प्यार करो नित राम सूँ, बगा-बेगी बीर । जन सुरतराम मानुष जनम, चल्यो जात है हार ॥३॥
राम कहो रे प्राणियाँ, जब लग पिंजर स्वांस । जन सुरतराम साँचो कहै, कहा देह की आस ॥४॥
स्वाँसा बिरथाँ जात है, बिना भजन बेकाम । जन सुरतराम साँचो कहै, पड्‌या बिछोवा राम ॥५॥
पड़्यो बिछोवा राम सूँ, कौन करे प्रतिपाल । जन सुरतराम साँचो कहै, फिरे जीव बिहाल ॥६॥
राम नाम जाण्यो नहीं, गया पींजरा फूट । जन सुरतराम साँचो कहै, जम मार्‌या घर लूट ॥७॥
राम भजन कूँ पीठ दे, श्वान देव हुसियार । जन सुरतराम साँचो कहै, पड़ै जम्म की मार ॥८॥
राम भजन सूँ रूसणों, गाली गत हुसियार । जन सुरतराम साँची कहै, फिरे सहेल्याँ लार ॥९॥
पाँच सात सहेल्याँ मिल, दे दे तालो गाय । जन सुरतराम साँची कहै, मंडी चोहटे आय ॥१०॥
भला जु घर की सुन्दरी, वा भी मंडि जु आय । जन सुरतराम साँची कहै, ससुर जेठ कुल काय ॥११॥
हाज्यो पाँच्यो गावता, कुण ससरो कुण जेठ । जन सुरतराम साँची कहै, साम्ही करिहैं भेंठ ॥१२॥
खोटी बाणी भेंट कर, मुख सूँ बोले रुबार । जन सुरतराम साँची कहै, करै न जगत विचार ॥१३॥

(कबीर, लीलाचित्र मंदिर दोहावली
पींजरा, तामें पंछी पौन । रहि बे को आचरज है, जाय तो अचरज कौन, ।
(१२) परमात्मा की शरण रूपी सीमा बंधी को लांघ कर काल आप के पास नहीं आवेगा ।
उद्‌बोधन ही चेताव-
चेतावनी (२२)–अविद्योपहित संसारी को पुनः पुनः परमात्मा की ओर उन्मुख होने के लिये
अंग में सम्मिलित किया जाता है । उद्‌बोधन काल-समय को लेकर हो सकता है, गर्भ कष्टों को बताकर हो सकता
दैनिक क्रियाकलापों को सम्पादित करते समय आने वाली अड़चनों को बताकर हो सकता
परलोक का भय दिखाकर हो सकता है, लोक लज्जा का भय दिखाकर हो सकता है । सभी साधनों द्वारा उद्‌बो
करने से तात्पर्य इतना ही है कि देवताओं को भी दुर्लभ मनुष्य देह को जीव वृथा न गुँमाकर भगवदुन्मुख होवें । सद
ग्रहण करे। दुर्गुणों का परित्याग करे। स्वस्वरूप का चिंतन करे । अन्ततः स्वस्वरूपस्थ हो जावे । हस्तलिखित
स्नेही संत साहित्य ही नहीं प्रायः संपूर्ण संत वाङ्मय में ही 'चेतावनी का अंग' के स्थान पर 'चितावणी का
लिखा मिलता है, तात्पर्य चेतावनी से ही है । इसीलिये हमनें 'चेतावनी' शब्द व्यवहृत किया है ।
(४१) निराट्=शुद्ध, केवल मात्र । ज्ञानाभाव में अज्ञानी मनुष्य; मनुष्य होते हुऐ भी शुद्ध पशुओं जैसा व्यवहार

निराकार साकार बिच, भजे निरञ्जन राम। जन सुरतराम साँची कहै, मारे सब ही काम।
नादी बादी बहुत है, तत्त्व ग्राही कोय। भर्म कर्म में बूडिया, जन सुरतराम उर सोय।

विरक्त (२६)

विरक्त रक्त न होय कहुँ, रक्त होय नित राम। जन सुरतराम घन जग मही, पावे पूरी काम।
ज्ञान गूदड़ी धारिये, डार सबै ही भार। जन सुरतराम साँची कहै, करो राम सूँ प्यार।
अवधूत फकिरि धारिये, पाँच पचीस निवार। जन सुरतराम साँची कहै तजिये विषय विकार।
शेरी याही मुक्ति की, राम भजै मन लाय। जन सुरतराम जग नेह तज, भिक्षा माँग र खाय।

माया (३०)

जन सुरतराम माया राम की, जोड्याँ जुड़ै ज धन्न। लिखी ज पावे राम की, दौड़ो रात र दिन्न।
दौड्याँ ही माया जुड़ै, तो खलक फिरै सब लार। जन सुरतराम साँची कहै, क्युँ दुख पावे संसार।

१४/५०) 'मैं कौन हूँ? संसार नाम का कलंक मुझे कैसे लगा? इस प्रकार न्याय पूर्वक परामर्श (विचार) ही 'विचार' कहा जाता है। 'विचारात्तीक्ष्णतामेत्यधीः पश्यति परं पदम्। दीर्घ संसार विचारो हि महौषधम् ॥'' (यो. वा. मुमु. १४/२) 'विचार से सूक्ष्म होकर ही बुद्धि परमपद को देखती संसार रूपी लम्बे रोग की अचूक चिकित्सा है—विचार।

विरक्त (२६)—परमात्मा के अतिरिक्त जिसकी किसी पर भी आसक्ति, अनुरक्ति न रह गई हो, ऐसे को कहते हैं। वास्तव में 'विरक्त' को 'उदासीन' के समकक्ष रखा जाता है। विरक्त को कूटस्थ संज्ञा देना अधिक उ है। संत श्रीरज्जब उदाहरण के द्वारा रक्त तथा विरक्त की स्थिति को समझाते हुए कहते हैं—'जो माया मे खुशी, साधू के दुख सोय। रज्जब रजनी एक में, घू घू चकवा जोय ॥' (पृष्ठांक ६२२)

(४) शेरी=मार्ग; गुजराती शब्द, गुजराती में शेरी का तात्पर्य गली या सकड़ा रास्ता लिया जाता है।

माया (३०)—माया के सम्बन्ध में भारतीय दर्शन क्षेत्र में सर्वाधिक हलचल है। निर्गुणियां संतों ने माया को घोषित किया है। आलोच्य अनुभव वाणी में भी इसको मिथ्या ही कहकर इसका सर्वथा निषेध किया है। माया सत्त्वगुण प्रधान होती है। अविद्या मलिन सत्वगुण प्रधान होती है। माया ईश्वर की उपाधि है। अविद्या की उपाधि है। 'जीव ईश भेद हीन चेतन स्वरुप मांहि माया सो अनादि एक सांत ताहि मानिये। सत तैं बिलच्छन स्वरुप ताको ताहि कूँ अविद्या सो अज्ञाहु बखानिये ॥' (वि०सा० ५।१५४) प्रश्न उठना स्वाभा है कि प्रायः निर्गुणियां संतों ने धन दौलत को ही माया का स्वरुप माना है। उत्तर स्वरुप कहा जा सकता रुपया- पैसा माया का स्थूल स्वरुप है। प्रतीक है। प्रतीक से चीज शीघ्र समझ में आती है बजाय तात्विक के। अतः यह मात्र स्थूल वर्णन है। तात्विक विवेचन में तो इसे मिथ्या ही करार दिया है।

४६

कामीनर (३१)

ज्ञान हीन तप नासती, होय सील को भंग। जन सुरतराम तू मत कर, नारी हंदो संग ॥१॥
संग करें जो जायगे, ऊँडा नरक मंझार। जन सुरतराम वे प्राणिया, बहुत फिरै भग द्वार ॥२॥
भग द्वारे फिरबो करें, जब लग विषया नेह। चौरासी बिच सुरतराम, वे धरसी बहुली देह ॥३॥
चौरासी बिच सुरतराम, पावे दुःख अपार। सुख कबहुँ भुगते नहीं, भग सूँ जोंलू प्यार ॥४॥
नारी नागणि नाहरी, खाया विष चढ़ जाय। शब्द मुराड़ो संग रखे, तो सुरतराम टल जाय ॥५॥
नारी नरक समान है, जो कोइ अंग लगाय। जन सुरतराम साँची कहै, काढ़ कलेजो खाय ॥६॥
हड्डी चमड़ी मासड़ी, भ्रष्टा भर्या निधान। जन सुरतराम साँची कहै, लिपट रह्या अज्ञान ॥७॥

कामीनर (३१)— 'विषया विनिवर्तन्ते निराहारस्य देहिनः। रसवर्जं रसोऽप्यस्य परं दृष्ट्वा निवर्तन्ते ॥' (गीता २।५६) इन्द्रियों के द्वारा विषयों को ग्रहण न करने वाले पुरुष के केवल विषय तो निवृत्त हो जाते हैं परन्तु राग निवृत्त नहीं होता है और स्थितप्रज्ञ पुरुष का तो राग भी परमात्मा को साक्षात् करके निवृत्त हो जाता है। इस गीता कथन से ज्ञात होता है कि प्रारम्भिक अवस्था वाले साधक के विषय तो बलात्कार पूर्वक मन को बश में करने के प्रयास से निवृत्त हो जाते हैं किन्तु संस्कारवशात् चित्त पर पड़ा उनका प्रभाव उनके प्रति राग को खत्म नहीं होने देता। स्वस्वरूप के साक्षात्कार हेतु उस राग को भी सर्वथा निर्मूल कर देना अत्यावश्यक है। इन्हीं विचारों को कामीनर के अंग में निबद्ध किया गया है।

(१) शील का शाब्दिक अर्थ उत्तम चरित्र, गुण आदि है किन्तु निर्गुणियाँ संत साहित्य में इसे ब्रह्मचर्य का पर्याय माना है। 'रज्जब मारे मदन शर' नागे नारी नाह। ओट चोट लागे नहीं, जिहि तन शील सनाह ॥५३॥ (पृष्ठांक ६२४) नंगे नारी पुरुष को देखकर ही काम अपने बाण चलाता है। किन्तु जो ब्रह्मचर्य रुपी कवच पहने हुऐ होते हैं उन्हे वे शर वेध नही पाते। प्रत्युत स्वयं का ही अस्तित्व खो बैठते हैं। तुलनीय-'किं भूषणाद् भूषणमस्तिशीलं तीर्थं परं किं स्वमनो विशुद्धम्। किमत्र हेयं कनकं च कान्ता, श्राव्यं सदा किं गुरुवेद वाक्यम् ॥८॥ (प्रश्नोत्तरीमणिरत्नमाला)

(२) भग=भग्ग–स्त्रियों की योनि।

(५) नारी को नागिनी, सिंहनी आदि पदों से अभिहित किया है। इसका तात्पर्य, नारी जाति पर आक्षेप करने का नहीं अपितु स्त्री-पुरुषों में छिपी कामवासना की भर्त्सना है। शास्त्रानुमोदित एवं मर्यादित कामेच्छापूर्ति उचित ही है। मनुस्मृति कहती है—'ऋतु कालाभिगामी स्यात्स्वदारनिरतःसदा। पर्ववर्जं व्रजेच्चैनांतद्व्रतोरतिकाम्यया ॥४५॥ ऋतु स्वाभाविकः स्त्रीणां रात्रयः षोडश स्मृताः। चतुर्भिरितरैः सार्धमहोभिः सद्विगर्हितैः ॥४६॥ तासामाद्याश्चतस्रस्तु निन्दितैकादशी च याम्। त्रयोदशी च शेषास्तु प्रशस्ता दश रात्रयः ॥४७॥ निन्द्यास्वष्टासु चान्यासु स्त्रियो रात्रिषु वर्जयन्। ब्रह्मचार्येव भवति यत्र तत्राश्रमेवसन् ॥५०॥'' (म० अनु० ३) ऋतु काल में पुत्रोत्पत्ति कामना से दो दिन किया गया सहवास ब्रह्मचर्य व्रत को भग नहीं करता। मुराड़ों=नारी से मुंह मोड़ रखें।

माथा आथा नाखिया, पीठ न झांके कोय। जन सुरतराम साँची कहै, पटा लहैगा सोय।
साम्हा साम्हा झूमहैं, सूरां के सिर राम। जन सुरतराम साँची कहै, सबही सारे काम।
काम सरें धरणी मिलै, आप माहि कर लीन। जन सुरतराम साँची कहै, जिन कारज कर लीन।

टेक (२५)

जन सुरतराम हरिचंद को, देखो सत्य अखण्ड। राज नारि सुत कूँ तज्यो, फिर दियो देह कूँ दण्ड।
पण पकड़ी छांडी नही, भक्त जग्न प्रहलाद। जन सुरतराम असुरां सबै, बहुत कियो मिल वाद।
खंभा में परगट भयो, कियो नरसिंह भेस। हिरणाकुस कूँ सुरतराम, दियो पगां तल पेस।
पकड़ टेक सेंठो भयो, कलिके माहि कबीर। जन सुरतराम छांडी नहीं, ऐसो संत सधीर।

---

(७) शिर आगे की ओर करके चले, पीछे की ओर देखे ही नहीं कि क्या हो रहा है। वही शूरवीर, का प्रमाण पत्र पाने लायक होता है। इसी प्रकार साधक सद्गुणों के उन्मेष की ही बात सोचें। आथा = नाखिया = आगे की ओर कर दिया है। पटा=वीरता का प्रमाणपत्र।

टेक (२५)—टेक का शाब्दिक अर्थ है-आग्रह, प्रतिज्ञा, हठ आदि की कोई ऐसी बात जिस पर आदमी दृढ़ता से अड़ा रहे, चाहे उसके सामने कितने भी प्रलोभन आयें, चाहे कितनी भी विपरीत परिस्थितियाँ आयें, चाहे लज्जा जाती हो, चाहे धन सम्पत्ति राज पाट जाता हो, चाहे स्त्री पुत्र परिवार जाता हो, कुछ भी जाता हो, वह अपनी प्रतिज्ञा पर, अपने आग्रह पर दृढ़ता पूर्वक अड़ा रहे; बस, यही टेक का स्वरूप है। टेक प्रहलाद जन, पुनि नामा दास कबीर। बहुत ताव असुरां दई, कसक्यो नहीं शरीर ॥१६॥ टेक जाणिये, तन छूट्या नहीं जाय। यूँ रामचरण रंग लोवड़ी, फाटा रहे समाय ॥१५॥" ऐसी ही स्थिति श्रीकृष्ण ने गोपबालाओं के समक्ष उपस्थित की थी कि वास्तव में इनका मेरे प्रति सच्चा प्रेम है अथवा दिखावा। वे कहने लगे, रात का समय है, यह स्वयं ही बड़ा भयावना होता है और इसमें बड़े बड़े जीव-जन्तु इधर-उधर घूमते रहते हैं। अतः तुम सब तुरंत ब्रज में लौट जाओ। रात के समय घोर वन में स्त्रियों को नहीं रुकना चाहिये। 'रजन्येषा घोररूपा घोरसत्वनिषेविता। प्रतियात व्रजं नेह स्थेयं स्त्रीभिः सुमध्यमाः ॥१६॥ गोपियों द्वारा श्रीकृष्ण के साथ रहने के दृढ़ निश्चय को कितना आहत किया कृष्ण के वचनों ने, सुनिये गोपिकाओं के शब्दों में ही—प्यारे श्रीकृष्ण! तुम घट-घट व्यापी हो। हमारे हृदय की जानते हो। तुम्हें इस प्रकार निष्ठुरता भरे वचन नहीं कहने चाहिये। हम सब कुछ छोड़कर केवल तुम्हारे चरणों में ही प्रेम करती हैं। इसमें संदेह नहीं कि तुम स्वतंत्र और हठीले हो। तुम पर हमारा कोई वश नहीं है। फिर भी तुम अपनी ओर से, जैसे आदि पुरुष भगवान् नारायण कृपा करके अपने मुमुक्षु भक्तों से प्रेम करते हैं, वैसे ही हमें स्वीकार कर लो। हमारा त्याग मत करो। 'मैवं विभोऽर्हति भवान् गदितुं नृशंसं सन्त्यज्य सर्व विषयांस्तव पादमूलम्। भक्ता भजस्व दुरवग्रह मा त्यजास्मान् देवो यथाऽऽदिपुरुषो भजते मुमुक्षून् ॥३१॥' गोपियों की अनन्यता पूर्ण टेक देखने ही योग्य है!

दया (२६)

दया बिहूणा मानवी, जन में फिरे अलेख। जन सुरतराम साँची कहै, जान कसाई देख॥१॥
दया जिनों के हिय नहीं, वाके नहीं करतार। जन सुरतराम साँची कहै, वे नर भये खुवार॥२॥
सब घट व्यापक राम है, समझे नहीं गंवार। जन सुरतराम साँची कहै, आप रूप निस्तार॥३॥
आप बल जिनका नहीं, वाका कौन हवाल। जन सुरतराम साँची कहै, जम काढ़ेगा खाल॥४॥
दया जिन्होंनी राखीजे और कोइ किये धार। जन सुरतराम साँची कहै, जाणे सब संसार॥५॥
मनहीं काली तीजड़ा, दया नहीं उरधार। जन सुरतराम साँची कहै, कर्म करत हुसियार॥६॥
यहाँ सुखी संसार में, वहाँ पकड़ै साहिब हाथ। जन सुरतराम साँची कहै, सहिये दोनों बात॥२३८॥

सारासार पारख (२७)

जीवन ज्ञान प्रकाशिये, अज्ञ अँधार मिटाय। पारख सार असारहूँ, जन सुरतराम पड़ जाय॥१॥
पड़ जाय पारख सर्व सद्गुरु के परताप। जन सुरतराम साँची कहै, पिवे राम रस धाप॥२४०॥

विचार (२८)

आत्म देह कोइ कहत है, ताका करो विचार। जन सुरतराम साँची कहै, जब उतरे भवपार॥१॥
निराकार कोइ कहत है, कोइ कहत आकार। जन सुरतराम साँची कहै, कैसे उतरे पार॥२॥

दया (२६)—दया मन में स्वत: ही उठने वाली वह वृत्ति या भावना है, जिसके वशीभूत हुआ दयार्द्र मानव निष्कारण ही दुःखीजन के दुःख को दूर करने में प्रवृत्त होता है। दया सभी पर की जाती है, कृपा किसी विशिष्ट पर की जाती है। दया का क्षेत्र व्यापक है। योगशास्त्र में चित्तशुद्धि के हेतुओं में दया को भी सम्मिलित किया गया है—'मैत्रीकरुणामुदितोपेक्षाणां सुखदुःख पुण्यापुण्यविषयाणां भावनातश्चित्तप्रसादनम्।' (पा. यो. १/३३) भगवद्गुण दर्पण के प्रथम परिच्छेद में दया को इस प्रकार परिभाषित किया गया है—'प्रतिकूलानुकूलोदासीन सर्वचेतनाचेतनवर्ग्गविषयदुःखकरणकासहिष्णुत्वपूर्वकस्वशक्तिसम्भवप्रतीकारानुगुणव्यापारविशेषोहि भगवतोदया'।

(३-६) इन दोनों साखियों के द्वारा अहिंसा पर बल देते हुये कहते हैं कि सभी में परमप्रभु परमात्मा घट-घट व्यापक अनुस्यूत है। परमात्मा एक है। अनेक नहीं। अतः किसी की भी हिंसा किसी शास्त्र द्वारा अनुमोदित नहीं है। मनुस्मृति इन आठ को घातक की संज्ञा से अभिहित करती है—'अनुमंता विशसिता निहन्ता क्रय विक्रयी। संस्कर्त्ता चोपहर्त्ता च खादकश्चेतिघातकाः॥'' (५/५१)

सारासार (२७)—सार—स्वस्वरूप की स्मृति, असार—जड़ संसार से माना हुआ सम्बन्ध। स्वस्वरूप की स्मृति तथा जड़ संसार से माना हुआ मिथ्या सम्बन्ध का विच्छेद ही 'सारासार' प्रसंग का विवेच्य विषय है।

विचार (२८)—इस प्रसंग में प्रायः सभी निर्गुणिया संतों ने अद्वैत वेदांत के सिद्धान्तों का विवेचन किया है। '[illegible] संसारान्ध उपायतः। न्यायेनेति परामर्शो विचार इति कथ्यते॥' (योग वासिष्ठ, मु

ज्ञान विहूणा मानवी, पशवां फिरै निराट । जन सुरतराम साँची कही, सींग पूँछ नहीं घाट ॥
खोल कयो नर देह को, पशुवां तणा सुभाव । जन सुरतराम साँची कही, भक्ति भेद नहीं भाव ॥
जन्म गुमायो प्राणियां, विषय विकारां संग । जन सुरतराम साँची कही, अंत होयगा भंग ॥
अंत भंग भी होयगा, रसना कह्या न राम । जन सुरतराम साँची कही, हार चल्या है राम ॥
जन सुरतराम संसार सब, दूध आँक को जान । दीखत को अति ऊजलो, पिया मृत्यु सामान ॥
जगत सरोवर सुरतराम, दुख सुख की दो पाल । मोह ग्राह ताके मही, निगल जाय ततकाल ॥
आदी-वादि जिकर करै, मुख सूँ कहै न राम । स्वान सरभर वे नरा, भूकण ही सूँ काम ॥
जन सुरतराम संसार नेह, ओडल को भलको । दीखत को अति ऊजलो, हाथ लियां हलको ॥
जन सुरतराम संसार सुख, बाग अरंड को जान । दिनां चार सरसो रहै, विनसै पड़ मेदान ॥
जन सुरतराम संसार के, अकल बुधि नहीं ज्ञान । राम भक्ति सूझे नहीं, कर्मां की अति बान ॥
मोह कुटुम सूँ बाड़ियो, बांधे कुल की पाल । जन सुरतराम साँची कहै, बिनसि जायगा काल ॥
बाँधत-बाँधत मर गया, जम्म ले गये सोय । जन सुरतराम मुदगर पड़ै, कर्म कियां क्यूँ रोय ॥
देखत चोषत ढह गया, कर्म लिया सिर लाल । जन सुरतराम साँची कहै, कौंण करै प्रतिपाल ॥
पाप पुन्य भर लेयसी, अदल हिसाबी होय । जन सुरतराम साँची कहै, नहीं दूसरा कोय ॥
पाप ताप दुःख पावसी, जन्म-जन्म तू बीर । जन सुरतराम साँची कहै, मिटती नाही भीर ॥
दत्तव सूँ सुख पाइहै, जन्म-जन्म हुय सोर । जन सुरतराम साँची कहै, लगे नहीं दुख पीर ॥
सुमरण कीजे राम को, पुनि दे दत्तिव जान । जन सुरतराम साँची कहै, कलि आया परमाण ॥
सो वाह्वै सो ऊगवे, सोही लेवे लोण । जन सुरतराम साँची कहै, दूजा नाहि होण ॥३१॥

उपदेश (२३)

भरतरि राजा नीसर्‌यो, कर योगी को भेष । जन सुरतराम साँची कहै, परस्यो जाय अलेख

है । ''साहित्य संगीत कला विहीनः साक्षात्पशुः पुच्छविषाण हीनः । तृणं न खादन्नपि जीवमानस्तदभागधेयं परमं पशूनाम् ॥ १२॥' (नीतिशतम्)

(२६) तपः परं कृतयुगे त्रेतायां ज्ञानमुच्यते ॥२३॥ द्वापरे यज्ञ मेवाहुर्दानमेव कलौ युगे ॥२४ पूर्वार्द्ध ॥ (पराशर स्मृति अ० १) 'तन धारी त्रय बात की, ढील करो मत कोय । राम भजन साधु दरस, दत्तब करता सोय । करता सोय, जोय तन थिरता नांही । को चपल को थीर, कहा बन है छिन मांही ॥ ताते कारज जीवको, कीजे ... होय । तन धारी त्रय बात की, ढील करो मत कोय ॥' (अनु० कृ० उपदेशांग ३)

(३१) लोकोक्ति है 'जैसा बोओगे, वैसा ही काटोगे' यथा-'बवा सो लुनिय, लहहि जो दीन्हा ।' (मानस अ० का०

उपदेश (२३)–उपदेशांग में भी प्रायः उन्हीं विषयों का समावेश होता है जिनका चेतावनी के प्रसंग में समावेश हो... उपदेश, चेतावनी से व्यापक है । चेतावनी में जीव को भगवदुन्मुख करने के प्रत्येक प्रयास का समावेश है । ... ज्ञानोपदेश, भक्ति उपदेश; कहने का तात्पर्य यह है कि इसमें चेतावनी द्वारा डरे हुए जीव को रास्ता भी बताया जा...

दत्तात्रेय बन में पड़ें, यदु निकस्यो आय। जन सुरतराम वाकूं दियो, ब्रह्मज्ञान समझाय ॥२॥२१८॥

शूरातण (२४)

शूरा सब सिरताज है, बांधे सुमरण साज। जन सुरतराम भड़का करें, ज्ञान गुरु को गाज ॥१॥
कलह कल्पना छांड सब, बाढ़ि राम सूं नेह। जन सुरतराम परिहर बिषय, मुक्ति मग अब लेह ॥२॥
सदगुरु तेज सरुप होय, शिष लोंदा हुय धीव। तत्व ताय न्यारा करें, जन सुरतराम ब्रह्म जीव ॥३॥
शिष बंझा ब्यावे नहीं, ज्ञान सरुपी पूत। जन सुरतराम बहु यत्न कर, निश्चय रहे अऊत ॥४॥
पुरुष गुरु को ज्ञान है, शिष के ऋतु हुय चाह। अरसि परसि हुय सुरतराम, तब कारण रह जाह ॥५॥
फौज माहिं सब जात है, करकर होडा होड। जन सुरतराम गाडी पड्या, कोई न थामे रोड ॥६॥

तुम इस मार्ग पर चलो, इस मार्ग को हेय समझकर छोड दो आदि। अतः उपदेशांग का क्षेत्र चेतावनी अंग से व्यापक है।

(२) राजा यदु तथा दत्तात्रेय का सम्वाद श्रीकृष्ण तथा उद्धव सम्वाद के अन्तर्गत भागवत् के ग्यारहवें स्कंध के सातवें अध्याय में वर्णित है। श्रीभगवानुवाच—'यदुर्नैवंमहाभागो ब्रह्मण्येन सुमेधसा। पृष्टः सभाजितः प्राह प्रश्रयावनतं द्विजः।।'' (११/७/६१) आदि के पश्चात् दत्तात्रेय ने अपने २४ गुरुओं से प्राप्त शिक्षा का उल्लेख अध्याय १० तक किया है।

शूरातण (२४)—शूरातण शूरवीर का वाचक है। इस अंग में साधक को साधना रूपी युद्धस्थल के शूरवीर योद्धा के रूप में चित्रित किया जाता है। 'ज्ञान अगम प्रत्यूह अनेका। साधन कठिन न मन कहुँ टेका।।' (मानस ७/४५/२ का पूर्वार्ध) तथा 'क्लेशोऽधिकतरस्तेषां अव्यक्तासक्तचेतसाम्।' (गीता १२/५ पूर्वार्ध) इन दोनों ही उद्धरणों से ज्ञात होता है कि ज्ञानमार्गी साधकों के साधना रूपी युद्धस्थल में विघ्नरूपी प्रतिद्वंद्वी अधिक बलवान होते है। अतः उसे दैवी सम्पत्ति का अर्जन तथा आसुरी सम्पत्ति का विसर्जन अपने ही बलबूते पर करना होता है। जबकि भक्ति मार्ग में भगवच्छरणागत हो जाने से अर्जन-विसर्जन का प्रश्न ही समाप्त हो जाता है। वहाँ तो परम प्रापणीय परमप्रभु परमात्मा स्वयं उसमें सद्गुणों का विकास करते हैं। क्योंकि वह तो शरणागत वत्सल भगवान् के अतिरिक्त किसी को कुछ जानता–पहचानता ही नहीं। परमात्मा ऐसे भक्तों की सार सम्हाल माँ की भांति करते हैं। हाँ, प्रतिद्वंद्वी होते दोनों ही साधना पद्धतियों में है। अतः साधकों को दुर्गुणों को त्यागने में योद्धा की भूमिका निभानी पड़ती है। बस, इसी का चित्रण इस अंग में किया गया है।

(५) तुलनीय—'गुरु ज्ञाता पोरुष लियाँ, शिष रति वत जिज्ञास। रामचरण कारण बधँ, फल सुत ज्ञान प्रकास ।।' (साखीसंभाग, शिष्यपरीक्षांग १२) गुरु का ज्ञान ही पुरुषत्व है। शिष्य की जिज्ञासा ही ऋतुकाल है। (रजस्वला होने से १६ रात्रि तक का समय ऋतुकाल कहलाता है। प्रथम चार रात्रियाँ वर्जित होती है।) जिज्ञासा पूर्वक प्राप्त ज्ञान को आचरण में व्यवहारित करने की प्रक्रिया ही संभोग है। यदि इस प्रकार का बानक बने तो निश्चय ही मोक्ष का साक्षात् साधन ज्ञान रूपी पुत्र की प्राप्ति हो जाती है।

यहाँ लिपटेगा नारि सूँ, वहाँ लिपटेगा खंभ । जन सुरतराम साँची कहै, जम मारेगा
काढ़ि कलेजा भय धरैं, चूँस लेव सब प्रान । जन सुरतराम साँची कहै, ऐसी विषया जान
छोटा मारे प्रीति सूँ, बूढ़ा देत चलाय । जन सुरतराम या डाकणी, फिर फिर गोना खाय ॥
रंक ज राजा थरहरे, कामदेव अति वीर । जन सुरतराम साँची कहै, कोइ न बंधावे धीर
सुर नर कपट विचारियो, कामदेव आतुर । जन सुरतराम साँची कहै, रंडो नही खातर ॥
वेश्या कर्म कुमात है, महा भ्रष्ट संसार । जन सुरतराम साँची कहै, मोही करत विचार ॥
उत्तम खोलो पायके, कर्म करत हुसियार । जन सुरतराम साँची कहै, चार वर्ण सरदार ॥
नारी सूँ कुत्ती भली, ऋतु उपज्या चाह्वे । जन सुरतराम या डाकणी, निशिवासर खावे ॥
नारी ऐसा मारिया, मोटा मोटा सूर । जन सुरतराम साँची कहै, सुर नर मोह्या न र ॥
बहुता मार्‌या प्राणिया, चली नरक के बीच । जन सुरतराम साँची कहै, फिट या नारी नीच ॥
नारि बधिकणि सुरतराम, नयन बयन ऐ तीर । मारे कामी मिरग कूँ, घूँघट ओटे वीर ॥१८॥

जरणा (३२)

जरणा तो जुग जुग जिवे, झरणा मर-मर जाय । जरणा जोगी सुरतराम, काल कदे नही खाय ॥
जरणा तो जरबो करे, काम शब्द की दोय । जन सुरतराम साँची कहै, राम सरुपी होय ॥२॥

साँच (३३)

---

(८) तुलनीय—'यस्त्विह वा अगम्यां स्त्रियमगम्यं वा पुरुषं योषिदभिगच्छति तावमुत्र कशया ताडयन्तस्ति सूर्म्या लोहमय्या पुरुषमालिङ्गयन्ति स्त्रियं च पुरुषरूपया सूर्म्या ॥२०॥'' (भा. ५।२६।२०)

जरणा (३२) —प्राप्त वस्तु को पचाने का नाम जरणा है । जो भी कुछ तत्त्वोपलब्धि हुई है, उसे अपने में सीमित रखे, किसी के भी समक्ष उसे प्रकट नहीं करे । बस, यही जरणा है । 'दादू मन ही माँहि समझकर ही माँहि समाय । मन ही माँही राखिये, बाहर कहु न जनाय ॥३॥'' (पृष्ठांक १५६)

(१) तुलनीय—'जरणा जोगी जुग जुग जीवे, झरणा मर मर जाय । दादू जोगी गुरुमुखी सहजे रहै ॥१८॥' (पृष्ठांक १६२) जरणा-पचाने से योगी अमर हो जाता है; झरणा-न पचाने से अहंकारादि उत्प जाते हैं । फलतः पुनः पुनः जन्म लेकर मरना पड़ता है ।

(२) यदि साधक काम को तथा राम नाम रूपी शब्द को पचा लेवे तो निश्चय ही वह राम रूप हो जाता है।

साँच (३३)—इस अंग का क्षेत्र अत्यंत विस्तृत है । यही एक ऐसा अंग है जिसमें संतों ने अपने क्रांतिकारी वि का अजस्र स्रोत बहाया है । कर्मकाण्ड पर प्रहार; मूर्ति पूजा पर प्रहार, जीव हिंसा पर प्रहार, वस्त्र ग्रहण का मण्डन, कथनी के स्थान पर करणी पर बल, कुलाभिमान पर प्रहार; आचरण पर बल, जगत मि पर बल; जगतोत्पत्ति पर चिन्तन, जीव ही ब्रह्म है—इस निश्चय का पुनः पुनः कथन; वाह्याचार पर बहुदेवोपासना का खण्डन; सत्यनिष्ठा पर बल आदि विचारों का सकलन प्रायः इस अंग में हुआ है ।

ऊँचा कुल है सुरतराम, जैसा पेड़ बम्बूल । कर्म काण्ड बहु पातड़ा, मान बड़ाई शूल ॥१॥
ऊँचा कुल है सुरतराम, जैसी लम्बी खजूर । राम भक्ति छाया निरसि, श्रहुँ काँटा भरपूर ॥२॥
ऊँचा कुल सो जाणिये, भक्ति राम की भाय । धर्म सबे ही छाँड़ के, श्रौरां रंग लगाय ॥३॥
दिन उग पहले ऊठिये, श्रालस दीजे खोय । जन सुरतराम साँची कहै, तन मन निर्मल होय ॥४॥
मोड़ाँ मोड़ाँ उठताँ श्रालसिया दिन रोय । जन सुरतराम साँची कहै, धर्म धारणा खोय ॥५॥
पंच विषय तज मोक्ष है, पुनि तिरगुण को नास । जन सुरतराम साँची कहै, करिहैं ब्रह्म विलास ॥६॥
मोक्ष-मोक्ष तुम कहत हो, मोक्ष न जाने कोय । जन सुरतराम साँची कहै, तज्याँ वासना होय ॥७॥
तज्याँ वासना मोक्ष है, जामें फेर न सार । जन सुरतराम साँची कहै, जन्म वासना रब्वार ॥८॥२७८॥

---

(१) पाश्चात्य लेखकों की नकल पर चलने वाला श्राधुनिक श्रनुसंधित्सुवर्ग निर्गुणियाँ संतों को वेद निंदक तक कहने में नहीं हिचकिचाता । "कर्म का विस्तार क्षेत्र लोक श्रौर वेद है । इसीलिये संतो ने कर्ममार्ग के साथ-साथ लोक श्रौर वेद की भी निंदा की है ।' (हिन्दी की निर्गुण काव्यधारा श्रौर उसकी दार्शनिक पृष्ठभूमि, लेखक-डॉ० गोविन्द त्रिगुणायत पृष्ठ ४६६) यथार्थतः संतो का लक्ष्य वेद की निन्दा करना नहीं श्रपितु उन श्रव्यवसायिबुद्धिनिष्ठ पुरुषों की निन्दा करना है जो कहा करते हैं कि 'यामिमां पुष्पितां वाचं प्रवदन्त्यविपश्चितः । वेदवादरताः पार्थ नान्यदस्तीति वादिनः । कामात्मानः स्वर्गपरा जन्मकर्मफलप्रदाम् । क्रियाविशेषबहुलां भोगैश्वर्यगतिं प्रति ॥ (गी० २।४२-४३) कर्मकाण्ड ही वेद का प्रतिपाद्य विषय है कर्मकाण्ड के सम्पादन से प्राप्त स्वर्ग ही परम प्राप्तव्य वस्तु है । 'परोक्षवादो वेदोऽयं बालानामनुशासनम् । कर्ममोक्षाय कर्माणि विधत्ते ह्यगदं यथा ॥'' (भा ११।३।४४) गीता तथा भागवत दोनों ही ग्रंथ कर्मकांड को बालानुशासन ही सिद्ध करते हैं जो संतों ने भी कहा है । श्रतः निष्कर्षतः निर्गुणियाँ संतों को वेद निन्दक कथमपि नहीं कहा जा सकता । 'साङ्गोपाङ्गानपियदिवश्च वेदान धीयते । वेदवेद्यं न जानीते वेद भारवहो हि सः ॥' (म० भारत शान्ति० ३१८।५०)

(४-५) 'तचेदभ्युदियात्सूर्यः शयानं कामचारतः । निम्लोचेद्वाप्यविज्ञानाज्जपन्नुपवसेद्दिनम् ॥' (मनुस्मृति २।२२०) इच्छापूर्वक सोते हुए ब्रह्मचारी को यदि सूर्य उदय हो जाय या इसी तरह भूल से श्रस्त हो जाय तो गायत्री को जपता हुश्रा दिन भर व्रत करे ।

(६) शब्द, स्पर्श, रूप, रस एवम् गंध-पाँच विषय; सत्व, रज तथा तम-तीन गुण ।

(७-८) सर्व श्रनर्थों की निवृत्ति श्रौर परमानंद की प्राप्ति मोक्ष है । मोक्ष प्राप्ति में निद्रा-लय; श्रस्थिरता विक्षेप; रागादिक दोष-कषाय; विक्षेप जन्य दुःख की निवृत्ति से प्राप्त श्रानंदानुभव-रसास्वाद, ये चारों पर विघ्न है । चित्त की पाँच श्रवस्थाएँ हैं—क्षेप, मूढ़ता, विक्षेप, एकाग्रता तथा निरोध भूमिका । इन पाँचों समावेश है–रागादिक दोषों में । वासनाश्रों का श्रन्तर्भाव है–क्षेप में । निष्कर्षतः ये सभी-वासनादिक मोक्षमा बनने में बाधक का स्वरुप धारण करते हैं । श्रतः इनका सर्वथा त्याग करना ही उचित है ।

भ्रम विध्वंस (३४)

आन देव निर्धन सबै, मांगे जग नै रोय। जन सुरतराम संसार का, कहा दिवाला खोय ॥१॥
आन देव सूं आसकी, करिहैं मूढ़ गँवार। स्वान पूंछ सूं सुरतराम, क्यूं लंघे जल धार ॥२॥
व्यारस तो पूंसि धरी, गई धान सब हार। जन सुरतराम वे पापि जिव, कैसे उतरे पार ॥३॥
पंडित ज्ञानी बहु मिल्या, चार वेद परवीन। ऐसा कोई ना मिल्या, जन सुरतराम लव लीन ॥४॥२६॥

भेष (३५)

जैसे आभा गगन में, बहुत करे मंडाण। जन सुरतराम इक नीर बिनु, कोरी शोभा जाण ॥१॥
स्वांग सरस शोभा बणी, आभू का मंडाण। नाम नीर बिनु सुरतराम, कूड़ कुसंग दे जाण ॥२॥
बतलाया बोलिया पड़ै मांगी सुरतराम। असे अभागी मूढ सूं, बोल्या पाड़ै माम ॥३॥
नाम बिना जो भेख है, फीको लागे मंद। जन सुरतराम साँची कहै, दिवस तणो ज्यूं चँद ॥४॥
वैराग फकिरि धारिया, छूटे नहीं बिकार। जन सुरतराम ऐ देखिये, कलयुग भेष विकार ॥५॥
राम भजे सो संत है, मत सूं बंधे नाहि। जन सुरतराम हरिभजन बिनु, धकाधकी बहु खाय ॥६॥
धका खाय दरबार में, राम बिना सब कोय। जन सुरतराम साँची कहै, गृही भेख किन होय ॥७॥२८॥

भ्रम विध्वंस (३४)—संसार सत्य है, शरीर सदा-सर्वदा रहने वाला है, धन-दौलत सत्य है, दिखावे के लिए दिनों तक भूमिगत समाधि लगाना, नाटक-चेटकों में विश्वास करना आदि संपूर्ण भ्रमों का ध्वंस करना तथा स्वरूप की स्मृति करा देना ही इस अंग की विषयवस्तु है।

(१) 'स तया श्रद्धयायुक्तस्तस्याराधन मीहते। लभते च ततः कामान्मयैव विहितान्हि तान् ॥' (गीता ७।२२) द्वारा विधान किये हुए फलही अन्य देवता अपने भक्तों को देते हैं, बिना मेरी आज्ञा के पत्ता भी नहीं हिल स... ये वाक्य हैं भगवान् श्रीकृष्ण के। अतः मूल को ही पकड़ना चाहिये।

भेष (३५)—जिस चीज को आज के समय में सांप्रदायिक कहकर अनुचित ठहराया जाता है, उसी को संतों ने के अंग में रखकर पैरों तले रौंदा है। वस्तुतः सांप्रदायिकता में संकीर्णता ही बुरी चीज है। संकीर्णता स्वत... आ जाती है। आती नहीं है तो आलोचक हठात् लाने के लिये बाध्य करते हैं। संत इसी संकीर्णता को स... करने का प्रयास इस अंग में निबद्ध विचारों के माध्यम से करते हैं। संतों का कथन व्यष्टि को समष्टि में परि... करने के लक्ष्य से ही है।

(१) आभा = बादल, मेघ, 'परथम पवन पवन से आभा आभा जल वर्षाया है। (अनुभववाणी. राम... मंडाण = विभूषित करने की क्रिया (मा० ४/२५७)

(३) माम = चुप्पी 'तर्काप्रतिष्ठानात्' (ब्र०सू० २।१।११)

(54)

प्रकीर्ण (३६)

विराग समान को सुख नहीं, तीन लोक फिर म्राहि । जन सुरतराम साँची कहै, सकल कर्म मिट जाहि ।१।
दिन में पावे मानवी, रात ज पावे देव । रात दिवस माने नहीं, ताकी करिये सेव ।।२।।
साधु गऊ म्रानँद करे, दुनिया मिल मिल लाय । ता प्रेम सूँ सुरतराम, विरषा बरषै म्राय ।।३।।
प्रेम मांहि म्रम्बर झरे, सबै सृष्टि सुख पाय । जन सुरतराम साँची कहै, सदगुरु पद कूँ ध्याय ।।४।।
जल थोड़ा जवाँ घणा, भरभूटा पग खाय । जन सुरतराम वा देश में, संत किसी विधि जाय ।।५।।
जल नाँहि छाँया नहीं, नहीं कहुँ विश्राम । मारवाड़ नहीं जाइये, ऐही भूँडा काम ।।६।।२६५।।

प्रकीर्ण (३६) — यह नाम टीकाकार का दिया हुम्रा है । 'प्रकीर्ण' न तो 'पक्ष' के ही, म्रौर न ही 'पुस्तक' के साखी सम्भागान्तर्गत सकलित है । यह मात्र पुस्तक के पृष्ठांक ५१७ पर संकलित है, जहाँ श्रीपरमहंस स्वामी की म्रनुभववाणी संपूर्ण होती है । इसमें मात्र ६ साखियाँ है । प्रत्येक में प्रतिपाद्य विषय प्रथक्-प्रथक् है । इसलिये विषयानुसार इसका कोई विशिष्ट शीर्षक नहीं दिया जा सका । साखी क्रमांक २ का म्रर्थ हमारी बुद्धि के बाहर है । इसलिए हम इस पर कोई भी टिप्पणी नहीं कर पाये । बाकी की साखियों का विषय स्पष्ट है, जिन पर टिप्पणियों की कोई विशेष म्रावश्यकता प्रतीत नहीं होती । छंदांक ५ एवम् ६ में मारवाड़ देश का वर्णन है । मारवाड़ का मरुस्थल भारत का 'सहारा' कहलाता है । मरुस्थल में जलाभाव एवं ग्रीष्माधिक्य सबसे बड़ी समस्याएँ हैं । इसी कारण वहाँ पर मोटा म्रनाज म्रधिक उपजाया जाता है । मरुस्थल की सवारी के रूप में ऊँट प्रसिद्ध है ही । ऊँटों का भोज्य कँटीली झाड़ियाँ होती हैं । मरुस्थल में म्राज भी इनकी बहुतायात है । इसलिये श्रीपरमहंस स्वामी कहते हैं कि ऐसे स्थानों में, जहाँ जल का म्रभाव हो, कँटीली झाड़ियाँ म्रधिक हो, गर्मी म्रधिक पड़ती हो, वहाँ निवास नहीं करना चाहिये ।

55

चंद्रायणा सम्भाग

गुरुदेव (१)

प्रथम राम रमतीत जू सदगुरु सबही संत। जन सुरतराम वन्दन करे बारम्बार अनंत ॥१॥
सतगुरु के परताप ताप सबही गई। भवसागर के माँहि जाइथो मैं बही।
मेटी सब मम पीर परसतां चरण जी। पर हाँ सुरतराम के सीस राम हैं चरण जी ॥१॥
बड संत बरियाम राम हम कूं दिया। आप अचाही होय कछु भी ना लिया।
उनका पड़िहैं पद शुद्ध हुय धरणि जी। पर हाँ सुरतराम के सीस राम है चरण जी ॥२॥
दय्या निधी दयाल गुरु सिर पें धरें। बक्षी निधी अपार, काम सबही सरें।
दिया भजन का भेव हरण सब कर्म जी। पर हाँ सुरतराम के सीस राम हैं चरण जी ॥३॥
ध्रुव ज्यूं धरिहैं ध्यान टेक प्रह्लाद है। मतो दत्त को सही, बात अगाध है।
नौका हैं बड आप पार जो करण जी। पर हाँ सुरतराम के सीस, राम हैं चरण जी ॥४॥
सदगुरु को परताप मन्न मत नाहि रे। जिनके नित आनंद कहुँ नहीं जाहि रे।
छूटा बाद विवाद नहीं अब अरन जी। पर हाँ सुरतराम के सीस राम हैं चरण जी ॥५॥
रवि जैसे परकास अज्ञ तम हरत हैं। शीतल जैसे चंद शांति अति करत हैं।
देत बिशानी छोल ठरे सब जलन जी। परि हाँ सुरतराम के सीस राम हैं चरण जी ॥६॥

चन्द्रायणा सम्भाग—'छकल द्विकल पुनि दोय त्रिकल गण ठानिये। दे इक कमल रसाल धुजा पुनि आनिये। यों कल कर इकईस चार पद वानिये। छंद प्लवंगम नाम धाम बुध मानिये ॥' (छंदपयोनिधि ७/२६६। छक (SSS); द्विकल (S); दो त्रिकल (IS,IS); कमल (IIS); धुजा (IS) कुल २१ मात्राओं से युक्त प्रत्येक पाद तथा कु ४ पादों वाला छंद ही प्लवंगम, अरेल या चंद्रायणा नामक मात्रिक छंद है। प्रायः सभी निर्गुणिया संतो चंद्रायणा छंद के चतुर्थ पाद में 'पर हाँ' शब्दों का प्रयोग किया है। ये शब्द अतिरिक्त होते है। छंद के बन्ध बंध में इनकी परिगणना नहीं आती। प्रश्न उठता है–'पर' 'हाँ' का क्या तात्पर्य है। मेरी समझ से इन तात्पर्य कथन में अधिक पुष्टता प्रकट करना ही है। कथन में निश्चितता एवम् दृढ़ता प्रकट करना है। सुन्द ग्रंथावली के यशस्वी सम्पादक स्वर्गीय श्रीहरिनारायणजी पुरोहित इसका तात्पर्य 'हाय'! लिखते हैं (सु ग्रं० १/३४१) किन्तु मेरी समझ से इस अर्थ का कोई औचित्य नहीं है। रज्जबबाणी के टीकाकार श्रीनारायणदासजी इन शब्दों के अर्थों के बारे में मौन हैं। संत श्रीबाजिदजी के अरिल्ल तो जगत्प्रसिद्ध है। संत बाजिद ने 'परि हाँ' के स्थान पर 'हरि हाँ' शब्दों का प्रयोग किया है। (हमारे संग्रह में उपलब्ध हस्तलिखित गुटके के आधार पर)

गुरुदेव (१)—(२) बरियाम = श्रेष्ठ, महान्। 'नमो राम रमतीत कूं सदगुरु संत' बरियाम'।' (रामप्रता वाणी)

जिसा हमाऊ छांह रंक बहु धन लहे। चितामणि संग पाय चितवनी ना रहे।
सतगुरु दाता मोक्ष मेट दे मरन जी। पर हाँ सुरतराम के सीस राम हैं चरण जी ॥७॥
गुरु गरीब निवाज आप शरणे लियो। पशू लच्छ कूँ मेट मोहि हरिको कियो।
त्रष्णा डायन भान तोप दे भरन जी। पर हाँ सुरतराम के सीस राम हैं चरण जी ॥८॥
अगम देश की बात गुरु जी कहत है। मुमुक्षु होय जीव चाहि कर लेत है।
चलै नाम के पंथ पड़ै नही भरम जी। पर हाँ सुरतराम के सीस राम हैं चरण जी ॥९॥
ब्रह्म सरुपी रुप भूप निधि भक्ति के। चरचा अणभै खोल पाप जाय जगत के॥
कियो अगम में बास और नहीं घरन जी। पर हाँ सुरतराम के सीस राम हैं चरण जी ॥१०॥
सदगुरु ब्रह्म सरुप आप सुख लीजिये। मन मनसा उलटाय अमी रस पीजिये।
उनके चरणों बास मिटे दु:ख मरन जी। पर हाँ सुरतराम के सीस, राम हैं चरण जी ॥११॥

गुरु सामर्थ्य

सतगुरु सिंह स्वरुप सहज ही गाज ही। गज अघ दिये भगाय, काय बन मौझ हो।
विषय बन्न दियो जार त्रष्ण को पानिया। पर हाँ सुरतराम संतोष बडवानल आनिया ॥१२॥
सदगुरु करें गलार अनुभव उलार रे। झिरमिर बरसै मेह सँतोष जु बारिरे।
तपत सबै ठर जाय उमग प्रेम नीर है। पर हाँ सुरतराम ये जान, सबै सिर पीर है ॥१३॥

सुमरण (२)

तुम्बा है हरि नाम डोर श्वाँसा तणी। खेंच सुरत सूँ बाँध संत सब या भणी॥
धीवर सतगुरु लार पार तोकूँ करै। पर हाँ सुरतराम कोइ छोड जगत सिंधु में मरै ॥१॥
कोटि गऊ दे दान मान कर विप्र सूँ। भोजन बहुत प्रकार जिमावे शक्र सूँ।
नहीं नाम के तौल बोल सब जन कहै। पर हाँ सुरतराम भागौत वेद सब या लहै ॥२॥

---

(७) हमाऊ=हुमा नामक पक्षी। वह केवल हड्डी खाता है। जिस किसी के ऊपर इसकी छाँया पड़ जाती है वह बादशाह-राजा हो जाता है। (मा० ५/५६१); चितामणि=प्रसिद्ध रत्न। जिसके पास यह रहता है, उसकी सारी आवश्यकताओं-चिंताओं को हर लेता है। (मानस २/२३८)

(१-११) 'सुरतराम के सीस राम हैं चरणजी' ध्रुव पद है।

(१२) 'बडवानल' का 'ब' संतोष के साथ पढ़ जाने से छंद मात्रा संयोजन उचित हो जाता है। समुद्र के अन्दर चट्टानों में रहने वाली आग जो सबसे अधिक प्रबल तथा भीषण मानी गई है, बडबानल कहलाती है।

सुमरण (२)—(२) "नाहं वेदैर्न तपसा न दानेन न चेज्यया। शक्य एवंविधो द्रष्टुं दृष्टवानसि मां यथा। भक्त्या त्वनन्यया शक्य अहमेवंविधोऽर्जुन। ज्ञातुं द्रष्टुं च तत्वेन प्रवेष्टुं च परंतप॥' (गीता ११/५३-५४) भगवान् अनन्य भक्ति से ही प्राप्य हैं न कि वेदाध्ययन, दान, तप आदि के द्वारा। परमात्मा क्रियासाध्य नहीं

आनंद कंद अपार पार ताको नहीं। भव्यां उतारे पार, परा का जल मही
डूबण दे नहीं आप राम समस्थ धणी। पर हाँ सुरतराम कह साँच, संत सब या भणी ॥३॥
नमो रमइया राम काम सब सारि हैं। माया मोह कुजाप आप सब जारि है।
चार पदारथ मिलें भजें इक आप रे। पर हाँ सुरतराम त्रय जगत भक्त गिणया परे ॥४॥
सत्य राम को नाम सार सिर सार है। भर्म छाड नह भर्म रटत सोहि पार है।
जम को लगें न जोर नाम की कार है। पर हाँ सुरतराम भज राम राम आधार है ॥५॥
सुमर राम रमतीत अगम सुख सार है। तज त्रष्णा जग कूर झूँठ मृग वारि है।
भर्मत भर्मत मरें नहीं विश्राम जी। पर हाँ सुरतराम अठजाम सुमरिये रामजी ॥६॥
सुमर्‌या सब सुख होय, दु:ख मिट जाय है। जैसे सिंह जु शरण स्याल नहीं खाय है।
ज्यूँ तरुवर की छांह न व्यापे घाम जी। पर हाँ सुरतराम अठजाम सुमरिये रामजी ॥७॥
सुमरें नित प्रति राम चार सनकादिका। गंगाधर लवलीन तजें नहीं साधिका।
गौरीपति कूँ पूछ भेद लियो वाम जी। पर हाँ सुरतराम अठ जाम सुमरिये राम जी ॥८॥
चार पदारथ देण लेण कुछ नाहि रे। मेट कपट दे साँच मगन कर ताहि रे।
भक्तन के बस आप दोड़ कर काम जी। पर हाँ सुरतराम अठजाम सुमरिये राम जी ॥९॥
बडो भक्त प्रहलाद काम ताको कर्‌यो। हिरणा राक्षस मार भक्त सिर कर धर्‌यो।
माँग माँग कह बोल दई सुख धाम जी। पर हाँ सुरतराम अठजाम सुमिरिये राम जी ॥१०॥
मात पिता कूँ त्याग ध्रुव बन कूँ गयो। राम सुधार्‌यो काम पिता साम्हो गयो ॥
दियो राज सम्मान अडिग दइ ठाम जी। पर हाँ सुरतराम अठजाम सुमरिये राम जी ॥११॥

है, भाव एवं ज्ञान साध्य है। इसीलिये महर्षि नारद क्रिया साध्यता का निषेध करते है–'वेदानपि संन्यस्यति केवलमविच्छिन्नानुरागं लभते।' ४९ ॥ (नारद भक्ति सूत्र)

(४) स्वयं को भगवदर्पित कर चुकने के पश्चात भी यदि कुछ दुर्गुण दोष अवशिष्ट रह जायें तो रहो, परन्तु स्वयं उन दुर्गुणों को दूर करने में सहयोग करते हैं। 'योगक्षेमं वहाम्यहम्' (गीता ९/२२) नारद भक्ति सूत्र में कहा है–'तदर्पिताखिलाचारः सन् कामक्रोधभिमानादिकं तस्मिन्नेव करणीयम् ॥६५॥' चार पदार्थ–धर्म, अर्थ, काम एवम् मोक्ष।

(८) गंगाधर= भगवान् शंकर; साधिका=साधना।

(९) परमात्मा आप्तकाम है। 'नानवाप्तमवाप्तव्यं वर्त्त एव च कर्मणि।' (गी० ३/२२)

(१०) भक्त प्रहलाद कहते हैं–'आशासानो न वै भृत्यः स्वामिन्याशिष आत्मनः। न स्वामी भृत्यतः स्वाम्यमिच्छन् यो राति चाशिषः ॥५॥' जो स्वामी से अपनी इच्छाओं की पूर्ति चाहता है; वह सेवक नहीं; जो सेवक से सेवा कराने के लिये; उसका स्वामी बनने के लिये उसकी कामनाएं पूर्ण करता है, वह स्वामी नहीं। मैं आपका निष्काम सेवक हूं, आप मेरे निरपेक्ष स्वामी हैं। अतः आप मुझे वरदानों के व्यामोह में मत फँसाईये।

सुमरण सत वित जाणि मान धन धर्म रे। कोमल ह्रुय ले नाम कटे सब भर्म रे।
सृष्टि तणों करतार राम सुख श्याम जी। पर हाँ सुरतराम अठजाम सुमरिये राम जी ॥१२॥
भक्त बणे असवार शील सत बाण है। राम नाम डग भरन अगम कूँ जाण है।
श्वांस उश्वांसा चाल पहुँच निज गाम जी। पर हाँ सुरतराम अठजाम सुमरिये राम जी ॥२६॥

विरह (३)

विरह अग्नि सूँ सूकि प्रेम जल भीजिये। दुनिया सेती मरन ज्ञान गति जीजिये॥
त्रष्णा को तज नीर राम रस पीजिये। पर हाँ सुरतराम कह साँच, सत सुख लीजिये ॥१॥
झाँकत झाँकत त्यौर पौव अब फाट हैं। हिरदय उबकत अथग कहाँ लूँ डाटि हैं।
बैग पधारो कंत बात ऐ काम की। पर हाँ सुरतराम लग रही आश पति राम की ॥२॥
रही आश सूँ लाग बिरहनि अहनिशा। चहुँ दिशि जोवे झूर आय है किहँ दिशा।
तलफ तलफ कर जीव नहीं सुध चाम की। पर हाँ सुरतराम लग रहि आश पति राम की ॥३॥
झरते हैं चख मोर जोर तुम सूँ कहा। मो उर बिरहा आग जाग है अति दहा॥
शीतल करो शरीर बीर द्यो धाम की। पर हाँ सुरतराम लग रहि आश पति राम की ॥४॥
धाम पधारे राम कंत सत संत के। अति आनंद उछाह करूँ में कंत के॥
तन मन धन न्योछार हमारे श्याम की। पर हाँ सुरतराम लग रही आश पति राम की ॥३१॥

परिचय (४)

रसना सूँ ले नाम स्वाद सब नाश है। झूँठ बचन नहीं एक कहत मुख साँच है॥
आसण अडिग जमाय जाय नहीं पुर धरा। पर हाँ सुरतराम ऐ ज्ञान खेचरी मूदरा ॥१॥
हिरदय मध्ये वास शब्द जो करत है। लव लागे निशिवास ध्यान ध्वनि धरत है॥
अति कोमल निष्कपट तजे सब द्वंद्वरा। पर हाँ सुरतराम गत भई, भूचरी मूदरा ॥२॥
नाभी कमल सथान शब्द बासा करै। राग अनंत प्रकार ध्यान गुप्ता धरै।
रोम रोम में राम मिटै सब द्वंद्वरा। पर हाँ सुरतराम रहै गुप्त अगोचर मूदरा ॥३॥

(६-१३) 'सुरतराम अठजाम सुमरिये रामजी।' ध्रुव पद है।

विरह (३)—'सुरतराम लग रहो आश पति राम की।' ध्रुव पद है।

परिचय (४)—रामस्नेही साधना शब्द साधना है। श्रीपरमहंस स्वामी ने शब्द के माध्यम से उत्पन्न सि... को मुद्राओं के माध्यम से बहुत ही सुन्दर रीति से समझाया है। जिसको श्रीमहाराज 'चौकी भजन प्र... की संत कह गये चार। रामचरण या सत्य है दूजा भर्म अपार ॥१॥ रसन कण्ठ रस पीय के हिरदय ... बिलास। नाभि कमल सूँ उलट के, सुरति गई आकास ॥२॥' (साखी, परिचयांग) आदि कहते हैं उसी...

बंक नाल के घाट शब्द त्रिकुटी चढ़े। पीवे रस अग्घाइ अमित आनंद बढ़े।
बाजा बजै अपार घन ज्यूं निरधनी। पर हां सुरतराम मस्तान मूदरा उनमुनी ॥४॥
जहँ दिवि भया प्रकास ब्रह्म कूं परसि हैं। मिट्यो द्वैत को भास राम जग दरसि है।
कहै अगम की बात शब्द मुख चाचरी। पर हां सुरतराम आनंद मूदरा चाचरी ॥५॥
शब्द राह हुय संत अगम कूं चढ़त है। रसन कंठ लवलीन हृदय सुख बढ़त है॥
नाभि कमल सुख गुढ़ जान नहीं परत है। पर हां सुरतराम उनमुनी त्रिकूटी घरत है॥६॥
उनमुन रहै उदास त्रिकुटी मांही रे। बाजा बजे अपार पार नहीं पाहि रे॥
सदा शांति सुख रूप धूप नहीं घाम है। पर हां सुरतराम मिलराम तेज पुंज धाम है॥७॥
शून्य शिखर के मांहि, बजत है तूर रे। झिलमिल नूर प्रकास अनंत जहां सूर रे॥
ब्रह्म विलासी सुक्ख सुरति कूं भाय है। पर हां सुरतराम आनंद, जहां जन जाय है॥८॥
गये संत सिकदार ब्रह्म में मिल रहे। धर सूं ऊठी धूम नम्भ में मिल रहे।
ज्यूं सिलता को नीर बहुर नहीं आय है। पर हां सुरतराम सिंधु मांहि सिंधु हुय जाय है॥९॥
आठ पहर लवलीन धणी कूं लखत है। धरत ध्यान सम्माधि प्रेम रस चखत है॥
अनहद सुनहै बचन चिह्न ऐ सांच है। पर हां सुरतराम भये हंस प्रेम की चांच है॥१०॥

श्रीपरमहंस स्वामी ने यहाँ खेचरी, भूचरी, अगोचरी उन्मुनी तथा चाचरी मुद्रा के नाम से कहा है। मुद्रा का विवरण हठयोग प्रदीपिकादि ग्रंथों में मिलता है किन्तु हठयोग की जटिल प्रक्रियाएं जिज्ञासु को अपेक्षित नहीं, इसीलिये यहाँ विशेष विवरण नहीं लिखा गया।

इस परिचयांग के पढ़ने पर 'मुक्ति का क्या स्वरूप है?' पर भी श्रीपरमहंस स्वामी के विचार स्पष्ट हैं। वे कहते हैं—जैसे बादल से गिरा जल नदी में, नदी का जल समुद्र में, समुद्र का जल समुद्र में, यही उसकी अंतिम परिणति है; वैसे ही जीव राम नाम के साधन से ब्रह्माकार ही हो जाता है। फिर पुनः जन्म मरण के चक्र में नहीं आता। वह तो तदाकार ही होता है! प्रथक् सत्ता रहती ही नहीं।

(९) सिकदार = पृथिवी से उत्पन्न होकर धूम आकाश की ओर जाती है. वही बादल का स्वरूप धारण कर जीवों के जीवन का आधार बनती है। (गीता ३/१४) इसी प्रकार संसार में उत्पन्न संत संसार का परित्याग करके साधना द्वारा परमात्मा के **विश्वसनीय और बलवान अधिकारी** बन जाते हैं। संसार का कल्याण करते हैं। अन्ततः ब्रह्माकार हो जाते है जैसे नदी समुद्र में मिलकर समुद्रवत् हो जाती है।

(१०) अनहद = अनाहत, ध्वनि उत्पन्न करने वाले किसी भी यंत्र को बिना आहत किये बिना किसी यंत्र की सहायता के जो ध्वनि उत्पन्न होती है, वही अनाहत नाद है। 'अनाहतस्य शब्दस्य ध्वनिर्यउपलभ्यते। ध्वनेरंतर्गतं ज्ञेयं ज्ञेयस्यांतर्गतं मनः॥ मनस्तत्र लयंयाति तद्विष्णोः परमं पदम्॥' (हठयोग प्र० ४) इसी ग्रंथ में इसके दस प्रकार बताये गये है—"आदौ जलधिजीमूत भेरी झर्झर सम्भवाः। मध्येमर्दल शंख घंटाकाहलजास्तथा ॥८५॥ अन्तेतु किंकणी वंश वीणा भ्रमर निः स्वनाः। इति नाना विधा नादाः श्रूयन्ते देहमध्यगा ॥८६॥" (हठयोग प्रदीपिका चतुर्थ उपदेश)

प्रेम तणी है चँचु मुक्ति मोती चुगै। सुख सागर कूँ छाँड इत्त उत ना भगै।
ओत-प्रोत मिल रहै ऐक सो होइ है। पर हाँ सुरतराम रवि किरण एक नहीं दोय है ॥११॥
तेज पुँज की धाम धाम नहीं गार की। नहि भाटा नहि कली नहि कोइ बारिकी।
नहीं हेम की बणी नगर नहीं ठाम है। पर हाँ सुरतराम मिल राम तेज पुँज धाम है ॥१२॥
अगम महल अम्माप पार परलो नहीं। अगम झरोखा झड़फ गम्म गलबो नहीं॥
अगम बाग बागात अगम फल खाम है। पर हाँ सुरतराम मिल राम तेज पुँज धाम है ॥१३॥
शब्द पियारे पीव सुरति निज सुंदरी। रंग भरि रमै सुप्यार नहीं को द्वंदरी।
परसै फिर फिर पीव हेत कर राम है। पर हाँ सुरतराम मिल राम तेज पुँज धाम है ॥१४॥
अदभुत कला अपार पार को पात है। विरला संत सुजान जुगति कर जात है॥
योग यज्ञ तप नियम करत बहु धाम है। पर हाँ सुरतराम मिल राम तेज पुँज धाम है ॥१५॥
हंस चल्या आकाश पंख बिनु उडत है। सुंदरि सिल सिल ठाम सुरति कर चढ़त है॥
शुन्य सरोवर भर्या मुक्ति ब्रह्म गाम है। पर हाँ सुरतराम मिल राम तेज पुँज धाम है ॥१६॥
तत पाया तन छाँड वाड हदका किला। चलो अधर के पंथ कंत तहँ है भला॥
नहि कर्म नहि भर्म काय नहि काम है। पर हाँ सुरतराम मिल राम तेज पुँज धाम है ॥१७॥
भरे ब्रह्म दरियाव हंस केला करै। शीतल बहै सरवक मुक्ति मोती चरै॥
चले चलावे नाहि अमरते ठाम है। पर हाँ सुरतराम मिल राम तेज पुँज धाम है ॥१८॥

---

(११) इस छंद में मुक्ति का साक्षात् साधन प्रेम मयी भक्ति को बताया गया है। 'मद्गुण श्रुतिमात्रेण मयि सर्वगुहाशये। मनोगतिरविच्छिन्ना यथा गङ्गाम्भसोम्बुधौ ॥११॥ लक्षणम् भक्तियोगस्यनिर्गुणस्यह्युदाहृतम्। अहैतुक्यव्यवहिता या भक्तिः पुरुषोत्तमे ॥१२॥' (श्रीमद्भा० ३/२९/११-१२)

(१२) 'न तद्भासयते सूर्यो न शशाङ्को न पावकः। यद्गत्वा न निवर्तन्ते तद्धाम परमं मम ॥' (गी०१५/६) न तत्र सूर्यो भाति न चन्द्रतारकं नेमा विद्युतो भान्ति कुतोऽयमग्निः। तमेव भान्तमनुभाति सर्वं तस्य भासा सर्वमिदं विभाति ॥' (कठो० २/२/१५)

(१५) यहाँ से २३ वें छंद तक 'सुरतराम मिल राम तेज पुँज धाम है।' ध्रुव पद है।

(१७) तत्वोपलब्धि के उपरान्त शरीर की सीमा-उपाधि सर्वथा समाप्त हो जाती है। शरीर की उपाधि ही नहीं अपितु सम्पूर्ण प्रपञ्च का ही बाध हो जाता है। तत्वोपलब्धि होने पर स्वतः ही चिन्तन होने लगता है– 'उपाधिरायाति स एव गच्छति स एव कर्माणि करोति भुङ्क्ते। स एव जीर्यन्म्रियते सदाहं कुलाद्रिवन्निश्चलं एव संस्थितः ॥' (विवेक चूड़ामणि ५०२)

(१८) केला = क्रीड़ा; सरवक = मस्त, उन्मत्त हुआ, सराबोर होकर वहाँ की शीतलता का (दुःख और द्वंदों से रहित अचिन्त्यानंद) उपभोग करता है। अमरते=अमृतमय है, अजर-अमर है।

कल्प वृक्ष शुन मांहि झड़ँ जहँ मोतिया । गैव उजाला होय अखंडित जोतिया ॥
पूरण ब्रह्म प्रकास अमर पुर ग्राम है । पर हाँ सुरतराम मिल राम तेज पुंज धाम है ॥१९॥
अनंत कोटि परकास, ब्रह्म ता तेज है । शांति स्वरूपी सदा अखंडित सेज है ।
अरस परस मिल ऐक तजत नही ठाम है । पर हाँ सुरतराम मिल राम तेज पुंज धाम है ॥२०॥
भर्या ब्रह्म दरियाव गगन मध सागरा । सुरति करत असनान सोर बहु दादरा ।
झिलमिल होत प्रकास अनंद अभिराम है । पर हाँ सुरतराम मिल राम तेज पुंज धाम है ॥२१॥
मूरख मूढ़ अज्ञान करत बहु बाद जो । ब्रह्म मिल्या का सुक्ख कहो तुम साध जो ।
कहा रूप कहा रंग कौनसी ठाम है । पर हाँ सुरतराम मिल राम तेज पुंज धाम है ॥२२॥
ब्रह्म मिल्या का सुक्ख कह्या नहीं जानि हैं । सुमर राम रमतीत प्रेम रस खानि है ॥
नही अरंगी रंग भंग नहीं राम है । पर हाँ सुरतराम मिल राम तेज पुंज धाम है ॥२४॥

शुद्ध ज्ञानी (५)

कर में पातर गार फूँस का साँथरा । ज्ञान गूदड़ी कंध भजन की मातरा ।
भिक्षा भोजन लाय शुद्ध सो खात है । पर हाँ सुरतराम भज राम अमर पद पात है ॥१॥
विधि निषेध कुछ नाहि भर्म को नाश है । दुख सुख कलपे नाहि मुकुर ज्यूँ भ्यास है ॥
देह प्रापति यूँ जान और नहीं बात है । पर हाँ सुरतराम भज राम अमर पद पात है ॥२॥

---

(१९) गैव = अद्‌भुत ।

(२१) सोर=आवाज । दादरा = दादुर-मेंढ़क ।

(२२) 'नायमात्मा प्रवचनेन लभ्यो न मेधया न बहुना श्रुतेन । यमेवैष वृणुते तेन लभ्यस्तस्यैष आ... विवृणुते तनुँ, स्वाम् ॥' (कठोपनिषद् १/२//२३) परमात्मा अनुभव गम्य है, वाद विवाद के ... में उसे आबद्ध नहीं किया जा सकता । 'वादे वादे बढ़ंते वेरवह्नि'

शुद्धज्ञानी (५)–(१) पातरगार = मिट्टी का पात्र, फूँस का साँथरा = घास फूँस के गद्‌दे; ज्ञान गूदड़ी ... कंधे पर ज्ञान की गूदड़ी-रजाई; भजन की मातरा=दौलत मात्र भगवद्‌भजन है ।

(२) विधि-निषेध की प्रवृत्ति से ही प्रवृत्ति-निवृत्ति होती है किन्तु जीवन्मुक्त पुरुष तो इनसे सर्वथा ... होता है–'न मे प्रवृत्तिर्न च मे निवृत्तिः सदैक रूपस्य निरंशकस्य । एकात्मको यो निविडो निरन्तरो ... पूर्णः स कथं नु चेष्टते । ५०३॥' (वि० चू०) मुकुर ज्यूँ भास है–जैसे काँच में मुँह तब ही दीखे ... जब उसमें देखा जाये । इसी प्रकार सुख दुःख की अनुभूति तब तक ही होती है, जब तक चिन्तन उस ... है । जब वृत्ति ब्रह्माकार हो जाती है तब दुःख-सुख का चिन्तन स्वतः ही छूट जाता है ।

बन्दन ते नहिं मोद निंद नहिं कलपना। प्राम मिल्या नहीं सुखी बन्न नहिं डरपना॥
ना काहू सूँ हेत दोष नहिं लात है। पर हाँ सुरतराम भज राम अमर पद पात है॥३॥
गरक ज्ञान मसतान मग्न नहिं भर्मना। सुध स्वरूप में गलत मन्न बच करमना॥
नहीं पुन्य नहिं पाप धर्म नहिं ध्यात है। पर हाँ सुरतराम भज राम अमर पद पात है॥४॥
कर्म न काम न कोय कोय सिध साधका। ध्यात न ज्ञात न कोय कोय मत वादका॥
साधु असाधु न कोय होय सम भाव हैं। पर हाँ सुरतराम भज राम अमर पद पाव है॥५॥

साधु (६)

तिलक राम को नाम माल गल उनमनी। सुमरत सदा अखंड सुमिरिनी ता भनी॥

---

(३) 'साधुभिः पूज्यमानेऽस्मिन्पीड्यमानेऽपि दुर्जनैः। समभावो भवेद्यस्य स जीवन्मुक्त इष्यते॥४४१॥ (वि० चू०) 'तुल्य निन्दास्तुतिर्मौनी संतुष्टो येन केनचित॥' (गी० १२/१६)

साधु (६)—जीवनमुक्त साधु महापुरुषों के लक्षण बताते हुए कहा जा रहा है कि रामजी का नाम स्मरण ही तिलक है। प्रायः तिलक के द्वारा ही यह जाना जाता है कि वैष्णव, शैव, शाक्त, सौर अथवा गणपत्य कौन है? तिलक द्वारा ही बाह्य पहचान होती है। इसी प्रकार साधना पक्ष में साधना पद्धति की भिन्नता से ही यह पहचाना जाता है कि कौन ज्ञानमार्गी है, कौन भक्तिमार्गी है, कौन कर्ममार्गी है अथवा कौन किस साधना पद्धति को अपनाता है। रामस्नेही सम्प्रदाय की साधना पद्धति राम नाम स्मरण पर ही टिकी हुई है। कलियुग में नामस्मरण ही सर्वश्रेष्ठ है, ऐसा शास्त्र सम्मत है। 'कृते यद् ध्यायतो विष्णुं त्रेतायां यजतो मखैः। द्वापरे परिचर्यायां कलौ तद्धरिकीर्तनात्॥' (भा० १२/३/५२) 'यज्ञानां जपयज्ञोऽस्मि।' (गी० १०/२५) 'कलियुग केवल नाम अधारा।' (मानस) 'तस्य वाचकः प्रणवः॥ तज्जपस्तदर्थ भावनम्॥'' (योगशास्त्र १/२७-२८) अतः नाम स्मरण की तुलना तिलक से करना सर्वथा उचित है। उनमुनी अवस्था ही गले में माला है। गले में माला धारण करने से धारण कर्ता की आभा द्विगुणित हो जाती है। इसी प्रकार उनमुनी अवस्था के धारण करने से साधु का साधुत्व निखर जाता है। 'शंखदुंदुभिनादं च न शृणोति कदाचन। काष्ठवज्जायते देह उन्मन्यावस्थाया ध्रुवम्॥ सर्वावस्थाविनिर्मुक्तः सर्वचिंता विवर्जितः। मृतवत्तिष्ठते योगी स मुक्तो नात्र संशयः॥' (ह० प्र० ४/१०६-१०७) अहर्निश रामस्मरण ही हाथ में पहनने का दानेदार गहना है। (भा० ५/४०८) हार वस्त्रों से आच्छादित हो जाता है, इसी प्रकार उनमुनी अवस्था प्राप्त होने पर साधु का व्यवहार जड़वत् हो जाता है। फलतः लोक कल्याण का कार्य रुका हुआ सा लगता है। लोक कल्याण का कार्य इससे पूर्व की अवस्था वाले से ही सम्भव है। क्योंकि 'खदबद बोले खीचड़ी जब लग काची होय।' (अनुभव वाणी) उपदेशादि का कार्य बाह्य-व्यवहार का कार्य है जिसकी संगति प्रत्यक्षतः दीखने वाली सुमिरिनी से भली प्रकार बैठती है। साधु का ब्रह्मचर्य पालन ही कोपीन धारण करना है। वीर्य रक्षण ही कोपीन धारण करना है। यदि साधु से वीर्य रक्षण नहीं किया जा सकता तो उस साधु को साधु नहीं कह कर वैश्या, जो व्यभिचार करते हुए भी अपने आपको पातिव्रत धर्म पालन करने वाली स्त्री कहने

कोपी जत कर काछ वाच नहि वाद का। पर हाँ सुरतराम लवलीन यही मत साध का ॥१॥
काम क्रोध कूँ जीत लोभ का नाश है। गुण इन्द्र्याँ सूँ अड़ैं गुरु पद वास है॥
जगत मता सूँ दूर तजै मरजाद का। पर हाँ सुरतराम लवलीन यही मत साध का ॥२॥
समता से कर प्रीत ममत कूँ परहरे। द्वैत निवारे दूर, ब्रह्म हिरदय धरे॥
सुमरे रमता राम बात अग्गाध की। पर हाँ सुरतराम लवलीन, यही मति साध की ॥३॥
मुख सूँ बोले वचन जान अमृत भरे। जलते बलते जीव सुनत शीतल ठरे॥
राम राम में रमे रैन प्रहलाद का। पर हाँ सुरतराम लवलीन यही मत साध का ॥४॥
सुख दायी सो साध दुक्ख दुर्मति नहीं। परपंची नहीं कोय त्रंग में चित नहीं॥
निर्द्वंदी नित रहे हेतु सब जंत सूँ। पर हाँ सुरतराम कर प्रीति इसा निज संत सूँ ॥५॥
शुचि संयम शांतीक सदा सो साध है। निर्लेपी नित रहै बात अग्गाध है॥
सबका मन की लखै दषणि सब मेट हैं। पर हाँ सुरतराम सो साध अमातम मेट है ॥६॥६५॥

असाधु (७)

षट रस में लव लीन दीन रहे जगत के। रज तम सदा नजीक नहीं गुण भक्त के॥
टट्टु टांगर बैल गाय घर लाद हैं। पर हाँ सुरतराम वे साध नहीं, असाध हैं ॥१॥

में नहीं हिचकिचाती, का समान धर्मी कहना ज्यादा उचित होगा। साधु निष्पक्ष कथन अवश्य करता है कि उसके यहाँ वाद-विवाद को कोई स्थान नहीं है—'बुझ्या सूँ चर्चा करे छांडया वाद विवाद। पक्षपात में ना व सो कहिये निज साध॥' (अनुभव वाणी)
श्रीस्वामी सुरतरामजी महाराज कहते हैं कि लव–वृत्ति स्वस्वरूप में इस प्रकार की साधना से स्वतः ही स्थि हो जाती है। बस, यही मुक्ति का स्वरूप है 'योगश्चित्तवृत्ति निरोधः ॥२॥ तदा द्रष्टुः स्वरूपेऽवस्थानम् ॥३॥ (पा० यो० दर्शन १)

(२) अड़ैं = यदि इन्द्रियाँ प्रबल होकर गृहस्थ धारण करने का प्रयत्न करे तो साधु उनसे लड़कर उनका मुकाबला करके उनको पस्त कर देता है।

(६) दखणि = देखणि, देखने की क्रिया। इस प्रसंग में, अन्त्यानुप्रास के कारण साधु को साध ही लिखा गया है।

असाधु (७)—(१) षट्रस = मधुर, लवण, तिक्त, कटु, कषाय और अम्ल। टट्टु = एक प्रसिद्ध पशु जो घ और घोड़ी या घोड़े और गधी के संयोग से उत्पन्न होता है। यहाँ पर दोगले व्यक्ति से तात्पर्य है (मा० २/५); टांगर = टट्टु द्वारा खेंची जानी वाली गाड़ी।

मूरख तोड़ तान मान नित करत है। संतों सूं रहे फरक जगत वित हरत है॥
राजी ह्वै ले हाथ दुनी की छादि है। पर हाँ सुरतराम वे साध नहीं, असाध है॥२॥
बेटा बच्चाँ प्रीति प्रीति अति हंडिया। धाम दाम सूं प्रीति प्रीति अति रंडिया॥
निस्वै ही सूं धड़ दौड़ कर वाद है। पर हाँ सुरतराम वे साध नहीं, असाध है॥३॥
लगी चाह की जरन ठरन नहि तोष है। कुकर्म करत कपूत गिणत नहि दोष है॥
मत पथ सुरति लोप नहीं मरजाद है। पर हाँ सुरतराम वे साध नहीं, असाध है॥४॥६६॥

साधु संगति (८)

रहा अकल भर पूर खलक खाली नहीं। कर ले मनवा पाक, परगटे अप मही॥
काहे कूं फिर दूर संगति कर संत रे। पर हाँ सुरतराम कहू साँच छोड सब मन्त रे॥१॥
साधु संगति में आय काज कर लीजिये। हिरदय होवे शुद्ध महा रस पीजिये॥
उचरे अमृत बैन रसायण रस्स जी। पर हाँ सुरतराम भज राम यही घर बस्स जी॥२॥
पार होय पल माहिं संत के संग ते। जन्म मरण मिट जाय रहित हुय भंग ते॥
ये हैं बडे दयाल दया सब कूं करे। पर हाँ सुरतराम इन बिना जगत में फंस मरे॥३॥
सत्संगति कर जाल प्रेम की पाँसि रे। मेल्ह मार नित नियम नहीं अवकाश रे॥
सतगुरु बडे चुटार मिरग मन जानिये। पर हाँ सुरतराम रहू ठौर शब्द सर तानिये॥४॥
जन्म जन्म में मरे धरे नहीं धीर रे। बिना भजन परताप लहै ऐ पीर रे॥
इन्द्रयाँ को कर दमन भवन सत्संग रे। पर हाँ सुरतराम कहू साँच फेर नहीं भंग रे॥५॥७४॥

मन (९)

कुराँ कुराँ दिन रात, काग मन करत है। मुक्ता छांडे नाम भोग मल चरत है॥
करे खेचरी कुबुधी मूढ़ नहि डरत है। पर हाँ सुरतराम बहु चपल उडत ही फिरत है॥१॥
मन मिरगा मैं मत्त चरत विष वारिया। मिरगी पाँच पचीस लैर लग डारिया॥
सतगुरु ज्ञान[1] सरुप ग्यान कब्बाण रे। पर हाँ सुरतराम ले मार शब्द भर बाण रे॥२॥

---

(२) फरक = पृथक्–दूर; वित = धन; छादि = छादन–वस्त्रादि।

साधु संगति (८)—(१) पाक = पवित्र; अपमही = स्वयं के अंदर ही अर्थात् स्वस्वरूप का बोध हो जावेगा। (२) महारस = परमात्मा रस रुप है। 'रसो वै स:। रसं ह्येवायं लब्ध्वाऽऽनन्दी भवति।' तैतिरीय० २/७) साधु संगति से उस रस रुप परमात्मा की प्राप्ति सम्भव है।

मन (९)- (१) पाठांतर = तेज। मैं, मेरे में उन्मत्त हुआ मन ही मृग है। पाँच तत्व तथा पच्चीस प्रकृति ही मृगी है। सद्गुरु पारधी रूप है। सद्गुरु प्रदत्त ज्ञान ही कमान है। श्रीस्वामी सुरतरामजी कहते है कि उस कमान में राम नाम रूपी बाण भर कर मृग एवं मृगियों को मार डालो।

मनवो भोंदू भूत पूत अज्ञान को। करे भक्ति में भंग जोर अति मान को॥
भाग्यो फिरे निशंक हर्ष मन में धरे। पर हां सुरतराम अति बंड, कौन विधि ऊबरे॥२॥७७॥

वाचकज्ञानी (१०)

औरां कूं दे ज्ञान आपकी गम नहीं। बात बणावे आय भजन में मन नहीं॥
सुणत त्याग की बात सिटल्लु डरत है। पर हां सुरतराम विष भोग खाय मुढ़ मरत है॥१॥७८॥

अज्ञानी (११)

संत कहै समझाय मूढ़ माने नहीं। साखी शब्द सुनाय बहुत नीकां कही॥
माने नाहीं मूल मूल भोगां तणी। पर हां सुरतराम जड़ पथर तीर तूटे अणी॥१॥७६॥

काल (१२)

काल पछाड़े जीव खबर नहि पलक की। हाय हाय सब करैं बुद्धि या जगत की॥
खासी सब कूं सोइ एक नहि ऊबरे। पर हां सुरतराम भज राम तबै ही ऊधरै॥१॥
ज्यूं मूसे कू सर्प दौड़ के पकड़ हैं। तकत सुवा पर बाज चंचु दे बिखर है॥
क्षण माहि चकचूर बार कहा लगत है। पर हां सुरतराम रट राम काल सिर गजत है॥२॥
गयो दिहाड़ो बीति रात पुनि प्रात है। प्रात भयां ते मूढ़ करत बहु बात है॥
सिसरति गई बसंत राम नहि भजत है। पर हां सुरतराम रट राम काल सिर गजत है॥३॥
कर में लिया कबाण काल नित फिरत है। प्राणी मिरग समान विषय बन चरत है॥
भया श्याम सूं सेत कुबुधि नहि तजत है। पर हां सुरतराम रट राम काल सिर गजत है॥४॥
चीता रुपी काल जीव सब श्वान रे। मारै पटक पछाड़ बूढ कहा ज्वान रे॥
पाव पलक नहि गम्म खलक नहि तजत है। पर हां सुरतराम रट राम काल सिर गजत है॥५॥
गम नहीं पाव पलक खबर नहीं दिन्न की। करत कर्म बेकर्म चाह अति धन्न की॥
मोह मान में गरक विषय कूं भजत है। पर हां सुरतराम रट राम काल सिर गजत है॥६॥

---

(२) मन भोंदु–बेअक्ल है। अज्ञान का पुत्र है। भ्रम मन कल्पित ही है। मन को वश में कर लिया जा... मोक्ष में कोई संशय नहीं। अज्ञान का पुत्र कहने का तात्पर्य यही है कि जीव एवं ब्रह्म का भेद जिसे अ... कहा जाता है मन में ही होता है। असंभावना एवम् विपरीत भावना दोष मन कल्पित ही है। 'मन ... मनुष्याणां कारणं बन्ध मोक्षयोः। बन्धाय विषयासङ्गि मुक्त्यै निर्विषयं मनः॥'' (विष्णुपुराण ६/७/२८)

काल (१२)—(१) गुरुज्ञान का बुर्ज बनाओ। ध्यान का धारवा बनाओ। विवेक के गोले बनाओ। धा... के बारुद बनाओ। राम नाम स्मरण की गाज द्वारा शत्रुरुपी काल को ललकार लगाओ, काल हार कर ...

गजत काल बिकराल खबर तोहि नाहि रे। जैसे भूको सिंह भेड के जाहि रे॥
भाँ भूँ सब मिल करे ग्रज्ञ नहीं लजत है। पर हाँ सुरतराम रट राम काल सिर गजत है॥७॥
सब कूँ खावे काल तुरत इक ताल में। सुर नर ग्रसुर ग्रनेक काल की झाल में॥
बचिहैं संत सुजान राम गढ सजत है। पर हाँ सुरतराम रट राम काल सिर गजत है॥८॥
कर बुरजाँ गुरु ज्ञान ध्यान का ग्रारबा। गोला करो विवेक सोर सो मारबा॥
राम राम कर गाज काल ग्रब भगत है। पर हाँ सुरतराम रट राम काल सिर गजत है॥९॥८८॥

चेतावनी (१३)

सुत नारी सूँ नेह मूढ ग्रति करत है। झूँठ कपट पाखंड पाप सिर धरत है॥
लेखा देती वार जबाब न ग्रावसी। पर हाँ सुरतराम कहै साँच मार बहु खावसी॥१॥
बहुत खाय सिर मार ग्रधर्मी जीव रे। कर्म करत दिन गया भज्यो नहीं पीव रे॥
मुदगर दे सिर माहिं बाँधियो खंभरे। पर हाँ सुरतराम कहै साँच जम्म दे बम्बरे॥२॥
कर्म करे हुसियार राम कूँ ना भजे। उलझ्यो बहु उलझाड़ काल सिर पर गजे॥
पड्या रहै मंडाण पकड़ ले जावसी। पर हाँ सुरतराम जम द्वार बहुत दुख पावसी॥३॥
देश देश में राज राज खंड खंड में। मुलक मुलक में किला दुहाई मंड में॥
ग्ररु भोम्या भूपाल खुसामद ग्रात है। पर हाँ सुरतराम बिन राम बाद दिन जात है॥४॥
फौजा सो ग्ररु सँहस लखों सँग चढत है। हुकम हुकम सिधि काम कला नित बढ़त है॥
बडे बडे है भ्रात कुटुम्बी साथ हैं। पर हाँ सुरतराम बिन राम बाद दिन जात है॥५॥
तबल बजै घन घोर जोर ग्रति करत है। डरैं मीर ग्रमराव बिस ले चरत है।
मेरी मेरी बात रैन दिन लात है। पर हाँ सुरतराम बिन राम बाद दिन जात है॥६॥
मिलैं मिलापी यार देख खुश होत है। ग्रापस में कर सैन त्रिया दिशि जोत है॥
तजैं मुक्ति की बाट नरक मन भात है। पर हाँ सुरतराम बिन राम बाद दिन जात है॥७॥
बाग बगीचा जाय, खुशी बहु करत है। चलैं फँवारा सीर होद जल भरत है॥
मुहचंग बैण बजाय राग बहु गात है। पर हाँ सुरतराम बिन राम बाद दिन जात है॥८॥
कर कामिनि से हेत लेत सुख महल में। दासी चाँपे चरण ग्रवस्था छयल में॥
ग्ररसि-परसि मिल रहै हाथ पर हाथ है। पर हाँ सुरतराम बिन राम बाद दिन जात है॥९॥
बल दे बाँधे पाग रंगता साँवली। चाले ग्रैंडी चाल निरखतो छाँवली॥
उलट पलट हल फल्ल, करत बहु बात है। पर हाँ सुरतराम बिन राम बाद दिन जात है॥१०॥

जायेगा। किले ग्रादि की दीवारों में कोनों पर ऊपर की ग्रोर निकला हुग्रा गोल या पहलदार भाग जिसमें बीच में बैठने ग्रादि के लिये थोड़ा सा स्थान होता है, बुर्ज कहलाता है। जोरों का शब्द या नाद ग्रारबा है।

चेतावनी (१३)—(१) हैवर = हय का विकृत रूप-घोड़ा; गैवर = गय का विकृत रूप-हाथी।

बडो सूर सांवंत द्रव्य सुख पूर है। अरि दल अमित अपार तास कूं चूर है।
हैवर गेंवर वाण देशपति साथ है। पर हां सुरतराम बिन राम बाद दिन जात है ॥११॥
केस श्याम कर कूंच श्वेत सिर आइया। हालन लाग्यो मूंड राम नहि गाइया॥
अब तो चेत अजाण करत जम घात है। पर हां सुरतराम बिन राम बाद दिन जात है ॥१२॥
नयन भरे बहु गीड़ नाक बहु सेडिया। बोले अटपट बचन मान मुह कंडिया॥
जम्म लडे सिर आय देत छित लात है। पर हां सुरतराम बिन राम बाद दिन जात है ॥१३॥
सुत वित चलै न लार मान नर मूरखा। देखत देखत जाय कोटि ज्यूं घूरि का॥
नाती नारि नाहि नाहि पितु मात है। पर हां सुरतराम बिन राम बाद दिन जात है ॥१४॥
अंतर मूंछा लाय कुमकुमा छरकते। मुख में बीड़ी खाय मित्र मिल हरखते॥
विधि विधि भोजन पात दाल घृत भात है। पर हां सुरतराम बिन राम बाद दिन जात है ॥१०३॥

उपदेश (१४)

पहले कर ले हेत भजन से प्रीत रे। काठो होय सुकाल न कोई जीत रे॥
अन्त काल की बार न आवे चिन्त रे। पर हां सुरतराम भज राम सदा निश्चिन्त रे ॥१॥
छाया माया दोय राम की बीर रे। मना कियां सूं नाहि कुवो गृह नीर रे।
छांट्यां बांट्यां बिना बिगड़ यह जावसी। पर हां सुरतराम कह सांच बहुरि नहि पावसी ॥२॥
रिधि जल ऊजल जान धर्म अरु छांटिया। बिगड़ जाय क्षण माहि, जमीं में दाटिया॥
जग में होय कुजस्स जस नहीं आवसी। पर हां सुरतराम कहै सांच, कदे नहीं पावसी ॥३॥१०६॥

जिज्ञासी (१५)

कर सदगुरु सूं प्रीति रीति तज जगत की। मुक्ति मार्ग ले हेर बाट तज कुगति की॥
तब पावेगो राम धाम सुख सार है। पर हां सुरतराम फिर जनम मरण नहीं धार है ॥१॥

---

(१३) छित = छाती।

(१४) 'धनानि भूमौ पशवो हि गोष्ठे नारी गृहद्वारि सखा श्मशाने। देहश्चितायां परलोक मार्गे धर्मानुगो गच्छति जीव एकः॥

(१५) अंतर = इत्र; कुमकुमा = गुलाबजल।

उपदेश (१४)—(२-३) छाया = शरीर; माया = दौलत। शरीर को परोपकार तथा धन को दानादि में न लगाने से इनकी गति निम्नगामी ही होगी। धन तथा जल को पृथिवी से सम्पृक्त कर देंगे तो निश्चय है कि गंदे हो जायेंगे अर्थात् उनका स्वरुप विकृत हो जायेगा। शरीर तथा धन को सांसारिक कामों में लगाने से उनका दुरुपयोग ही होगा।

जिज्ञासी (१५)—विवेक चूड़ामणि में आचार्य शंकर ने जिज्ञासु के बारे में इस प्रकार लिखा है-'विवेकि...

निश वासुर भज राम काम सबही सरे। मिले ब्रह्म में जाय काय फिर ना धरे॥
समता साँच संतोष दोष कोइ ना करे। पर हाँ सुरतराम वे दास, भूमि हो ना फिरे॥२॥
पांच पचीसूं जीति प्रीति गुरुदेव सूं। भजे एक रमतीत तजे नहीं रसन सूं॥
आसन संयम करे धरे मन धीर रे। पर हाँ सुरतराम तब खुले सुखमना सीर रे॥३॥
सुगरा सोही जाण बाण मन की तजे। सुमरे राम अखण्ड जगत सूं ना लजे॥
दिल में धारे बोध सोध ऐ सार रे। पर हाँ सुरतराम कहु साँच होय तब पार रे॥४॥
जिज्ञासी सो जान कान नही जगत की। माया सूं तज नेहु गही गति भक्ति की॥
सतगुरु सेती प्रीति राम नित गात है। पर हाँ सुरतराम वे जानि क सतगुरु साथ है॥१११॥

शूरातण (१६)

बडे शूर सावंत मेंडे चौगांन है। कर घोड़ा गुरु ज्ञान सेल कर ध्यान है॥
शील तणी समसेर भक्त रण जंग की। पर हाँ सुरतराम पड़ डाँकि खबर नहीं जिद की॥१॥
गये जिद कूं विसर विषय को नाश है। दीपक ज्ञान उजास शुद्ध परकाश है॥
निशदिन सुमरे पीव जीव हरि सूं लग्या। पर हाँ सुरतराम आनंद धंध सबही भग्या॥११३॥

विरक्तस्य शमादिगुणशालिनः। मुमुक्षोरेव हि ब्रह्मजिज्ञासा योग्यता मता॥१७॥ आदौ नित्यानित्यवस्तु विवेकः परिगण्यते। इहामुत्रफल भोग विरागस्तदनन्तरम्॥१६॥ शमादिषट्क सम्पत्तिर्मुमुक्षुत्वमिति स्फुटम्। ब्रह्म सत्यं जगन्मिथ्येत्येवरुपो विनिश्चयः॥२०॥ सोऽयं नित्यानित्यवस्तु विवेकः समुदाहृतः। तद्वैराग्यं जुगुप्सा या दर्शन श्रवणादिभिः॥२१॥ देहादिब्रह्मपर्यन्ते ह्यनित्ये भोगवस्तुनि। विरज्य विषय व्राताद्दोषदृष्ट्या मुहुर्मुहुः॥२२॥ स्वलक्ष्ये नियतावस्था मनसः शम उच्यते। विषयेभ्यः परावर्त्य स्थापनं स्वस्वगोलके॥२३॥ उभयेषामिन्द्रियाणां स दमः परिकीर्तितः। बाह्यानालम्बनं वृत्तेरेषोपरतिरुत्तमा॥२४॥ सहनं सर्वदुःखानामप्रतीकारपूर्वकम्। चिन्ताविलाप रहितं सा तितिक्षा निगद्यते॥२५॥ शास्त्रस्य गुरुवाक्यस्य सत्यबुद्ध्यवधारणम्। सा श्रद्धा कथिता सद्भिर्यया वस्तूपलभ्यते॥२६॥ सर्वदा स्थापनं बुद्धेः शुद्धे ब्रह्मणि सर्वथा। तत्समाधान मित्युक्तं न तु चित्तस्यलालनम्॥२७॥ अहंकारादिदेहान्तान्बन्धानज्ञान-कल्पितान्। स्वस्वरुपावबोधेनमोक्तुमिच्छा मुमुक्षुता॥२८॥ उक्त वर्णित साधन चतुष्टय का उल्लेख इन पाँचों चन्द्रायणों में हुआ है।

शूरातण (१६)—(१) शूर सावंत=शूरवीर सामंत–राजा के अधीन रहने वाला बड़ा सरदार सामंत कहलाता है; चौगान=रण क्षेत्र; गुरु का ज्ञान ही घोड़ा है; ध्यान ही लड़ने का अस्त्र भाला है; ब्रह्मचर्य ही तलवार–शमशेर है। भक्त को भक्ति के जंग में इन सद्गुणों से विभूषित होकर बिना जिंदगी की परवाह किये कूद पड़ना चाहिये। राम कृपा से सफलता स्वयमेव मिलती है। प्रायः सभी ने इस प्रकार के वर्णन किये हैं— 'सुन्दर शील सनाह कर, तोष दियो सिर टोप। ज्ञान खड़ग पुनि हाथ ले कीयो मन पर कोप॥२२॥' (सु० ग्र० ७४०) 'सुमरण सेल सम्हाय ढाल बिश्वास की। कमर कटारो ब्रह्म खड़ग [illegible]

विरक्त (१७)

पांच तत्व का महल जीभ है स्वाद रे। याकूं शीख्या होय सकल बीषाद रे।
पड्या स्वाद के माहि महा दुख खान जी। पर हाँ सुरतराम सब त्याग होय उनमान जी ॥१॥
अन इच्छा से असन लेय जन आप रे। भँवर वृत्ति कर भीख रहै नहीं पाप रे।
कर पातर ले पाय ध्याय रमतीत कूं। पर हाँ सुरतराम अवधूत धूत या तन्न कूं ॥२॥
तन पर बस्तर नाहि, हाथ में हुंडीया। पुर घर सूं रहे तर्क वृच्छ तल मंडीया।
सतगुरु को गहि ज्ञान मन्त्र कूं खंडिया। पर हाँ सुरतराम लवलीन देह नेह छंडिया ॥३॥
करो ताज गुरु ज्ञान ध्यान की सेलिया। झोली करो बिबेक भीख सत झेलिया।
निर्द्वन्द्वी नित रहै संच नहीं लेश की। पर हाँ सुरतराम जग फर्क दशा दर्वेश की ॥४॥
कर में फरवा फर्क गह्यो गल कंथ है। चले भिस्त की राह तज्यों भ्रम पंथ है।
त्याग तबल कूं कसी लाज या भेष की। पर हाँ सुरतराम जग फर्क दशा दर्वेश की ॥५॥
उनमन रहै उदास चपल बुधि नाहि रे। मैं मंता मन मगन गरक पद माहि रे।
ममता मार खुशाल चाह नहीं देश की। पर हाँ सुरतराम जग फर्क, दशा दर्वेश की ॥६॥

की ॥ कमठा कर गुरु ज्ञान शब्द सिर ठेल रे। पर हाँ काम क्रोध रिपु सकल प्रकुठा पेलि।
(अनु० चन्द्रा० शूरा०)

विरक्त (१७)—(१) उनमानजी = उनमुनी अवस्था धारण करले।

(२) भँवरवृत्ति = जिस प्रकार भौंरा इधर उधर घूम कर संचय न करता हुआ अपनी आवश्यकतानुसार भोग करता है उसी प्रकार विरक्त उदरपूर्ति निमित्त बस्ती में आकर अन्न भोजनादि मांग लावे तथा से अपना गुजारा चलावे। इसी को भँवरवृत्ति कहते है। असंग्रही वृत्ति की सीमा यही तक भिक्षा हाथ में मांगकर लावे तथा हाथों में ही खावे।

(३) 'अलाबुं दारुपात्रं च मृण्मयं वैदलं तथा। एतानि यतिपात्राणि मनुः स्वायम्भुवोऽब्रवीत् ॥ अनग्निरनिकेतः स्याद्ग्राममन्नार्थमाश्रयेत्। उपेक्षकोऽसङ्कुसुको मुनिर्भावसमाहितः ॥४३॥ (मनु० अ० ६)
(४) गुरु द्वारा प्रदत्त ज्ञान–'परमानंद स्वरूप तू, नहिं तो में दुख लेस। अज अविनाशी ब्रह्मचित्, जिन हिय क्लेस' (वि. सा. च. ३२) का कवच बनालो; ध्यान की माला, सत्यासत्य का निर्णयरूप की झोली, उसमें सत् चित् एवम् आनंद स्वरूप स्वस्वरूप की भिक्षा ग्रहण करे। निर्द्वन्द्वी रहे। तनिक भी नहीं करे। जगत् से उदासीन रहे। तब दर्वेश की दशा प्राप्त होगी।

(५) हाथ में फरवा=फिरने वाली माला तथा गले में कंथा धारण करे, दिव्य (भिश्त = स्वर्ग) रास्ते की ओर रहे, भ्रम–संसार से अपनत्व का रास्ता छोड़ दे, संसार में डंके की चोट–अर्थात् मान बड़ाई के चक्र को छो रहे, तथा उक्त प्रकार के स्वरूप की लाज रखे।

कोई देवे गार वन्दना को करे। नहीं मान अपमान शब्द सब काज रे॥
शीतल सदा गंभीर राम रस पेस की। पर हाँ सुरतराम जग फर्क दशा दर्वेश की ॥७॥
सब सूँ रहें फकीर पीर सब नरन के। सकल लोक में चाह आश सब सुरन के॥
कहा इन्द्र ब्रह्मादि लगन तेतीश की। पर हाँ सुरतराम जग फर्क दशा दर्वेश की ॥८॥

साधु लक्षण (१८)

गुरु की आज्ञा मान राम मुख सूँ कहै। निश्चय कर नित प्रीति और कहूँ ना बहै॥
तन मन धन अर्पण्ण चरण चित नित्त है। पर हाँ सुरतराम सब मिरे, परीक्षा अवित है ॥१॥
आरंभ ना कुछ होय, निरारंभ जानिये। जल पृथ्वी अब जान नहीं भ्रम मानिये॥
निर्वासी सो सत्य इन्द्र सुर चित नहीं। पर हाँ सुरतराम भज राम, परीक्षा ज्ञान ही ॥२॥
निर्मोही सो जानि देह से नेह नहीं। इन्द्रयाँ सूँ निर्बंध बंध सो ना कही॥
द्वेष दुनो नहीं शंक निशंकी जानिये। पर हाँ सुरतराम निर्वाण करटता मानिये ॥३॥
कहै सबन सूँ बात युक्ति पर मानिये। सर्व अंग सत मान ब्रह्म अब जानिये॥
सावधान नित रहै, त्रिया नहीं छलत है। पर हाँ सुरतराम सत सही झूँठ नहीं धरत है ॥४॥
नित प्रति रहै अयाच याचना ना करे। अन वंछी सो जान बंछ मन ना धरे॥
सोहि अमानी साधु न्योत माने नहीं। पर हाँ सुरतराम रहै सथिर, संतोषि सो सही ॥५॥
समता जान सुजान ममत कहूँ ना करें। सुहृद संत प्रमान कपट मन ना धरें॥
कहै मर्म के बचन क्रोध नहीं ऊपजे। पर हाँ सुरतराम सो सान्त तेज नहीं धूप है ॥६॥

कामीनर (१९)

कामणि काणी रांड कँकाली खात है। चंडी चूसे प्राण नाहीं अग्घात है।
कामी मृग नहीं बचे असल है बाघणा। पर हाँ सुरतराम मत धीज, हत्यारि कामणी ।.१॥

शब्दों को पचा जाये, सहन कर जाये।
(७) चाहे कोई कुछ भी क्यों न कहे सभी के ऊटपटांग

साधारणतया उसे ही कामीनर कहा जाता है।
कामीनर (१९)—जो प्राणी कामदेव के वशीभूत हो जाये, रति इसकी स्त्री, 'बसंत' इसका साथी
कामदेव स्त्री-पुरुष संयोग की प्रेरणा करने वाला देवता विशेष है। संमोहन, और स्तम्भन
तथा कोकिल इसका वाहन है। इसका शस्त्र धनुषबाण-उन्मादन, शोषण, तापन,
के पाँच शरों से युक्त है।

परिणामतः कुल का नाश हो गया॥
दशकंधर=रावण ने सीताजी को हरा, पराई स्त्री अपने घर में रखी, बिगाड़ सकता। तदर्थ
शिवजी ने एक बार पार्वतीजी से कहा कि मैं एक पत्नीव्रत हूँ। काम मेरा कुछ भी नहीं रूप लावण्य पर बिमोहित
पार्वतीजी ने शिवजी की परीक्षा लेनी चाही। भीलनी का रूप बनाया। शिवजी

दशकधर के बसी नाश कुल को कियो । शम्भू की गति भंग खंभ कीचक दियो ॥
सृंगी ऋषि तप तोड़ हेत कर कामणी । पर हाँ सुरतराम मत चीज, असी है कामणी ॥
कामणि कर्डी छुरी सकल अंग विष भरी । प्याला नयन बनाय, बचन मुख कर डरी ॥
घोले हेत उपाय पिवे सो मरत है । पर हाँ सुरतराम तन धार धार पुनि मरत है ॥
तिरिया को तन देख भंग चित होत है । तपो तेज किया जात वस्तु बुधि खोत है ॥
गुप्त मार सिर भार भ्रमत भग भामणी । पर हाँ सुरतराम मत चीज, भली नहीं कामणी ॥
नारी कूँ भय पुरुष पुरुष भय कामणी । जैसे अला मोर भंग होय दामणी ॥
वाद दामणि लीन वायु का संग है । पर हाँ सुरतराम संग काम मोक्ष का भंग है ॥

सांच (२०)

पुर घर कूँ तज जाय वास पर्वत करै । उदर भरत फल फूल ऊर्ध्व मुख तप करै ॥
पंच अग्नि मूँ तापि तरप नहीं जात है । पर हाँ सुरतराम भज राम ब्रह्म पद पात है ॥
तीन डंड सिर सहै गहै नहीं बसन कूँ । देह प्राप्त आधीन फिरै नही असन कूँ ॥
नगन मगन नित रहै, ब्रह्म सम जाप है । पर हाँ सुरतराम भज राम ब्रह्म पद पात है ॥
कोई मूक ह्वै रहै बात को करत है । को कथिहै थोथा ज्ञान, काज नहीं सरत है ।
को देवी को ध्यान रुद्र को ध्यात है । पर हाँ सुरतराम भज राम अमर पद पात है ॥

हो गये । शिवजी ने भीलनी को भागते हुऐ पकड़ने का प्रयास किया । अन्ततः शिवजी पार्वती पहचान गये । कामवासना ने शिवजी को भी डिगा दिया । कीचक, विराट राजा का था । कीचक ने द्रोपदी को उपपत्नी बनाने की कोशिश की । द्रोपदी ने भीमसे सारी बात कही भीम द्रोपदी के कपड़े पहनकर नृत्यशाला में कीचक की प्रतिक्षा करने लगा । कीचक द्रोपदी कथनानुसार नृत्यशाला में पहुँचा । भीम ने उसे मार कर मकान की छत तथा खंभे के बीच दबा दिया । (महा भा. विराट् पर्व) सृंगी ऋसि का प्रसंग रामचरितमानस में द्रष्टव्य है ।

(५) पुरुष को नारी का भय है । नारी को पुरुष का भय है । अर्थात् एक दूसरे को एक दूसरे का भय इससे सिद्ध हुआ कि संतों का लक्ष्य नारी निंदा करने का नहीं अपितु कामवासना की भर्त्सना करना कामवासना की भर्त्सना करते-करते संतों ने 'न रहे बांस न बजे बांसुरी' के अनुसार कामिनी पर ही प्रहार किया । वास्तविकता में उनका लक्ष्य काम का ही प्रतीकार करना है ।

सांच (२०) (१) ताप = तीन ताप-आधिभौतिक, आधिदैविक, आध्यात्मिक ।

(२) तीन दण्ड=तीन ऋतु, ग्रीष्म, वर्षा, शीत । असन=भोजन । बसन = वस्त्र ।

(३) 'सुरतराम भजराम अमर पद पात है ।' ध्रुव पद है ।

(१२)

सवैया संभाग

गुरुदेव (१)

प्रथम राम रमतीत जू, सदगुरु सबही संत । जन सुरतराम वंदन करे, बारम्बार अनंत ॥१॥

श्रीपरमहंस स्वामी के सवैया संभाग को देखने से ज्ञात होता है कि इन्होंने किसी छंद विशेष का प्रयोग नहीं करके मात्र २३ अथवा २४ वर्णों का प्रयोग 'सवैया' छंद में किया है । हाँ, प्रत्येक छंदान्त में दो गुरु ऽऽ का प्रयोग अवश्य किया है । वर्णों की संख्या नियत होने से इन्हें वर्णिक छंदान्तर्गत रख सकते हैं । श्रीभिखारीदासजी के शब्दों में इन्हें मुक्तक वर्णिक छंद कहना ही अधिक उपयुक्त होगा 'अक्षर की गिनती जहां, कहुँ कहुँ गुरु लघु नेम । बरण वंद ते ताहि कवि, मुक्तक कहैं सप्रेम ॥१॥' (छन्दार्णव पिंगल, पृष्ठांक ११७) इस स्थिति में प्रश्न खड़ा होता है, क्या श्रीपरमहंस स्वामी के 'सवैया' छंद-सवैया की कोटि में अन्तर्भुक्त नहीं है ? तब हम सुंदर ग्रंथावली के इस अंश को उद्धृत करके ही संतोष करेंगे । ''सवैया छंद के नाम और भेद 'प्राकृत पिंगल सूत्र' में बहुत दिये हैं अर्थात् वहाँ १०५ की संख्या है और 'रणपिंगल' में १०२ नामों और भेदों की संख्या है । दोनों का समीकरण करने से कोई २०० के करीब सवैया छंद के भेद वा नाम हो जाते हैं । इससे इस सरस सुंदर छंद का वैभव, विस्तार, प्रचार और प्राधान्य प्रकट होता है । **अनेक देशों में अनेक कवियों और पिंगलशास्त्र के आचार्यों में प्रथक् प्रथक् प्रचार रहने से इतने भेद वा नाम बन गये हैं ।**' इसी पृष्ठ के अन्तिम पेरे पर ''सबही छंदों के उच्चारण में लय प्रधान है । वैसे ही , सवैया छंद में भी लय का ध्यान रखना आवश्यक है । भगण, जगण, सगण आदि के गुरु लघु का निभाव जहाँ नहीं हो सकता हो वहाँ लय वा ढाल से ही काम चला लेना पड़ता है । जगन्नाथजी 'भानु' कवि ने (और उनके अनुसार बा० भगवानदीनजी ने) लय से छंद को ठीक कर लेने का विधान बताया है । जहाँ गण (भगण, जगण, सगणादि) ठीक करना हो वहाँ गुरु का लघु और लघु का गुरु उच्चारण में वा उच्चारण के निमित्त अवश्य बनाना चाहिये अथवा यों कहना चाहिये कि वैसे बन ही जाता है, तबही छंद उत्तम बोला जाता है ।'' (सुं० ग्रं० पृष्ठ १६७-१६८) इस समस्त विवेचन से हम इस निष्कर्ष पर पहुँचते हैं कि श्रीपरमहंस स्वामी ने २३ अथवा २४ वर्णों के साथ-साथ अंत में २ गुरु का प्रयोग ही सवैया छंद का लक्षण माना है । दृष्टव्य गुरुदेवांग । श्रीपरमहंस स्वामी ने २३ वर्णात्मक छन्दों में 'मत्तगयन्द' सवैया ही अधिकतर प्रयोग किया है । 'सात भगण कर पाँव प्रति, अंत सु द्वै गुरु देहु । तेइस अक्षर छंद करि मत्तगयंद सुएहु ॥५१६॥' (छंदपयोनिधि, पृष्ठांक १६६) विशेषतः दृष्टव्यसुमरणांग ।

गुरुदेवांग को सूक्ष्म दृष्ट्या देखने पर ज्ञात होता है कि प्रथम पद की प्रथम दो पंक्तियों में १ नगण ६ जगण एक लघु तथा दो दीर्घ का योग बना है । अन्त की दो पंक्तियों का कोई भी लक्षण निर्धारित नहीं हो पाता । वास्तविकता यह है कि हमारे पास ना तो 'रणपिंगल' ही और ना ही 'प्राकृत पिंगल सूत्र' उपलब्ध है जिनके आधार पर इस विभाग में प्रयुक्त छंदों के लक्षणों पर प्रकाश डालते । ऐसी स्थिति में, हम मौन ही रहना अधिक उपयुक्त समझेंगे । हाँ, एक बात और बता देना उपयुक्त होगा, वह यह कि इस विभाग में लेखन की त्रुटियाँ अधिक

ज्यूँ जान अनूपा ।
सुमरण शेष समाधि ज्यु शंकर दत्त को ज्ञान ज्यूँ जान अनूपा ।
कबिर ज्यु टेक गही इक नाम की भर्तृहरि ज्यु विराग के भूपा ॥
गोरख ज्यु उपदेश करै सत भरम पछोर ज्यूँ जानि क सूपा ।
सूरतराम ऐते लक्ष प्रापति रामचरणजी हैं हरि रूपा ॥१॥
गुरु मम शीश करी बकशीश दियो निज नाम रु भर्म गुमायो ।
करी जु सम्हार दया उर धार कर्यो उपदेश विराग दृढ़ायो ॥
राम सुरत फरक्क दुनि सेती हेत अहेत न मोह न भाया ।
सूरतराम इकन्त रहो नित ऐसो गुरुजी निज ध्यान बतायो ॥२॥
भिरंग बनै लटको फिरकै तब पूरा के हाथ परै पुनि सोई ।
लाय भुलाय गुफा मधि मेल के सरवण द्वार गुंजारस पोई ॥
वैराग को डंक दियो तन ऊपर डर लग्यो तब सुति समोई ।
सूरतराम बने मधु परगट ब्रह्म सुगंध लेवे खुशुबोई ॥३॥

सुमरण (२)

राम भजै रु दया नित पालत जालत कर्म अशुभ अंधेरो ।
कर्म करै शुभ राम अरप्पण शील समाय रु ज्ञान उजेरो ॥
संगति साधु करै मन अर्पि के मैल कटै जैसे दारुक मेरो ।
सूरतराम कहै समभाय तबहि मिटेजु चुरासी को फेरो ॥१॥

मिल सकती हैं जिसका कारण हमें इन छंदों के लक्षण स्पष्टतया उपलब्ध न होना है। हम इसके लिये क्षमा प्रार्थी हैं।

गुरुदेव (१)-(१) सूपा=सूप (छाजला) असंभावना तथा विपरीत भावना रुपी भ्रम-विपरीत ज्ञान को उडा देने के लिये श्रीस्वामीरामचरण महाप्रभु सूप स्वरूप है। 'साधु ऐसा चाहिये, जैसा सूप सुभाव। सार-सार को गहि रहे, थोथा देय उडाय ॥'(श्रीदादूवाणी)।

(३) मधु = भ्रमर। 'कीटी सूँ भृंगी करे, सदगुरु समरथ आप। सहै मार गुंजार की यों कहै राम परताप ॥६॥ परमगुरु सदगुरु मिल्या, रामचरण निज रूप। रामचरण ता पद शरण; सब सिख भये अनूप ॥७॥' (श्रीरामप्रताप वाणी, गुरुदेवांग)

सुमरण २-(१) संचित कर्मों की समाप्ति हेतु रामजी का भजन, प्रारब्ध को, भगवत्कृपा वा प्रसाद समझ कर भोग तथा क्रियमाण शुभ कार्य परमात्म समर्पण भाव से करे तो निश्चय ही ज्ञानोपलब्धि हो जायेगी। फलतः तत्वोपलब्धि-हस्तामलकवत् हो जायेगी। 'क्रीयमाण करिये नहीं, प्रारब्ध कर्म ले भोग। संचित ऊपर भजन कर यों छूटे भव रोग॥' (रामजन वाणी) ब्रह्म सूत्र 'तदधिगमे उत्तरपूर्वाघयोरश्लेष विनाशौ तद्व्यपदेशात् ।'(४।१।१३)

सूरज मङ्गल चन्द्र महा बुध शुक्कर राहु नहीं शनि नेरो।
छुद्र केतु न देव गुरू पुनि शक्ति को जोर कटे नहि मेरो॥
देव रु देवि करे नित वन्दन धन्य हृ धन्य ह राम सनेरो।
सूरतराम भज्यों इक राम कु विघ्न टले नहिं काल को घेरो॥२॥
रामहि ज्ञान रु रामहि ध्यान ह रामहि यज्ञ रु योग कमायो।
रामहि पाठ रु रामहि पूजन रामहि संध्या आरति गायो॥
रामहि दान रु पुण्य कियो पुनि रामहि तीरथ मांहि जु न्हायो।
सूरतराम कहो इक रामहि राम कह्यों सबको फल पायो॥३॥
भजिरे भजिरे इक राम निरंजन अञ्जण रूप नु छांड सबेरे।
तीन पदारथ जक्त सुवारथ मुक्ति सरूप सु यामें लभेरे॥
दुःख सरूप सबै मिट जावत जम्म का बाण कभी न लगे रे।
सूरतराम भजै इक राम कु माय असत्य सु दूर तजे रे॥४॥
राम को नाम लियां अति आनंद भागत भर्म रु कर्म कले रे।
पांच पच्चीस को जोर न लागत दाग सही ब्रह्म आग जगेरे॥
सुक्ल समाधि सु व्याधि न व्यापत, चंचल होय कभू न चलै रे।
सूरतराम जपै अठयाम सो निर्गुण होय रु मांहि मिलै रे॥५॥८॥

---

(२) ऐसा ही वर्णन श्रीस्वामी भगवानदासजी महाराज के एक पद में आता है। रामस्नेही संप्रदाय में इस भजन
को रामरक्षा स्तोत्र के समकक्ष आदर प्राप्त है। यदि किसी भूत प्रेतादि बाधा ग्रसित के हाथ में इसे लिख कर
बांध दिया जावे तो निश्चय ही वह उस बाधा से मुक्त हो जाता है। 'जो नर राम नाम लिख लावे। बांकू कोई
भय नहीं व्यापे विघ्न विलय हुय जावे ॥टेर॥ अगल बगल का छांड पसारा, मन विश्वास उपावे। सबंग सां
एक ही जाणे जो निर्भय गुण गावे ॥ १ ॥ राहु केतु अरु प्रेत शनीचर मंगल नहीं दुखावे। सूरज सोम गुरु अ
बुध ही शुक्र निकट नहीं आवे ॥ २ ॥भैंरु बीर विजासण डाकण नरसिंह दूर रहावे। दिशाशूल अरु भद्रा जा
सूंण कुसूंण विलावे ॥३॥ दिष्ट मुष्ट अरु मौत अकाली जम भी सीस नवावे। सबले शरणे निर्भय वासा भगवा
दास जन गावे ॥४॥'

(३) 'राम को नाम मुकट मेरे सिर ता उपमा बरणी नहि जावे। याहि में जोग जिज्ञादि तुला व्रत संजम नेम
सब आवे॥ याहि में तीरथ भेष सरूप सनातन धर्म युंहि संत गावे। होय कृपाल दियो गुरुदेवजी रामचरण
मन भावे॥' (अनुभव वाणी) 'महिमा जासु जान गणराऊ। प्रथम पूजियत नाम प्रभाऊ॥' (मा० १।१९।२)

(४) तीन पदार्थ = धर्म, अर्थ एवम् काम। मुक्ति का साक्षात् साधन सुमरण है। मुक्ति का स्वरूप दुःखों की नि
निवृत्ति तथा परमानन्द की प्राप्ति है। इक = सत (पाठांतर)। माय = माया। भजिरे, भजिरे के
पर भज्ज, भज्ज पाठ कर लेने से मत्तगयंद छंद के लक्षण सही बैठेंगे।

परिचय (३)

आनंद कंद अपार हु रामजि तासु को पार कहो कैसे पावे ।
शिव सनकादिक शेष रटत है वे भी अपार अपार बतावे ॥
गीता निगम भागोत पुकारत चार मुखां ब्रह्मादिक गावे ।
सूरतराम अते ब्रह्म पूरण ताहि समाहि के फेर न आवे ॥१॥
आवे न पाछो कभू फिरके कोई राम के माहि सो जाय समावे ।
नित ही नित ताहि अनंद मिले दुख द्वंद सो शोक कछू नहीं पावे ॥
ऐसो सद सुख मिले पुनि तासुं कूं दूसरी आस कछू नहीं चावे ।
सूरतराम मिले तब श्याम सूं सुंदरि छांड कहो कहां जावे ॥२॥
पत्नी मिल पीव आनंद भयो तब शोक संताप सबै दुख दूरो ।
शील श्रृङ्गार सो साज पिया संग सुमरण साज सो पहर्यो है चूरो ॥
दिल माहि दया करुणा कर काज रु सेवा सदा नित हो सुख पूरो ।
सूरतराम ये भूषण साज के ब्रह्म मिलो सब कामना चूरो ॥३॥११॥

साधु महिमा (४)

ज्ञान गरक्क फरक्क जगत्त सूं सोइ वे संत भले अविनाशी ।
सब तीरथ हैं उनके चरणां पुनि आस करत्त गंगा अरु काशी ॥
विचरें जग में कुइ जीवन के हित बात कहैं सु तो ब्रह्म विलासी ।
सूरतराम अराम मिले उन संतन को नित शीतहि पासी ॥१॥१२॥

विरक्त (५)

आतस लाग चलै मन चंचल ज्ञान रु ध्यान नहीं बन आवे ।
भोंडि उपाय करै कोइ साधु जो होय अकाज विराग लजावे ॥

परिचय-(३)—(१-२) गीता ८।२१ अव्यक्तोऽक्षर इत्युक्तस्तमाहुः परमां गतिम् । यं प्राप्य न निवर्त्तन्ते तद्धा म परम मम ॥'' **वेदांत** ४।४।२२ 'अनावृत्तिः शब्दादनावृत्तिः शब्दात्' **प्रश्नोपनिषद्** १।१ 'अथोत्तरेण तपसा ब्रह्मचर्येण श्रद्धया विद्ययाऽऽत्मानमान्विष्यादित्यमभिजयन्ते । तद्वै प्राणानामायतनमेतदमृतमभयमेतत्परायण-मेतस्मान्न पुनरावर्तन्त इत्येष निरोधस्तदेष श्लोकः ॥ **भागवत** २।२।३१ 'स वै पुनर्नेह निषज्जतेऽङ्ग ।

साधु महिमा (४)–द्वितीय एवम् तृतीय पाद में दो दो वर्ण अतिरिक्त है । प्रथम में 'सब' तथा द्वितीय में 'विचरैं' पद का 'विच- पद अतिरिक्त तो है किन्तु द्वितीय पाद का रे वर्ण निरर्थक हो जाता है तथा आगामी अर्थ में आपत्ति आती है । कुइ = कोई कोई आत्म जिज्ञासु के लिय विचरण करते है ।

भिक्षा करै पुनि सैहज आवत ग्रैसो जो उत्तम भोजन पावे।
सूरतराम सुवाद न चाहत आतम भाड़ो दे गोविन्द गावे ॥१॥
मांगत नांहि कभी मुख सूं पुनि अंतस आस नहीं जग केरी।
टूकड़ मांग के पेट भरै पुनि कंथा के बीनि लगावत लेरी॥
बैठ गुफा मधि ध्यान लगावत मन्न कु त्याय के घरं में घेरी।
सूरतराम ए रीति बने तब जान मुकुत्ति की लाधी ह शेरी ॥२॥
जागत नित्त रहै जग में भग में पुनि ब्होरि कभी नहि आवे।
ब्रह्म समाधि सु व्याधि टलै सब राम भजन्न सु काल न खावे॥
आश करै न धरै कोइ संचित सोहि फकीर फरक्क रहावे।
सूरतराम मिटै जु अकाल अलक्ख अतीत तबैहि मिलावे ॥३॥१५॥

स्वरूप धारण (६)

गूदड़ि ज्ञान भजन्न सनान सो मज्जन मन्न को मेल मिटावे।
जत्त की कोपि सो वोपि भले तन भर्म कु जाल भभूति उडावे॥
तत्त तिलक्क लिलाट दिये तब चोलो सो चित्त की चिन्त मिटावे।
सूरतराम विचार कही सति ग्रैसो सरूप मेरे मन भावे ॥१॥१६॥

विरक्त (५)–(१) आतस = चाह की अग्नि; सैहज = सहज।
(२) अंतस = हृदय; टूकड़ = रोटियां–भोजन; बीनि = इधर–उधर पड़े हुए फटे पुराने कपड़ों (लीरियों) को उठा कर कंथा में पेवन्द लगाते हैं; लाधी = प्राप्त हो गई है।

(२) भग = आवागमन के चक्र हेतु किसी की भी कुक्षी में न आवे। ब्होरि = पुनः।

स्वरूप धारण (६)–'तत्त सो तिलक पतिव्रत्त की छाप है सदगुरु दस्त का टोप राजे। राम गुण श्रवण जो सरवणी सरवणां मुक्ति मणि भजन दामा बिराजे॥ मेखला शील संतोष सब मातरा महर के मुकुर दिखाय सारा। रामहीचरण ऐ भेख हमकूं दिया मुही निज सन्त है मित म्हारा ॥३॥ (अनु०) 'अवधू फकत फकीरी पाई। मन उलटाय मनी कूं मारे टारे ममता माई॥ जत कोपीन मतंगा सतका ततका तिलक लगाई। तसबी भजन अकल की झोली प्रेम पात्र में पाई ॥१॥ धूणी ध्यान ज्ञान की कफनी जुक्ति सरबणी साई। दया धर्म को चोलो पहरे, शील टोप सिर लाई ॥२॥ भू पर्यंक भुजा के गद्दा तम्बु नभै तनाई। बिछना पवन बिछायत तन की ज्योति चंद्रास सवाई ॥३॥ फिकर फाक फरक रहैं जग सूं भग सूं प्रीत न काई। निशिवासीक निमाणां जोगी अहनिशि पलख जगाई ॥४॥ अणभै रस पीवे नित ध्यावे हंस सूंज छकाई ॥५॥' रामलोचन' धन धन बे ग्रोलिया जिन या वृत्ति समाई। (श्रीरामलोचन वाणी) इन उद्धरणों से स्पष्ट है कि निर्गुण साधु के कोई भी बाह्य चिन्ह नहीं होते।

बिचार (७)

सिलता मिल के दरियाव समावत सिंधु मिल्यां पुनि द्वैत न कोई।
ताव लग्या सेति पालो गलै तब नीर भया नहि दूसर होई।
जैसे बघूरा की आंटि खुले तब वायु मिले अपने पद सोई।
सूरतराम भज्या इक रामकु जीव रु ब्रह्म नहीं भिन वोई ॥१॥१७॥

शुद्ध ज्ञान (८)

'हूं' अरु 'तूं' तो अग्यान की बात है ज्ञान स्वरूप में 'हूं' है न 'तूं' है।
'मेरि' रु 'तेरि' कछु नहि दीसत 'मेरी' रु 'तेरि' तो मूढ गिनूं है॥
मोहि में राम रु राम सकल्ल में असो जो जाने तो कासो किनूं है।
सूरतराम सदा सुख धामहि नीका निहार सो खोटो तनूं है॥१॥
देह बिह्लार सकल्ल हि झूंठ है होय बिदेह विदेह बिचारो।
तीन गुणा अरु तत्त्वहु पांच में राम निरंजण है इन न्यारो॥
ररो ममो दुइ अक्षर है तत बेद को मूल रु संतन प्यारो।
सूरतराम भज्यां हुय पार सो छांड के और सदा सिर धारो॥२॥
धारिअ धारिअ राम अपार कुं डारिय भार सबै भ्रम झूंठा।
चालिअ चालिअ रामजि के पथ छांड संसार कुं होय अपूठा॥
संगति सार मिले पुनि तासु कुं जासु कुं जान के रामजि तूठा,
सूरतराम एही सत ज्ञान है सेवक स्वामि रु होय इकूठा॥३॥
आतम सुक्ख भयो तब प्रापति और सबै सुख लागत खारा।
खुशी होय बोले खुशी होय चालत होय हवाल हवाल ही प्यारा।
खावन पीवन बैठन ऊठन सोवत आसन ऐकहि धारा।
सूरतराम जू असो हवाल सो जाको तो जीवन मुक्ति संचारा॥४॥२१॥

बिचार (७)-जीव एवम् ब्रह्म दोनों की पारमार्थिक सत्ता एक है। मात्र व्यवहार में ही पृथक् पृथक् दिखते हैं। जिस प्रकार सरिता समुद्र में मिलकर, पाला ताप से तपित होकर जलरूप में परिणत होकर तथा चक्रवात वायु में परिणित होकर अपना पृथक् पृथक् अस्तित्व खो बैठते हैं उसी प्रकार जीव ज्ञानोपरान्त अपनी कल्पित पृथक् सत्ता को खो बैठता है।

शुद्ध ज्ञान (८)-ज्ञान और अज्ञान का कितना सुन्दर तरीके से पृथकीकरण किया है। मैं; तूं, वह आदि जो भी कुछ है वह सब उपाधि है। मिथ्या है। कल्पित है। अज्ञान है। सब मेरा ही स्वरूप है। सभी में मैं ही समाया हुआ हूँ। यही ज्ञान है। इसको श्रीमहाराज कितने सुन्दर तरीके से समझाते हैं-'ध्यानै उपाधि सो बाद करो इक राम निरञ्जण ध्याइयेजी। याही ध्यान में ज्ञान अपार खुले निज घर्र कूं तब्बही पाइयेजी॥ उस घर्र में डर्र नहीं

आपाअर्पण (९)

धन ही धन है जग में जिन तन्न मन्न धनहू रामकूँ दीना ।
निर्मल नैन सुबैन जु शीतल क्रोध कुँ मार पछार भरीना ॥
सब निर्वैर करे नित खैर धरे पद देख दया चित चीना ।
सूरतराम तजे जु हराम हलाल को खाय पिलाय अमीना ॥९॥२३॥

सारग्राही (१०)

ज्ञान के नैन प्रकाश भयो तब अग्य अँधार सबैहि मिटाई ।
पारख सार असार भई अब तत्त्व कुँ लेय अतत्त्व बुहाई ॥
संयम शील दया दृढ़ पालत राम भजन्न सुँ काल मिटाई ।
सूरतराम ए रीति बणे तब तासु कुँ रामजी बेग मिलाई ॥१॥
कोई अड़े तुम पक्ष बँधे सु तो साँच की पक्ष को दोष न कोई ।
आतम रत्त सुँ प्यार करत्त है माया रु भर्म नहीं हम चाई ॥
सार कुँ लेत असार न छींवत असो जो संत मेरे मन भाई ।
सूरतराम भजे अठ याम सो जाहि की में तो रहूँ सरणाई ॥२॥२४॥

जमराव को आतम ब्रह्म मिलाइयेजी । जन रामचरण भजन्न करो जल लहर ज्यों उलट समाइयेजी ॥१॥

(१) आत्मा आनन्द स्वरूप है । आत्मज्ञान होते ही, आनंद ही आनद की अनुभूति होती है । तत्पश्चात् सांसारि
विषय सुख तुच्छ लगने लगते हैं ।

आपाअर्पन (९)–जिन्होंने अपना सर्वस्व प्रभु के अर्पण कर दिया, वे धन्य हैं । वे काम क्रोधादि रिपुओं
मार चुके होते हैं । वे सदैव हलाल–धर्म युक्त उचित और विहित साधनों द्वारा कमाये गये धन से प्राप्त साम
का ही उपयोग करते हैं । हराम=धर्म वर्जित तरीके द्वारा कमाये गये धन से प्राप्त सामग्री का उपभोग क
तो दूर उसकी ओर झाँकते भी नहीं हैं । वे सदैव राम नाम रूपी अमृत का पान करते रहते हैं तथा जिज्ञासु
से करवाते रहते हैं ।

सारग्राही (१०)–(२) 'षट्दर्शन हम सोधिया, पख का मुहकम बंध । रामचरण हरि भक्ति बिनु, सबै
का फंद ॥३॥' (अनु० चाणक) में पक्षपात वाद पर गहरा आघात है । श्रीपरमहंस स्वामी से किसी ने
किया कि आप बात तो निर्पक्षी जैसी करते हैं किन्तु बँधे हुए हैं, एक निश्चित चिंतन धारा से । निर्गु
मंडण, सगुण का खण्डन, बाह्याचार का खण्डन, आन्तर शुद्धि पर बल आदि विचार एक पक्षीय जैसे ल
तब श्रीपरमहंस स्वामी ने जो उत्तर दिया वही इसमें निबद्ध है । वे कहते हैं कि शास्त्र सम्मत सत्य
झुकाव पक्षपात नहीं है, बल्कि यथार्थ का कथन है ।

विश्वास (११)

निचिन्त रहै मत चिन्त करै नर चिन्त कियाँ का काज सरेगो ।
राम भज्याँ मुँ मुकति मिलै तो असन्न वसन्न ए दोय न देगो ॥
रे मति हीन रखो विसवासहि राम बिना कहा हाथ लगेगो ।
सूरतराम भोलो नहि रामजि चाकरि माफिक सो भर देगो ॥१॥२५॥

रामबिमुख (१२)

व्याप संसार बिहाल फिरे मूढ़ राम भजै न सजै क्रम चोखो ।
पाप करै अरु पुन्य न जानत चाह बिषै की लगी तन पोखो ॥
झूँठ कपट्ट पाखंड करै मल नाहि मिटै दिल को पुनि धोखो ।
सूरतराम असे पापि पाँवर ताहि तजो तहखाना को मोखो ॥१॥ २६॥

काल (१३)

काल करूर हजूर खड़ो नित मारत है नहि ढील घड़ी की ।
रावत राणा अमीर कहा सु तो कोइ बचे नहि देह धरी की ॥
ब्रह्मा कुँ मार करै चक चूरन इन्द्र कुँ मारत बाज चिरी की ।
सूरतराम बचै तबही नर नाम जपे निर्वाण हरी की ॥१॥२७॥

विश्वास (११) श्रीपरमहंस स्वामी साधक से प्रश्न कर रहे है कि जो परमात्मा राम नाम स्मरण करने से मुक्ति जैसी दुर्लभ वस्तु दे सकता है तो क्या वह भोजन वस्त्र की व्यवस्था नहीं करेगा ? अवश्य करेगा। साधक को परमात्मा के विश्वास पर निश्चिन्त रहना चाहिये । भगवान श्रीकृष्ण कहते हैं–'योगक्षेमम् वहाम्यहम्' ।

रामबिमुख (१२)–तहखाना को मोखो = तहखाना, जाजरु, शौचालय या सण्डास का मोखा, मुँह अर्थात् अत्यंत गंदी जगह ।

काल (१३)–ब्रह्मा की आयु का परिमाण इस प्रकार मानना चाहिये । ४३,२०,००० वर्ष का एक दिव्य युग होता है । ऐसे हजार दिव्य युगों का ब्रह्मा का एक दिन होता है और इतने ही समय की रात्रि होती । ब्रह्मा के दिन को कल्प तथा रात्रि को प्रलय कहते हैं । ऐसे दिन रातों की गणना करते हुए १०० वर्ष की आयु ब्रह्मा की है । इन्द्र की आयु का परिमाण इस प्रकार मानना चाहिये । एक कल्प में चौदह मनु होते हैं । प्रत्येक मनु इकहत्तर चतुर्युगी से कुछ अधिक काल (७१/६/१६ चतुर्युगी) तक अपना अधिकार भोगता है । प्रत्येक मन्वन्तर में भिन्न-भिन्न मनुवंशी राजा-लोग; सप्तर्षि, देवगण, इन्द्र और उनके अनुयायी गन्धर्वादि साथ-साथ ही अपना अधिकार भोगते है । (श्रीमद्भा० ३।११:२२ से २४ तक)

चेतावनी (१४)

पितु मातु कहा धन धाम धरा सब छांडि चले जैसे जान बटाऊ।
बंधु न भाइ नहीं कुल कोइ जु बार मिलासी नहीं सँचि काऊ॥
करें बहु प्रीति जु स्वारथ रीति सु मींचत आँख नहीं कोउ पाऊँ।
सूरतराम सबै ठग दीसत राम सगो सुहि नित्तहि गाऊँ॥१॥
प्रीति लगी इक माया सु तासु की नाम सु मग्न कभो नहि लावे।
झूठहि झूठ बके निशिवासर गोविन्द का गुन का हित गावे॥
आठहि याम निकाम गई लइ पाप की पोटरि शीश चढावे।
सूरतराम असे बिइमान सो जम्म के द्वार धकाधक खावे॥२॥
अरे नर बहरे दियो जाय दै रे नहीं कोई तेरे भयो नर भोरे।
राम कहै रे डिगै शिर तेरे जमू आय घेरे नहीं कोइ तेरे॥
नारि न नाति हूँ जाति न पाँति नहीं सुत माँति सबै मुख मोरे।
सूरतराम करो असो काम रहै कलि नाम हुँ राम मिलो रे॥३॥
राम भज्यो न सज्यो कोइ सुकृत पूरन आयु भई सब तेरी।
संगति साधु बणी न कभू नर आँख अग्यान की बाँधि अँधेरी॥
काल अचानक आय लियो तब भागण कूँ नहि पावत सेरी।
सूरतराम सुणो सबही तुम आपको आप भयो मुढ वैरी॥४॥
माया की दौड़ उपाय करे नर भाग बिना कोइ नाहि बचेगो।
आश की फाँसि बँध्यो सठ मूरख हाथ नहीं कुछ खाड़ खड़ेगो॥
राम भजन्न बिना बंध कूटत आयु घट्यां सिर फोड़ चलेगो।
सूरतराम दिवानो हि गावत संगि नहीं कुछ यूँहि बहेगो॥५॥३२॥

सांच (१५)

कोइक तीरथ न्हावत डोलत कोइ एकादशि म्हातम गावे।
कोइक देह हिमालेहि गालत कोइ केदार को कांकण लावे॥

चेतावनी (१४)—(१) इसकी प्रथम पंक्ति में 'पितु' पद अतिरिक्त है। तृतीय पंक्ति में 'करें' पद का 'क' अतिरिक्त वर्ण है।

(३) प्रथम पंक्ति में दो वर्ण अधिक है।

कोइक भैरहि झाँपज लेवत कोइक शिष्य कु शीश चढ़ावे ।
सूरतराम भोला नर डोलत आप खोज्या बिनु पार न पावे ॥१॥
कोइक पंच अगन्नि हि तापत कोइक धूमर पान भुलावे ।
कोइक शीश उघाड़ हि डोलत कोइक जट्टा भभूत चढ़ावे ॥
कोइक विद्या हि वेद पढावत कोइक गीता को पाठ करावे ।
सूरतराम भोला नर डोलत आप खोज्या बिनु पार न पावे ॥२॥
कोइक मुंडे हि पाटिहि बाँधत धोवण धावण जल्ल पिलावे ।
कोइक लूंचन केश करावत कोइ दिगम्बरि त्याग जणावे ॥
कोइक देश दिशंतर डोलत कोइक बारहि धाम जगावे ।
सूरतराम भोला नर डोलत आप खोज्यां बिनु पार न पावे ॥३॥
कोइक बेलाहि तेलाहि साधत कोइ चन्द्रायन बर्त्त करावे ।
कोइक दुर्गा को पाठ करावत कोइ मृत्तिका शिवहि बणावे ॥
कोइक होमहि यग्य करावत कोइ चक्रवति पंथ चलावे ।
सूरतराम भोला नर डोलत आप खोज्यां बिनु पार न पावे ॥४॥
कोइ विरक्कत त्याग जनावत कोइक गूदड़ भेष बनावे ।
कोइक डील उघाड़ हि डोलत कोइक ग्रीषम तप्प करावे ॥
कोइक कूंडाहि मत्त चलावत होय के भ्रष्टहि कम कमावे ।
सूरतराम भोला नर डोलत आप खोज्यां बिनु पार न पावे ॥५॥
कोइक जंतर मंतर साधत कोइक सागि जो बीर चलावे ।
कोइक नाटक चेटक सीखत कोइक भर्मी जो भर्म दृढ़ावे ॥

सांच (१५)–(३) मुंह पर पट्टी बाँधने की परम्परा जैन समाज में है जिसे 'मुंहपत्ती' कहा जाता है। केशों को अपने हाथों से ही उखाड़-उखाड़ कर फेंकने की क्रिया लुंचन क्रिया कहलाती है; जिसका भी प्रचलन जैन साधु समाज में ही है। जिनकी दिशाएं ही अम्बर है, वे दिगम्बर कहलाते हैं। उदाहरणार्थ दत्तात्रेयजी दिगम्बर ही रहते थे।

(४) बेला तेला–जैन समाज में प्रचलित व्रत करने की विधियाँ विशेष। बेला में एक दिन छोड़कर एक दिन भोजन किया जाता है जबकि तेला में दो दिन छोड़कर एक दिन भोजन किया जाता है। चांद्रायण व्रत के बारे में याज्ञवल्क्य स्मृतिकार लिखते हैं—'तिथिवृद्ध्याचरेत् पिण्डान् शुक्ले शिख्यण्डसंम्मितान्। एकैकंह्रासं कृष्णे पिण्डं चान्द्रायणम् चरेत्'। मृत्तिका शिव = पारद शिव लिंग बनाकर उसकी पूजा करना। श्रीराम ने समुद्र पर पुल बनाने से पूर्व शिव का पारदलिंग ही बनाकर उसका पूजन किया था।

(५) कूंडापंथ = दक्षिण भारत में चलने वाला सम्प्रदाय विशेष। इसमें पंच 'मकार' के उपयोग का विशेष प्रचलन रहा है। यह तांत्रिक शाक्त संप्रदाय भी कहलाता है।

कोइक नोलिहि कर्म जु साधत कोइक कुंजर क्रिया बतावे।
सूरतराम भोला नर डोलत श्राप खोज्यां बिनु पार न पावे ॥६॥३८॥

भेष (१६)

साधुहि आवत काल ज छावत देखत नैन सुं मूंड गडावे।
जक्त मिल्या सुंहि श्रानंद होवत होय खुसी रु महा गुन गावे ॥
जक्त रिझावत मुक्ति कुं चाहत राम जना सुंहि नेहु न ल्यावे।
सूरतराम रिझे नहि रामजि बूर के लड्डू ज्युं भक्ति चलावे ॥१॥
श्रैसे बिड्मान गुलाम हुलाम हैं तासु की बुद्धि में शुद्धि न कोई।
राम तजे श्ररु दाम भजे सुणि सांग कछ्यो जैसे रावल भोई ॥
सेवक जाट रु मालि किया सठ खेत खले दुखही दुःख रोई।
सूरतराम ए राम सुं बेमुख श्रागलि पाछलि दोन्यु हि खोई ॥२॥४०॥

---

(६) नौली=श्रमंद श्रावर्त्त के वेग से अपने उदर को दांये बांये भागों में भ्रमावे; इसी प्रक्रिया को विद्वान् नौलि-कर्म कहते है। 'श्रमंदावर्त वेगेन तुंदम् सव्यापसव्यतः। नतांसो भ्रामयेदेषा नौलिः सिद्धैः प्रचक्षते ॥ (हठयोग प्र० २।३३) कुंजर—श्रपानवायु को ऊपर कण्ठ नाल में पहुंचा कर उदर में गये हुवे पदार्थ का उद्गमन करते है, उसके क्रमपूर्वक श्रभ्यास से नाड़ी समूह का वशीभूत होना; हठयोग के विज्ञ श्राचार्यों के मत में 'गजकरनी' कहलाता है। ''उदरगत पदार्थमुद्वमंति पवनमपानमुदीर्य कंठनाले। क्रम परिचयवश्य नाडिचका गजकरणीति निगद्यते हठज्ञैः ॥ (हठयोग प्रदि० २।३८)।

(८३)

झूलणा संमाग

गुरुदेव (१)

प्रथम राम रमतीत जू सदगुरु सबही संत ।
जन सुरतराम बन्दन करे बारम्बार अनंत ॥१॥
गुरुदेव दयालु मिले हम कूँ निज रामहि राम बतावता है ।
या जग झूँठा सो तज प्यारे सब भरम कूँ दूर उड़ावता है ॥
अैसा गुरुदेव मिले नहीं मूरख भवन चौदा फिर आवता है ।
जन सुरतराम भजे निति राम कूँ अैसा गुरुदेव सो पावता है ॥१॥

नाम सामर्थ्य (२)

राम कह्यां जम जोर न लागत वेद रु संत सो गावता है ।
या जग मूरख भूल गया बिनु राम कह्या दुख पावता है ॥
शब्द रु वेद बाँचि निति रोज का आपहि जाण न गावता है ।
जन सूरतराम बिचार कहै कोइ बाँचिया मुक्ति न पावता है ॥१॥२॥

झूलना—भिखारीदासजी वर्णिक झूलना का लक्षण बताते हुये छंदार्णव पिंगल के१४वें तरंग में लिखते है– 'कहुँ सगण कहुँ जगण है चौबिस वरण प्रमाण । गुरु द्वै राखि तुकंत में वरण झूल्लना' ठान ॥१०॥' झूलना मात्रिक तथा वर्णिक-दोनों प्रकार का होता है। मात्रिक झूलना–३७ मात्रा (१०+१०+१०+७) का, उ. झूलना ३८ मात्रा का, सुझूलना ३९ मात्रा का, अतिझूलना ४० मात्रा का; वृत्तमुक्तावली के आधार पर ४ प्रकार के है। अन्यान्य पिंगल छंद ग्रन्थों में और भेद भी मिल सकते हैं। जैसा कि सुन्दर ग्रन्थावली के सम्पादक पुरोहित श्रीहरिनारायणजी ने पृष्ठांक २६७ पर लिखा है। पुरोहितजी शुद्ध झूलना – 'कहीं सगण, कहीं जगण, २४ मात्रा तथा दो गुरु अन्त में' लक्षण वाले को ही मानते है। श्रीपरमहंस स्वामी ने गुरुदेवांग तथा नाम माहात्म्यांग में इसी 'वर्ण झूलना' छंद को प्रयोग किया है। नाम सामर्थ्यांग, विचारांग तथा कालांग में सवैया छंद के भेद 'मदिरा-सवैया' का प्रयोग किया है। मदिरा का लक्षण लिखते हुऐ छंद पयोनिधिकार श्रीहरदेवदासजी ने 'सात भगण कर पाँव प्रति, अंत एक गुरु आन । । धर इम बाइस वर्ण सो छंद मदिरा जान ॥५१२॥' बताया है।

(२) तुलनीय—'धन शरणो महाराज को जम को लगै न दाव। बाड़ रावरि तोड़ के आघा धरे न पाँव ॥ आघा धरे न पाँव खड़ा ही दूर निहारे। भक्ति बिना तिहुँ लोक काल के सबही सारे ॥ रामचरण ऐ संत जन रामतणा अमराव। धन शरणो महाराज को जम को लगे न दाव ॥१६॥'' ''राम नाम दरियाव है दूजा छीलर जाण। जहाँ काल की गम नहीं नहिं कोइ खेंचा ताण ॥ नहिं कोइ खेंचा ताण कीर का जोर न लागे। समद अथग जल पूर ताहि कहो कैसे थागे ॥ रामचरण सुख पाइया, मिटी भरम की बाण। राम नाम दरियाव है दूजा छीलर जाण ॥२॥ (अनु. कु. गुरुदेवांग तथा सुमरणांग)

84

नाम माहात्म्य (३)

विस्तार तरुवर अनेक बण्या करतार का पार न पावता है।
सनकादिक नारद शेष रटे ध्रुव ध्यान वैकुंठ लगावता है॥
मृत्यु ही लोक विचार देखो शंकर संत अनंत सो गावता है।
जन सूरतराम असा करतार सो पार कोइ नही पावता है॥१॥३॥

विचार (४)

आप विचार करें नहि मूरख और कहाँ अड़ जावता है।
झूंठ हि झूंठ में दौंत घिसे पर ओटा कदे नहि आवता है॥
साधु दयालु बजाय कहै सो तो आप की टेक रखावता है।
जन सूरतराम कपट्ट जक्त बन्ध्या जम्मपुरी सुहि जावता है॥१॥
या जग झूंठ सो झूंठ भजे नहि साँच बिना दुख पावता है।
आनहि देव पुजत फिरे निज नाम कुं तो नहि गावता है॥
साधुहि संत विचार कहै जग झूंठ सो झूंठ बतावता है।
जन सूरतराम सेवे नर आन कुं जम द्वार बंध्या सोहि जावता है॥२॥
गाय का दूध रु आंक का दूध सो एक ही रंग दिखावता है।
साधु असाधु कूं एक गिणे जग मूरख भेद न पावता है॥
बुग रु हंस कूं एक कहै कोइ हंस की चाल चलावता है।
जन सूरतराम अनड़ड़ जगत्त विचार बिना सोही गावता है॥३॥६॥

काल (५)

रे नर मूरख चेत बेगा पल माहि सो काल उडावता है।
तीनहीं लोक की कौंन चली ब्रह्मा विष्णु कूं जाय सो खावता है॥
तू दिन रैंन भजे नहीं राम कूं राम बिना दुख पावता है।
जन सूरतराम अकाल भया नित ब्रह्म सूं ध्यान लगावता है॥१॥७॥

---

(३) 'राम अतर्क्य बुद्धि मन मानी। मत हमार अस सुनहि सयानी॥' (मा. बा. १२१/२)

इस श्रुति कथन से जगत् मिथ्या होते हुए भी हमें सत्य
(४-५-६) 'ब्रह्म सत्य जगन्मिथ्या जीव ब्रह्मैव नापरः।' मात्र धवलता के कारण नहीं कर पा रहे है, यही
भास रहा है। हम गाय के दूध तथा आंक के दूध का पार्थक्य गीता १५/३ में लिखा है—'नरूपमस्येह
हमारा भ्रम है। इस भ्रम का छेदन करना ही सर्व शास्त्रों का लक्ष्य है। अश्वत्थमेनं सुविरूढ मूल मसंग शस्त्रेण दृढेन छित्वा।' भगवान्
तथोपलभ्यते नान्तो न चादिर्न च संप्रतिष्ठा। कारिकांक २/६ में लिखते है—'आदावन्ते च यन्नास्ति वर्तमानोऽपि तत्तथा।
गौडपादाचार्य माण्डूक्योपनिषद् इत्यादि कथन से जगत् का मिथ्यात्व ही सिद्ध होता है।
वितथैः सदृशाः सन्तोऽवितथा इव लक्षिता॥'

कवित संभाग

गुरुदेव !(१)

जन सुरतराम वन्दन करे, बारम्बार अनंत ॥१॥
प्रथम राम रमतीत जू सदगुरु सबही संत । जन सुरतराम वन्दन करे, बारम्बार अनंत ॥१॥
सदगुरुजी के चरण परसता मिटे अज्ञाना । ज्ञान प्रकट ततकाल सही सू ऊगे भाना ॥।
लित चरणामृत लेत कर्म सब भर्म बिलाई । पदरज परसत समय राम की रटन लगाई ॥
ज्ञान भक्ति वैराग्य है रामचरण के दर्श में । जन सुरतराम साँची कहै फेर न आवे नर्क में ॥१॥

स्मरण (२)

लियां राम को नाम सर्व विघ्नन को नाशा । सद सुख आनंद नित्य काल की पड़ै न पाशा ॥
रिख जख नव ग्रह विघ्न न कोई पास न आवे । अत्यादिक सब देव सेव सबही ज करावे ॥

कवित्त—'स्वामी रामचरण: जीवनी एवं कृतियों का अध्ययन' के लेखक डॉ० माधवप्रसाद पाण्डेय कवित्त छंद के बारे में पृष्ठांक ४६१ पर लिखते हैं 'छंद प्रभाकर में भानुजी ने मनहर या मनहरण का पर्याय कवित्त को लिखा है । मनहर ३१ वर्ण का छंद होता है । इसकी चर्चा पीछे हो चुकी है । स्वामीजी का कवित्त मनहर नहीं है । इसके लक्षणों का कोई दूसरा छंद भी नहीं मिलता ।' डॉ० पाण्डेय का यह कथन सर्वथा अशुद्ध है। राजस्थानी पद्य साहित्य में 'छप्पय' छंद को ही 'कवित्त' लिखा, पढ़ा एवं समझा जाता रहा है । इसका उदाहरण चारण किसनाजी आढ़ा कृत 'विरद रघवरजस प्रकास' ग्रन्थ में मिलता है । इस ग्रन्थ में सर्वत्र छप्पय को 'कवित्त छप्पय' लिखा गया है । दूसरा उदाहरण 'राजस्थानी हस्तलिखित ग्रन्थ सूची भाग १' के पृष्ठ १४१ पर मिलता है । ग्रन्थांक ४६०१ हमीररासो का प्रारम्भ कवित्त छंद से होता है । छन्द का नाम कवित्त लिखा गया है किन्तु लक्षण छप्पय छंद के हैं । अतः सिद्ध है कि राजस्थान में छप्पय तथा कवित्त को अभिन्न माना है। रामस्नेही अनुभववाणी साहित्य में इसी कवित्त छंद का एक और भेद 'कवित्तमालको' मिलता है । इसमें प्रथम पंक्ति तथा अन्तिम पंक्ति समान होती हैं । कुल पंक्ति ७ होती हैं । नाभाजी ने भक्तमाल में, भक्तों के नाम प्रथम पंक्ति में ही पता लग जाये, के उद्देश्य से संभवत: इस पद्धति को अपनाया होगा । उसी की नकल पर, सम्पूर्ण कवित्त का वर्ण्य विषय प्रथम पंक्ति के पढ़ने मात्र से मालूम हो जाये; रामस्नेही संतों ने इस छंद का नाम 'कवित्त भक्तमालको' या 'कवित्तमालको' रखा । किसी किसी ने इसको धुरमेल कवित्त भी कहा है । उक्त रघवरजस प्रकास में कवित्त के ७१ भेदों के नाम गिनाकर २२ भेदों को सोदाहरण समझाया है । कवित्त के लक्षण इस प्रकार बताये हैं—'कावय उल्लालो मिले छप्पय तिण थल होय । ग्यार तेर मत च्यार पय, पनर तेर पय दोय ॥२०॥' काव्य छंद की ११वीं मात्रा लघु होनी चाहिये । वृत्तमौक्तिक ग्रन्थ में काव्य छंद के ४५ भेद बताये गये हैं । श्रीपरमहंस स्वामी ने छप्पय छन्द की प्रथम चार पंक्तियों में ११ + १३ मात्राओं का क्रम रखा है जबकि अन्तिम दो पंक्तियों में १३ + ११ का क्रम रखा है । इस हिसाब से कुल मात्रा संख्या १४४ हो जाती है । रघवरजस प्रकास में १४४ मात्रात्मक छप्पय को 'नर छप्पय' नाम दिया गया है ।

स्मरण (२)—(१) 'अत्यादिक' पाठ के स्थान पर 'इन्द्रादिक' पाठ भी हो सकता था । रिख = राक्षस; जख = यक्ष; नवग्रह = सूर्य, चन्द्र, मंगल, बुध, गुरु, शुक्र, शनि, राहू तथा केतु आदि के साथ अत्यादिक पाठ का अन्वय

अठ सिधि नव निधि आदि,ले तीन लोक को है घना। जन सुरतराम साँची कही जो कोइ ले साँचि मना ।१।
राम गरीब नवाज राम सब पाप निवारे । राम हूं बन्दी छोड राम सब काज सँवारे ॥
राम जु अधम उधार राम का विड़द जु साजे। राम भक्ति को मूल राम सब गुन्हा निवाजे ॥
राम नाम त्यारे सही काल जाल सब दुख हरे। जन सुरतराम भज राम कूं नाम लेत जन बहु तरे ॥२॥३॥

नाम निश्चय (३)

राम तेज अरु पुंज राम का पार न पाया। राम निरकार नहीं आकार राम के कर्म न काया ॥
राम शिरोमणि देख राम है अगम अघाया। राम सकल भरपूर राम का अंत न आया ॥
राम सकल कूं पोख राम के जीव अधारा । राम सकल पैदास राम का सकल उजारा ॥
जन सुरतराम साँची कहै अैसा ब्रह्म अलेख । ताकूं भजियाँ छूटै है जन्म जन्म का लेख ॥१॥४॥

साधु (४)

मन जीते सुहि संत वेही कहिये हरि रूपा। सकल सृष्टि के मोड़ सर्व भूपन के भूपा ॥
सकल वासना काढ़ि बाढ़ि तन के गुण सारा। निर्गुण सुमरे राम त्याग गुण सर्व पसारा ॥
लिपे नहीं संसार सूं तक्र मथी ज्यूं घीव। जन सुरतराम वे धन्य जन निशदिन सुमरे पीव ॥१॥५॥

शूरातण (५)

शूर मंडे रणखेत शीश बिनु झूझे प्यारा । नहिं कायर का काम भक्ति जन धारे सारा ॥
डाँक पड़ें चौगान भर्म गढ़ दूर उड़ावे। तोड़ जगत की बाड़ ब्रह्म में गमन करावे ॥
जन सुरतराम साँची कहै, सोहि लेत सुख धाम। राम राम निशदिन रटे शुद्ध भये परनाम ॥१॥६॥

जिज्ञासी (६)

कहत राम ही राम भर्म कहुं नांही नेरो। कनक कामनी त्याग सोहि सदगुरु को चेरो ॥
आन दशा कूं त्याग रहै चरणा लव लीना। ज्यु जल के आधार रहै निशिबासर मीना ॥
इधर उधर विचर्या करे हृद जल छांडे नाहि। जन सुरतराम तज कामना गुरु पद रहै समाहि ॥१॥७॥

करने से युक्ति ठीक बैठ जाती है। आठ सिद्धि = अणिमा, महिमा, गरिमा, लघिमा, प्राप्ति, प्राकाम्य, ईशत्व
तथा वशित्व। नवनिधि = पद्म, महापद्म, शंख, मकर, कच्छप, मुकुंद, कुंद, नील तथा खर्व।

साधु (४)--काढ़ि = मन से बासनाएं निकाल फेंकी। बाढ़ि = गुणों की बढ़त, उनके प्रभावों की बढ़त
निरुद्ध कर दिया है। तक्र = मठा, छाछ।

शूरातण (५)--जन = भक्तजन; सारा = तलवार, फौलाद के शस्त्र।

जोग धारणा (७)

छांड सकल परिवार साज जोगी का भेषा। बन में रहो इकंत बेग ज्यूं मिलै अलेषा ॥
आसन संयम साध वाद नहिं फिरिये भाई। रटो राम को नाम तबै निर्भय घर जाई ॥
पाँच पचीसूं त्याग के भजो एक करतार। जन सुरतराम मन मेट दे सो जोगी ततसार ॥१॥
राज भर्तृहरि छांड कियो बन में जाय बासा। कर भिक्षुक का भेष दई सबही तज आसा ॥
कर में हांडी धार गला में फाटी कंथा। लई मुक्ति की राह और सब ही तज पंथा ॥
गुरु गोरख परताप सूं मेट जगत का साज। जन सुरतराम साँची कहै लह्यो अमर पद राज।२।९।

मन (८)

असो मूढ़ अज्ञान मान मन के उपजावे। मैं हूं बडो सयान दूसरो दाँव न आवे ॥
मैं पंडित मैं गुणी मैं हि बहु जानन हारो। बहु करनी मैं करूं मोहि सम कूण बिचारो ॥
अपनी महिमा आपही करे बनाय बनाय। जन सुरतराम मन मस्करो नरक द्वार ले जाय ॥१॥१०॥

गुरु विमुख (९)

कहूं एक दृष्टांत समझ हिरदय धर स्याना। सीता कारजु लोप लंक में जाय सिधाना ॥
कुजस भयो जग माहिं वाहनी लागी भारी। रावन को भयो नाश सीत घर जाय बिगारी ॥
जन सुरतराम साँची कहै, ऐहो ज्ञान विचार। असी कोई जनि करो मिनख जन्म कूं धार ॥१॥११॥

भ्रम विध्वंस (१०)

भैरव भूतजु सेढ़ल ध्यावे, ताकूं कहु वे दासा वे।
कर्म कांड में जन्म गुमाया कहाँ करोगे बासा वे ॥

जोग धारणा (७)–'असक्तिरनभिष्वंगः पुत्रदारगृहादिषु। नित्यं च समचित्तत्व मिष्टानिष्टोपपत्तिषु ॥९॥ मयिचान न्ययोगेन भक्तिरव्यभिचारिणी। विविक्तदेशसेवित्वमरतिर्जन संसदि ॥१०॥ (गीता १३)

मन (८)––'आशापाशशतैर्बद्धा काम क्रोध परायणाः। ईहन्तेकाम भोगार्थमन्यायेनार्थ संचयान् ॥१२॥ इदमद्य मया लब्धमिमं प्राप्स्येमनोरथम्। इदमस्तीदमपि मे भविष्यति पुनर्धनम् ॥१३॥ असौ मया हतः शत्रुर्हनिष्ये चापरानपि। ईश्वरोऽहमहं भोगी सिद्धोऽहं बलवान्सुखी ॥१४॥ आढ्योऽभिजनवानस्मि कोन्योऽस्तिसदृशो मया। यक्ष्ये दास्यामि मोदिष्य इत्यज्ञान विमोहिताः ॥१५॥ (गीता अ० १६)

भ्रम विध्वंस (१०)––वाणीकार ने प्रथम तथा द्वितीय छंद को त्रभंगी छंद कहा है। प्रथम छंद में १६+१४ के क्रम में तथा १२ पंक्ति वाले द्वितीय छंद में १६+१२ के क्रम में मात्राओं का निर्वाह हुआ है। भिखारीदासजी के छंदार्णव पिंगल के अनुसार प्रथम छंद को चौबोल छंद तथा द्वितीय को नरिंद छंद कह सकते हैं। पिंगल

राम नाम सुपने नाँहि जाण्या, भरिया धूल धमासा वे ।
जन सुरतराम भज राम रमइया, चली जात है स्वाँसा वे ।।१।।

सदगुरु धीरा बडे गंभीरा मेट्या सबही टंटा । न्हावण धोवण अर्चण चर्चण तर्पण अर्पण घंटा ।।
ब्रह्म गायत्री शत सलोंकी सहस्र नाम सम्पट्टा । संइया सकारे साथ त्रिकाली नाक पकड़ कर घट्टा ।।
मंतर पढ़कर चोको देवे शुची अशुची बिचारी । किरिया करके करी रसोई भिन उपज्या पर हारी ।।
शिव कूँ ध्यावे नव निधि चाहे आँक धतूरा डारी । गमन करे गणपति कूँ सोधे कारज सर है म्हारी ।।
ब्रासहि बर्त एकादशि करिया. मोठहि मार उतारी । ऐ सब साधन कच्चे धर्मा इनके संग दुख्यारी ।।
साँचा पकड़ साँच कूँ सेवे सोही मत्त करारी । जन सुरतराम पूरा गुरु परस्या, राम नाम उर धारी ।।२।।
दुनिया बडी दुरंग जासु के एक न रंगा । नाना इष्ट उपास तासु को मनवा भंगा ।।
राम नाम कूँ छांड आन कूँ शीश नवावे । अपणा कर्तव पूज राम कूँ पीठ दिखावे ।।
महा भ्रष्ट संसार है जामें लक्षण नाहि । जन सुरतराम साँची कहै भग्या काल मुख जाहि ।।३।।१४।।

रघवरजस प्रकास के अनुसार 'भगण रगण दुजबर नगण दोय भगण गुरु दोय । अहूपत खगपत सूँ बखै छंद
नरिन्द सकोय ।।१५७।।' १६+१२ मात्रा का नरिन्द छंद होता है । छंदार्णव पिंगल के अनुसार 'तीस मत्त
चौबोल है सोरह चौदह तत्त ।।२११।।' ३० मात्रा वाला (१६+१४) छंद चौबोल है

कुण्डल्या संभाग

गुरुदेव (१)

प्रथम राम रमतीत जु सदगुरु सब्ही संत। जन सुरतराम वंदन करै बारम्बार अनंत ॥१॥
सदगुरु संत जु राम कूँ करूँ वन्दना सोय। जन सुरतराम आराम मिल काम जु पूरण होय ॥
काम जु पूरण होय सोय दिल के मल सारा। मेरे उर रह तीन और कोइ नहिं अधारा ॥
राम संत अरु साधवा सदा रहो सिर मोय। सदगुरु संत जु राम कूँ करूँ वन्दना सोय ॥२॥
रामचरण परगट भया सप्तद्वीप नवखंड। राम राम मुख ध्यान है जाणे सब ब्रह्मंड ॥
जाणे सब ब्रह्मंड तासु में एक विचारा। नहीं अज्ञ कूँ गम्म तज्ञ जन जाणे सारा ॥
जन सुरतराम साँची कहै, निश्चल सदा अखंड। रामचरण परगट भया, सप्तद्वीप नवखंड ॥२॥
रामचरण कलिकाल में भया भक्ति भूपाल। आन भर्म गढ़ तोड़ के कियो अज्ञ उर शाल ॥
कियो अज्ञ उर शाल ज्ञान धन मुकता लूटे। चरणा लागे आय जिनूँ का बंधण खूटे ॥
जन सुरतराम अैसे गुरु करे बहुत प्रतिपाल। रामचरण कलि काल में भया भक्ति भूपाल ॥३॥
सदगुरु का परताप सूँ आनंद प्रगटे आय। राम राम मुख सूँ कहै तो मिले ब्रह्म में जाय ॥
मिले ब्रह्म में जाय पाय परमातम प्यारा। सद सुख पावे नित्य जगत सुख लागे खारा ॥
जन सुरतराम साँची कहै तपत सबै बुझ जाय। सदगुरु का परताप सूँ आनंद प्रगटे आय ॥४॥
रामचरण गुरु परगट्या, धर कलयुग अवतार। इन्दर ज्यूँ शीतल करे, शब्द गाज उपकार ॥
शब्द गाज उपकार, ब्रह्म का अंश निपजावे। ज्ञान बीजली तेग, कर्म सब मार उडावे ॥

कुण्डल्या—'शुध कुण्डलिया अंत सुज, एक दुहो फिर थाप। कुण्डलियो दोहाल कह, मल रावव जस भाप॥' २६८॥ (र० ज० प्र०) शुद्ध कुण्डलिया के अंत में एक दोहा और जोड़ दिया जाये तो उस छंद को 'दोहाल कुण्डलिया' कहा जाता है। शुद्ध कुण्डलिया दोहा तथा काव्य छंद के संयोजन से बनता है। परमहंस स्वामी ने दोहा, काव्य का आधा भाग अर्थात् ४ पंक्तियों के स्थान पर दो पंक्ति तथा दोहा से कुण्डल्या छंद बनाया है। वास्तव में, ८ पंक्ति का कुण्डल्या छंद होना चाहिये जबकि है ६ पंक्ति का।

गुरुदेव—(२) सप्तद्वीप = जम्बू, कुश, प्लक्ष, क्रौंच, शाल्मलि, शाक और पुष्कर; नव खंड = इलावर्त, रम्यक, कुरु, हरिवर्ष, किम्पुरुष, भारतवर्ष, केतुमाल, भद्राश्व, और हिरण्य। तज्ञ = तत्वज्ञपुरुष।

(३) अज्ञ = अज्ञानीजन; मुकता = बहुत से व्यक्ति;

(४) गुरु शब्द = बादल गर्जना, इन्द्र = गुरुदेव; गुरुपदेश से, अंश, अंशी को प्राप्त करता है = बादल, वर्षा से अन्न उत्पन्न करता है; ज्ञान का प्रकाश = बादल की बिजली; ज्ञान की तलवार सर्व कर्मों का सफाया करती है।

ऊंधाला ज्यूं काल है, जन सुरतराम दे मार। रामचरण गुरु परगट्या, धर कलयुग अवतार ॥५॥
रामचरण म्हाराज कैं, जो कोइ दर्शन जाय। चितवन करता बुधि फुरे, कर्म विलय हो जाय॥
कर्म विलय हो जाय, सुमति उर ज्ञान प्रकाशे। संत बड़े दरियाव जीव की तप्ति विनाशे॥
जन सुरतराम साँची कहै भक्ति बीज प्रगटाय। रामचरण म्हाराज कैं जो कोइ दर्शन जाय॥६॥
सदगुरु बंदी छोड है जो कोइ शरणे जाय। त्रिविध ताप का भय मिटे, सुख में रहे समाय॥
सुख में रहे समाय, ब्रह्म दी बाणी बोले। करे काग सूँ हंस तुरत निज नाम ज तोले॥
जन सुरतराम साँची कहै, सुखमय प्रीति बधाय। सदगुरु बंदी छोड हैं जो कोइ शरणे जाय ॥७॥
सदगुरु की महिमा करें, तीनों लोक उचार। सुर नर सबही देखिया, किरसन कहत पुकार।
किरसन कहत पुकार, फेर ब्रह्मादिक भाखे। पार्वती कूँ ज्ञान देत शिव जीवन राखे॥
जन सुरतराम साँची कहै, महिमा अगम अपार। सतगुरु की महिमा करे, तीनों लोक उचार ॥८॥
सदगुरु मम परमात्मा, मैं वाँका निज दास। जन सुरतराम गुरु भेंटिया, पाया ब्रह्म विलास॥
पाया ब्रह्म विलास राम रस रसना पीया। सदगुरु के तरताप राम घर नेरा लीया॥
जन्म मरण दुख मेटिया, किया जु सुख में बास। सदगुरु मम परमात्मा मैं वाँका निज दास ॥९॥

स्मरण (२)

सबही साधन छांड के भजे निरंजन राम। तो मौत अकाली ना मरे, पावे पूरी धाम॥
पावे पूरी धाम, जहाँ परमातम स्वामी। हाड गोड है नाहि, जासु के नांही चामी॥
जन सुरतराम वे देव है, सब देवन के स्वाम। सबही साधन छांड के भजे निरंजण राम ॥१॥
नाम लिया जिन सब सध्या सब साध्या उस जान। राम नाम निज मूल है, ताका धरिये ध्यान॥
ताका धरिये ध्यान, भर्मना रहे जु नाहीं। बिनु सूरज उद्दोत सकल अंधेरा माहीं॥

ऊंधाला = ग्रीष्मकाल साक्षात् कृषि के लिये काल है। ऐसे ही कर्म कांड जीव के लिये साक्षात् नरकगामी बनाने
वाला है।

(६) बुधि फुरे = स्वस्वरूप का ज्ञान हो जाता है।

(७) माया की उपाधि से संसार रूपी जेल में बंदी जीव का बन्धन सद्गुरु देव तत्काल ज्ञानोपदेश द्वारा खोल
देते हैं। आवश्यकता केवल उनकी शरण में जाने की है। ब्रह्मदी = ब्रह्म की (पंजाबी)

(८) 'तद्विद्धि प्रणिपातेन परिप्रश्नेन सेवया।' (गीता ४/३४); 'तस्माद् गुरुं प्रपद्येत जिज्ञासुः श्रेय उत्तमम्।
शाब्दे परे च निष्णातं ब्रह्मण्युपशमाश्रयम् ॥ (श्रीमद्भा० ११/३/२१)

स्मरण – (१) हाड-गोड = हड्डी, माँस, मज्जा, मेद, त्वचा, रुधिर; वीर्य—सप्त धातु से विनिर्मित शरीर नहीं
है जिसका, उस निरंजन निराकार परमात्मा का भजन करो।

जन सुरतराम ऐका बिना, पीछे अब क्या मान । नाम लिया जिन सब सध्या, सब साध्या उस जान ॥२॥
बारह व्रष लग सेवा किन्हि, गर्भ गुफा में ध्यान । जप तप करनी ना किया, नही किया असनान ॥
नहीं किया असनान, तीर्थ कोइ नाहि न्हाया । असा भजन प्रताप, देव सब पाँव लगाया ॥
जन सुरतराम इक राम बिनु सबै अंधेरा ज्ञान । बारह व्रष लग सेवा किन्हि, गर्भ गुफा में ध्यान ॥३॥
नाम रहेगा नाम सूँ समझ देख रे बीर । केता जुग परले गया, केता धर्या शरीर ॥
केता धर्या शरीर नाम तो दर्शे नाहीं । बिना भक्ति भगवान, आसरा सबै दिखाही ॥
जन सुरतराम साँची कही, भज्या राम सुख सीर । नाम रहेगा नाम सूँ समझ देख रे बीर ॥४॥१३॥

नाम निर्णय (३)

बहु तारा किस काम का, रैण तिमिर नहि जाय । सूरज तो ऐको भलो, रैण तिमिर मिट जाय ॥
रैण तिमिर मिट जाय, सकल का नेतर खोले । सबै भर्म मिट जाय सबल का शरणा जो ले ॥
जन सुरतराम साँची कहै, सदगुरु शब्द समाय । बहु तारा किस काम का रैण तिमिर नहि जाय ॥१॥
सकल वृक्ष हम देखिया, एकै फल जो होय । फेर कहूँ रे जीवड़ा, ऋतु ही में सो होय ॥
ऋतु ही में सो होय, बहुरि नहि दर्शे भाई । कल्प वृक्ष चितवन मिटे, बहु फल दर्शे आई ॥
जन सुरतराम साँची कहै, एक अखंडित जोय । सकल वृक्ष हम देखिया, एकै फल जो होय ॥२॥
और धर्म दिन चार का, जातां लगे न बार । ज्यूँ सावण का घास ज्यूँ, ऊगि चलै इकलार ॥
ऊगि चलै इक लार, पिछे कोइ खबर न पावे॥ डाभ रहे इक रंग, नाम सूँ अखंड रहावे ॥
जन सुरतराम साँची कहै, राम नाम ततसार । और धर्म दिन चार का, जातां लगे न बार ॥३॥
ररंकार इक राम है, लीजे लय बिच ध्याय । राम नाम कूँ धारता, सकल भर्म मिट जाय ॥
सकल भर्म मिट जाय, ब्रह्म का पद कूँ पावे । रसना रटन लगाय ध्यान रस अमृत पावे ॥
जन सुरतराम साँची कहै, सकल कर्म धुप जाय। ररंकार इक राम है, लीजे लय बिच ध्याय ।४।१७॥

बिरक्त (४)

मन असी तू कब करे, कागाँ भेष बणाय । कर में पातर गार को, ग्रास ग्रास मँगि खाय ॥
ग्रास ग्रास मँगि खाय, नहि कोइ सीधो पावे । गिरि तरुवर तल बैठ, राम सूँ ध्यान लगावे ॥
जन सुरतराम निश्चल हुवे, निर्द्वंदी होय जाय । मन असी तू कब करे, कागाँ भेष बणाय ॥१॥
रे मन मेरा बावरा काँइ करै बकवाद । चंचलताई छांड सब साधहु ब्रह्म समाद ॥

---

(३) बारह वर्ष तक शुकदेवजी अपनी माँ के गर्भ में रहे । गर्भ में भी रामस्मरण किया । बाहर आते ही रामस्मरण में लग गये । अन्य कोई भी साधन नहीं किया । फिर भी सर्व देव उनकी वन्दना करते है ।

(४) नाम स्मरण करने से ही स्व स्वरूपस्थ होने के कारण संसार में नाम रहता है । अन्यथा अब तक किसका नाम रहा ।

साधहुँ ब्रह्म समाधि वादि मत खोवे सासा । करो राम सूँ प्रीति पाव निर्भय घर वासा ॥
जन सुरतराम सब काम तज, हुय इकंत अहलाद । रे मन मेरा बावरा, कांइ करे बकवाद ॥२॥१६॥

अवधूत (५)

तीनों गिणे जु ऐकसा, शीत उष्ण अरु ग्रान । काया गिणे न आपणी, पड्या रहै मैदान ।
पड्या रहै मैदान, दुबीधा दूर निवारे । पांच पचीसूँ जीत, राम को ध्यान जु धारे ॥
जन सुरतराम साँची कहै, ऐ अवधूतन के ज्ञान । तीनों गिणे जु ऐकसा, शीत उष्ण अरु ग्रान ॥१॥
मन रे तोही सूँ कहूँ, अैसा ज्ञान विचार । अलख निरंजन ध्यान धर, आरंभ सकल निवार ॥
आरंभ सकल निवार, जमी का किया बिछोना । शीर्ष है आकाश, खवासी पवन करोना ॥
जन सुरतराम साँची कहै, कर में कमडंल धार । मन रे तोही सूँ कहूँ, अैसा ज्ञान विचार ॥२॥२१॥

निष्पक्ष (६)

निरपख भज्या स ऊबर्या, काट भरम की जार । जन सुरतराम साँची कहै, वे कहिये निज सार ॥
वे कहिये निज सार, ब्रह्म में बासा कीन्हा । काम क्रोध कूँ त्याग, आतमा सब में चीन्हा ॥
हलाबोल भरपूर है, रह्या एक आधार । निरपख भज्या स ऊबर्या, काट भरम की जार ॥१॥२२॥

विचार (७)

राम सबै भरपूर है जैसे अवनी नीर । खोदयाँ परगट होत है, यूँ भज्या उतारे तीर ॥
यूँ भज्या उतारे तीर, परा का जल के माहीं । निशदिन रह आनंद, शोक कहुँ नाहीं पाही ॥
जन सुरतराम साँची कहै, मन में धरे जु धीर । राम सबै भरपूर है, जैसे अवनी नीर ॥१॥
हटवाड़े भेला होत है, दोय पुरुष इक ठाम । हार जीत का दाव है, लखै स उतरै स्याम ॥
लखै स उतरै स्याम, फेर मरणा नहि होई । अमर होय कलि माँहि, सुरन में पूज्यक सोई ॥
जन सुरतराम साँची कहै, ऐही सत भज राम । हटवाड़े भेला होत है, दोय पुरुष इक ठाम ॥२॥
जयपुर शर के ऊपरे, रोड पुरा मति जाय । मूहाणा कूँ पूठ दे, सुखिया बसिये आय ॥
सुखिया बसिये आय, बसी की निश्चय कीजे । रामपुरा ले ध्याय, कालख कुँ पीठी दीजे ॥
अमर शहर तब पाइये, जन सुरतराम लिव ध्याय । जयपुर शर के ऊपरे, रोडपुरा मति जाय ॥३॥
किशनगढ़ कूँ त्यागीये, बगरु तणु भय राख । महलाना ही जाइये, बिचूण सिर पर राख ॥
बिचूण सिर पर राख, साँभर कुँ लीजे ध्याई । मनोरपुर कूँ मार, साँभर में बसिये आई ॥
देवदानि में पाय हैं, जन सुरतराम दिल पाक । किशनगढ़ कूँ त्यागीये, बगरु तणु भय राख ॥४॥
बीलवा कूँ छाँड के, भाँडरेज मत जाय । साँगानेर कुँ धारि के, पचीलपै के भाय ॥
पचीलपै के भाय, श्योपुर की निश्चय कीजे । रूपनगर तब पाय, प्रवतसर आखो लीजे ॥
राजपुरो मत छाँडिये, जन सुरतराम दिल ध्याय । बीलबा कूँ छाँडके भाँडरेज मत जाय ॥५॥

रामा माही श्राव के श्रौर ठोर मत जाय । श्राम तले तू बैठ के, राम नाम लिव लाय ॥
राम नाम लिव लाय छाया कु तजिये नाही । बहुत बास परकास, दुरगंध कहू दीसे नाही ॥
जन सुरतराम सांची कहै, रहिजे भूमि समाय । रामा माही श्राव के श्रौर ठोर मत जाय ॥६॥
कामां नाही जाइये, सिलोर बसिये श्राय । देवगढ़ तो थिर नहीं, श्रखगढ़ लीजे ध्याय ॥
श्रखगढ़ लीजे ध्याय, ब्रह्मपुरि तजिये नाही । जहां रहो नित छाय, दु:ख कहू दीसे नाही ॥
जन सुरतराम सांची कहै श्रंसी सूंज समाय । कामां नाही जाइये, सिलोर बसिये श्राय ॥७॥२६॥

व्यभिचारिणी (८)

व्यभिचारिणि बिचली फिरे, बहु जारां के संग । पतिवरत भावे नहीं, नहीं लगे करारी रंग ॥
नहीं लगे करारी रंग, फिरे लज्जा मति हीनी । दोऊ कुल कू भांड जमारो कियो जु क्षीणी ॥
जन सुरतराम सांची कहै, चली नरक के मग्ग । व्यभिचारिणि बिचली फिरे, बहु जारां के संग ॥१॥३०॥

शूरातण (६)

शूरा सोही जाणिये, भजे निरंजण राम । मन मेवासी ढाय के, पांचू राखे ठाम ॥
पांचू राखे ठाम, पचीसूं दाव लगावे । जीते प्रकृति सुभाव, संत वृति राह चलावे ॥
जन सुरतराम सांची कहै, ऐ शूरबीर के काम । शूरा सोही जाणिये, भजे निरंजन राम ॥१॥
शूरा काया ना गिणे, रण पेसंती बार । डाक पड़ रण खेत में, देखे नहीं लगार ॥
देखे नहीं लगार, श्याम को श्रन जल खावे । पकड़ खड़ा समसेर, शत्रु कूं दूर उडावे ॥
जन सुरतराम सांची कहै, शूर तणों श्रधिकार । शूरा काया ना गिणे, रण पेसंती बार ॥२॥३२॥

कायर (१०)

जन सुरतराम सांची कहै, कायर संग निवार । पीठ दिखावे श्याम कू, धरक कहै संसार ॥
घरक कहै संसार, गांठ को कुल्ल लजावे । खान पान हुय भ्रष्ट, शूर की बात न भावे ॥
इष्ट भिष्ट फिरतो फिरे, लजा न उपजे कार । जन सुरतराम सांची कहै, कायर संग निवार ॥१॥३३॥

टेक (११)

जीवत सत गृह में करे, जाका मता करार । राम नाम की टेक गह, उतर गया भव पार ॥
उतर गया भव पार, भक्ति की ज्हाज चलाई । अगल बगल कूं छांड, नाम में सुरति लगाई ॥
जन सुरतराम सांची कहै, तन मन दीया मार । जीवत सत गृह में करे, जाका मता करार ॥१॥
सांच टेक की लार है, लापर सूं रह दूर । जन सुरतराम सांची कहै, नामा देख हजूर ॥
नामा देख हजूर, हद पर वेहद काढ़ी । पय पायो पाखाण, देहुरो फेर ज छांड़ी ॥
भल निर्गुण सगुंण करो, निश्चय माहीं नूर । सांच टेक की लार है, लापर सूं रह दूर ॥२॥३५॥

सत्संग (१२)

संगति कियाँ सुख होत है, जगत ताप मिट जाय। हानि वृद्धि टोटो नफो, हरि इच्छा बरताय ॥
हरि इच्छा बरताय, सदा आनंद रहावे। आपण कलपे नाहि, होय सो दृष्टि दिखावे ॥
सुरतराम ये अमर धन, कोइ रामकृपा ते पाय। संगति किया सुख होत है, जगत ताप मिट जाय ॥१॥

सत्संगति निर्मल करे, धोवे मैल विकार। जन सुरतराम साँची कहै, करे जीव भव पार ॥
करे जीव भव पार, समझ की राह चलावे। ज्ञान ध्यान परकाश भक्ति का पुंज दिखावे ॥
ऐसे जन सब मल हरे, करिहैं तत्त्व उचार। सत्संगति निर्मल करे, धोवे मैल विकार ॥२॥

राँका सूँ बाँका भया, देखो समझ विचार। कंचन नूर जु एक है, गह्या नाम तत्सार ॥
गह्या नाम तत्सार, भर्मना दूर गुमाई। राम नाम रस पीय, सुषुमना प्रेम समाई ॥
जन सुरतराम साँची कहै, दई कल्पना मार। राँका सूँ बाँका भया, देखो सोच विचार ॥३॥३८॥

साधु संगति (१३)

इक नाम उपासक जन्न सदा। कुइ विघ्न न व्यापक होय कदा ॥
जन धीरज ध्यान संतोष लियाँ। नित मग्न रहै रस राम पिया ॥
मुकता निज नाम सु हंस चुगे। भ्रम भर्म विकार जु दूर भगे ॥
निज नाम सुँ सुर्ति लगाय रये। उर आतम ब्रह्म मिलाय दये ॥
जनम मरण को भरम गयो। जन के पद में मन धीर भयो ॥
निज नूर सूँ नूर पिछानि रये। दुंद बाद सबै दुख दूरि गये ॥
निरदुंद भये सुख सीर खुला। परमातम आतम योग मिली ॥
नित ही नित आप अद्वैत रहे। मन बुद्धि क वायक आप गहे ॥
यह जानि दया गुरुदेव करी। जन सूरतराम ए सत्य भणी ॥१॥
यह सत्य कही गुरु पीर सई। जिन नाम जु निद्धि बताइ दई ॥
वचन रसाल जु आनंद ऐह। ध्यान हो जु अखंडित राम देह ॥
परमारथ हेतु उदार सही। मन की जु कल्लपन दूर गयी ॥
उनके चरणा निति प्रीति रहे। चरणामृत शीत प्रसाद लहे ॥
परमातम आतम जोग जुर्यो। गुरुकी किरपा सब काज सर्यो ॥
है अनंदमई दुख द्वंद गया। मन शुद्ध क वायक सर्व लह्या ॥
जहँ काल तणी गम नाहि कुई। ब्रह्म ही जु पुरी में अनंद हुई ॥
अति आनंद में जन गर्क रहे। मिलि के अब संत समाग गहे ॥
जहँ आनंद ऐक उदोत सही। परमातम सुक्ख सु आप लही ॥
जन लच्छण ऐह विचार सही। जन सूरतराम ए सत्य कही ॥२॥

संत जु झीलरि रुप है, जो कोइ दर्शन जाय । ऊंडा गहरा जल घणा, त्रिविध ताप मिट जाय ॥
त्रिविध ताप मिट जाय, पिवत अंग शीतल जोई । सकल उमस मिट जाय, परसता हर्षज होई ॥
जन सुरतराम साँची कहै, सहजे रह्या समाय ।संत जु झीलरि रुप है, जो कोइ दर्शन जाय ॥३॥४१॥

साधु महिमा (१४)

महापुरुष का धूम सूँ तिर गये भूत पिशाच । किते पतित पावन भये, संत दर्श हुल्लास ॥
संत दर्श हुल्लास, दर्श की महिमा भारी । पट दिलिप कियो पार, परीक्षत शरण उबारी ॥
जन सुरतराम साँची कहै, करहैं ब्रह्म विलास । महापुरुष का धूम सूँ, तिर गये भूत पिशाच ॥१॥४२॥

बहुधंधी (१५)

खलक सबे खाली रह्या, बिना राम के नाम । करे उपाय जु और ही, कै माया कै धाम ॥
कै माया कै धाम, राम नहि जाणे बहरे । माया काया आदि, नारि सुत नाही चेरे ॥
जन सुरतराम साँची कहै, छांड सकल ही काम । खलक सबे खाली रह्या, बिना राम के नाम ॥१॥४३॥

जिज्ञासु (१६)

शितचरणामृत पाइये संत चरण रज लाय । जन्म जन्म का पापही, मुख में गया विलाय ॥
मुख में गया विलाय, वेद सुम्मृति नित गावे । मिटी व्यास की ताप, नारद अख्यान सुणावे ॥
जन सुरतराम साँची कहै, लीजे प्रीति लगाय । शितचरणामृत पाइये, संत चरण रज लाय ॥१॥
शीत प्रसादी पावतां नारी सूँ नर होय । दासी पुत्र कहावतां, उलटि मुनि भया सोय ॥
उलटि मुनि भया सोय, शीत की महिमा भारी । बधिक तिर्यो तिहि बार, पाप सब दूर निवारी ॥
जन सुरतराम साँची कहै, असा महातम जोय । शीत प्रसादी पावतां, नारि सूँ नर होय ॥२॥
रामसनेही राम का, ऐक राम विश्वास । आन धर्म कूँ पूठ दे, बस्या राम के बास ॥
बस्या राम के बास, जोर जम को नहि लागे । राहु केतु अरु प्रेत देव द्रुग सेठल भागे ॥
जन सुरतराम साँची कहै, सकल शिरोमणि दास । रामसनेही रामका, ऐक राम विश्वास ॥३॥४६॥

अज्ञानी (१७)

नाम लियाँ टोटो पड़े पाप कियाँ ब्रिध होय । जगत सर्व ही यो कहै, या में मिथा न कोय ॥
यामें मिथा न कोय, मिथा यह सबही जानों । जो अधम सूँ धन होय, कोण सो धर्म करानो ॥
जन सुरतराम अज्ञान नर, विदु जन नाहीं जोय । नाम लिया टोटो पड़े, पाप कियाँ ब्रिध होय ॥१॥
पाप कियाँ धन होत है तो सबही पाप कराय । नाम लियाँ टोटो पड़े तो ध्रूजी कूं दिखराय ॥
तो ध्रूजी कूं दिखराय, अटल सो राज भुगावे । चन्द्र सूर अरु नछत्र, सबै परिकरमा धावे ॥
जन सुरतराम मूरख नरा, बाद बकत है आय । पाप कियाँ धन होत है, तो सबही पाप कराय ॥२॥

कोई मूरख यूं कहै, संगति किया क्या होय । हम भी संगति साधही कछू न प्रापति जोय,
कछू न प्रापति जोय, भागलो गयो विकारई । ऐसे रोवे जगत, कुल नहि सोचे कांई ।
जन सुरतराम अज्ञान उदय, ज्ञान दृष्टि दी खोय । कोई मूरख यूं कहै, संगति किया क्या होय ।।३।।
सत्संग को फल ना मिले, बुद्धि बिना कोइ ऐक । समझ माहि फल बहुत है, कहा जगत कहा भेक ।।
कहा जगत कहा भेक, मूढ कूं दीसे नाही । हिरदय भयो मलीन, ज्ञान कहो भासे कांही ।।
जन सुरतराम वे हारिया, भागी कूं दुख देक । सत्संग को फल ना मिले, बुद्धि बिना कोइ ऐक ।।४।।
भर्‌यो असूया प्रान, छूटतो नाही उर सूं । करे लड़खड़ी हेत, मूढ ऊपरला मन सूं ।।
जन सुरतराम वे जोवड़ा, बम्बेरा ज्यूं जान । भलो जु चाहे प्राणिया, छूटे नहीं अज्ञान ।।५।।
भया उजाला खलक मे, रैण तिमिर भया दूर । घूघू बागल कोचरी, इनु नहि भासे नूर ।।
इनु नहि भासे नूर, अज्ञानी ऐसे जानू । संत पंथ नहीं भेद, आदि गति वेद बखानू ।।
जन सुरतराम दर्श नही, अन्तर कपट अपूर । भया उजाला खलक में रैण तिमिर भया दूर ।।६।।
सुरतराम अज्ञान को, जान भवंग ज्यूं ज्ञान । खान पान पंत पोखिये, भर्‌या जहर मुख प्रान ।।
भर्‌या जहर मुख प्रान, बहुत गुरु ज्ञान जु दीजे । मिटे नहीं निज बाण, भवंग फूंकारा कीजे ।।
तासु कुसंगति त्यागिये, करले आप समान । सुरतराम अज्ञान को, जान भवंग ज्यूं ज्ञान ।।७।।
मूंज बस्तु सबही मिली जामें फेर न सार । ऊंचो करोत जु फेरिहें, कारज नाहीं सार ।।
कारज नाहीं सार, शास्त्र में ऐसे जानू । फेर फेर चल जाव समझ बिन भये खिसानू ।।
जन सुरतराम साँची कहै, कीजे ज्ञान बिचार । मूंज बस्तु सबही मिली जामे फेर न सार ।।८।।५४।।

मनमुखो (१८)

ऐसे मन मुख लापरी, सरल भरल संसार सार । शब्द सोचे नहीं, भर्म कर्म हुसियार ।।
भर्म कर्म हुसियार, दोजगी जन्म गुमावे । दोउ लोक कूं भांड, हाथ संग कछु न आवे ।।
जन सुरतराम वे जे नरा, दम्भी के उनिहार । ऐसे मन मुख लापरी, सरल भरल संसार ।।१।।५५।।

काल (१६)

काल गमन जब करत है, रोके दसों दुवार । जीव फिरे बिवहालही निकसण नहीं संचार ।।
निकसण नही संचार बहुत दुख पीड़ा भारी । जम्म खड़े सिर देख मार घर देह पछारी ।।
जन सुरतराम साँची कहै, छाँड़ चल्या घर बार । काल गमन जब करतहै, रोके दसो दुवार ।।१।।५६।।

चेतावनी (२०)

माल बिराणा हर कै लाया, गल में पड़ गई फांसा वे ।
जन्म जन्म थे बह कर ढोगे, छूटे नाहीं पांसा वे ।।
एक बाल जब तोड़ जु चाबी जाकू आणी बासा वे ।
जन सुरतराम भज राम रमइया, चलो जात है सांसा वे ।।१।।

मन रे तोहि सूं कहूँ, राम निरंजण ध्याय। श्वांस बीति दम जात है, काल सिराणे श्राय ॥
काल सिराणे श्राय, समझ कर देखि सयाना। श्राव घटै दिन जाय, श्रोसरा जाय पयाना ॥
जन सुरतराम साँची कहै, दुख भुगते तन जाय। मन रे तोहि सूं कहूँ राम निरंजण ध्याय ॥२॥५८॥
चौक पलट फिर पाइया रत्न जन्म श्रवतार। सब जीवन के सिर धणी, नर देही है सार।
नर देही है सार, बहुरि नहि पाव नरापी। ब्रह्मा करे हुलास, श्रसा तन करै लुरापी।
जन सुरतराम साँची कहै, श्रैसा दाव न हार। चौक पलट फिर पाइया, रत्न जन्म श्रवतार ॥३॥
राम कहै नहि बावरे कर्म करत हुसियार। माया लुब्धो यों फिरै, ज्यूँ फिरिहैं चोर जुवार ॥
ज्यूं फिरिहैं चोर जुवार, श्रन्त की खबर न पावे। सब धर्या रहै परिवार, काल जब लेह चलावै ॥
जन सुरतराम साँची कहै, श्रसा श्रबूझ गँवार। राम कहै नहि बावरे, कर्म करत हुसियार ॥४॥
क्या भूला रे प्राणिया जगत सुक्ख लडब्रूर। खाया कोइ न धापि है, सकुचि जाय तन नूर ॥
सकुचि जाय तन नूर भक्त श्रनपोख्या नाहीं। देखत जाय बिलाय ज्ञान नहि उपजे काहीं ॥
जन सुरतराम साँची कहै, तज्या न पावे सूर। क्या भूल्या रे प्राणिया, जगत सुक्ख लड ब्रूर ॥५॥
एक समय घर बार में लक्ष्मी श्रन धन पूर। सदा रहत सुख चैन में दुःख न व्यापे मूर ॥
दुःख न व्यापे मूर सदा श्रानंद करावे। जैसे मच्छी नीर श्रसे ही श्राप रहावे ॥
जन सुरतराम साँची कहै, ढलक्या व्यापे सूर। एक समय घर बार में लक्ष्मी श्रन धन पूर ॥६॥
श्रैसे नर तन पाय है, समझ देख रे बीर। सदा रहत श्रानंद में, जैसे मच्छी नीर ॥
जैसे मच्छी नीर, बहुरि नहि पावे भाई। जल सूक्या रह कीच मछी जब श्रन्त कराई ॥
जन सुरतराम साँची कहै, सदा रहत दुख पीर। श्रैसे नर तन पाइ है समझ देख रे बीर ॥७॥
दुःख जु पावे प्राणिया, बिना भज्यां करतार। श्रब रोयां क्या होइहैं, भुगतो जम डंड मार ॥
भुगतो जम डंड मार, पिछल दिन बहुर न श्रावे। समय गया परधान निकट कोइ नाहि जावे ॥
जन सुरतराम साँची कहै, कीजे भक्ति विचार। दुःखजु पावे प्राणिया, बिना भज्यां करतार ॥८॥
श्रैसे तन धन जाणिये, जातां लगे न बार। सुकृत सोदे लाइये, कीजे भक्ति विचार ॥
कीजे भक्ति विचार, एह तुम हिरदो धारो। चूक्यां पड़ हैं धूर, समझ कर खोज विचारो ॥
जन सुरतराम साँची कहै, ग्रह कूप वे ख्वार। श्रैसे तन धन जाणिये, जातां लगे न बार ॥९॥
ग्रह कूप में बूड़िया, माहा ढोर गँवार। जे कबहूं तिर जाण हैं तो डूबे नहीं लगार ॥
तो डूबे नहीं लगार, साँकल जब श्रायजु पकरे। कूक जु मारे बेग, कोइ जन हाथ जु पकरे ॥
जन सुरतराम साँची कहै, काढि लेहु ततकाल। ग्रह कूप में बूडिया, माहा ढोर गँवार ॥१०॥
रामभजन कर लीजिये, क्या जाणूँ क्या होय। राज बिराजी होत है घड़ी न बैठे कोय ॥
घड़ी न बैठे कोय, श्रसे तुम नर तन जानों। क्षण में टूटे साँस घड़ी में रोज प्रमानों ॥
जन सुरतराम साँची कहै, समय गयां क्या होय। रामभजन कर लीजिये, क्या जाणूँ क्या होय॥११॥
समय जु खेती होत है, समय जु वर्षा होय। समय जु श्राँधी श्रात है, समय व्यह्वार जु होय।
समय व्यह्वार जु होय, समय बिनु लागे खारी। समय माँहि सब सिद्ध, समय सूँ लागे प्यारी ॥
जन सुरतराम साँची कहै, समय माँहि सब होय। समय जु खेती होत है, समय जु वर्षा होय ॥१२॥६८

समय चूक दुःख होत है, रुले चुरासी माहि। जन सुरतराम सांची कहै, फेर सार कुछ नाहि ॥
फेर सार कुछ नाहि, समय बिनु फिरत दुख्यारी। जहाँ तहाँ तिरस्कार, समय बिन् मुख बिगारी ॥
ताते भजिये रामजी, समझ देख दिल माहि। समय चूक दुख होत है, रुले चुरासी माहि ॥१३॥
कुटुम जाल फंद कामणी, गाडी फांसी पूत। ममता कुती टोलियो, इनको भयो ज सूत ॥
इनको भयो ज सूत, भागणो पावे नाही। काल अहेड़ी निरखमारि हैं, पल पल माही ॥
जन सुरतराम सांची कहै किल्ले बांध्यो भूत। कुटुम जाल फंद कामणी, गाडी फांसी पूत ॥१४॥
किल्लो कहिये बासना मनवो भोंदू भूत। मोह मंत्र पढ़ कामणी, राख्यो निज कर दूत ॥
राख्यो निज कर दूत, कार कभि उलंघे नाहीं। काम कुतक के जोर, बंदर ज्यूं नाच नचाही ॥
जन सुरतराम सांची कहै, हरि बिनु हार्‌यो उत। किल्लो कहिये बासना, मनवो भोंदू भूत ॥१५।७१॥

गुरु विमुख (२१)

सतगुरु आग्या लोपता, कूण ऊधर्‌यो बीर। तीन लोक आदर नहि मिटे नहीं दुख पीर ॥
मिटे नहीं दुख पीर अवगुणि जन्म बिगार्‌या। गुरु दाता गुरु धर्म, स्वाद कर्मा संग हार्‌या ॥
जन सुरतराम सांची कहै, बिनु सदगुरु नहि धीर। सदगुरु आग्या लोपता, कोण ऊधर्‌या बीर ॥१॥
बडा अचम्भा मोहि है, राम भक्ति नहि भाय। नाना कर्म जु करत है, ऊंच नीच मिल खाय ॥
ऊंच नीच मिल खाय, वर्ण कोइ दर्श नाहीं। जैसा देखो तात्र, आप जैसा मिल जाहीं ॥
राम भक्ति में सुरतराम ऊंच नीच दे आय। बड़ा अचम्भा मोहि है, रामभक्ति नहि भाय ॥२॥७३॥

माया (२२)

माया चाहे प्राणियां जैसे पवन जहाज। माया पवन उलटि बहै, सरे नहि कोइ काज ॥
सरे नहि कोइ काज, ज्हाज जिव दुखी रहाना। चिंता बंधी अपार, शोक भय तन्न समाना ॥
जन सुरतराम संसार के बिनु माया नहि साज। माया चाहे प्राणियां जैसे पवन जहाज ॥१॥
माया केरा जीवड़ा घड़ी पलक जनि होय। घड़ी ज थोड़ी कर रह्या, सुख न पावे कोय ॥
सुख न पावे कोय, रेण दिन अजक लगाई। खण धरती खण बार, देखता हर्ष बधाई ॥
जन सुरतराम सांची कहै, गयां बहुत दुख होय। माया केरा जीवड़ा घड़ी पलक जनि होय ॥२॥
राम कहो रे जीवड़ा, करो पीव सूं प्यार। माया झूंठी रांड है, इन संग जन्म न हार ॥
इन संग जन्म न हार, धार ऊंडी या बोबे। लिये बड़ा कूं मार, नचीतो कोई सोवे ॥
जन सुरतराम सांची कहै, राम चलेगो लार। राम कहो रे जीवड़ा, करो पीव सूं प्यार ॥३॥७६॥

सांच (२३)

कूंडो ऊंडो नरक है, पड़ें सु निकसे नाहि। सकल ब्रह्म ते देखिया, घात करे किस माहि ॥
घात करे किस माहि, चक्षु की चारों फूटी। परगट भ्रष्टा खाय, मुक्ति की सेरी छूटी ॥
जन सूरतराम सांची कहै, धृक् जीव कलि माहि। कूंडो ऊंडो नरक है, पड़ें सु निकसे नाहि ॥१

तंमा गऊ रूप है, सूर सूर परमाण। दोउ जाति सोगन्न है, हिन्दू मुसलमान ॥
हिन्दू मुसलमान भ्रष्ट मत ह्वै जो भाई। होय जीव को नास, गुनें सब दग्ध कराई ॥
जन सुरतराम सांची कहै, भ्रष्ट होत है जान। तंमा गऊ रूप है, सूर सूर परमाण ॥२॥
तम्बाकु पियाँ होत है, ज्ञान ध्यान को नास। दमड़ा लागे दुख सहै, मिटे बुद्धि परकास ॥
मिटे बुद्धि परकास प्रभाती भीक मंगावे। डोले घर घर बार निलज्जि लाज न ग्रावे ॥
जन सुरतराम सांची कहै मूंडे होय कुबास। तम्बाकु पियाँ होत है ज्ञान ध्यान को नास ॥३॥
उत्तम किस विधि जाणिये, तीन गुणाँ विस्तार। पाँच तत्त्व का पूतला, हाड चाम तन लार ॥
हाड चाम तन लार, भिरष्टा सबके माहीं। एक देह ग्राकार, घट कोइ दूजा नाहीं ॥
जन सुरतराम साँची कहै, सबका एक व्यव्हार। उत्तम किस विधि जाणिये, तीन गुणाँ विस्तार ॥४॥
उत्तम प्रभु का नाम है, ग्रौर सकल बेकाम। या साधन कोइ चालसी, सो उत्तम परमान ॥
सो उत्तम परमान, भर्म की रेख जु मेटे। चार बर्ण सुधि नाहि, जगत का ग्रारंभ मेटे ॥
जन सुरतराम सांची कहै, करिकरुणा भज राम। उत्तम प्रभु का नाम है, ग्रौर सकल बेकाम ॥५॥
माँही उज्ज्वल ना भया जे न्हावे सो बार। ज्यूँ लीपेगा भीत कूँ दिन दिन बधे लगार ॥
दिन दिन बधे लगार एक ग्रैसी मन जानूँ। ग्रणछाण्या जल पिया, किसी बिधि शुद्ध पिछानूँ ॥
जन सुरतराम साँची कहै, कर्मा भर्‍या ग्रपार। माँही उज्ज्वल ना भया, जे न्हावे सो बार ॥६॥
माँहो उज्ज्वल नाम सूँ, ग्रैसा ज्ञान विचार। जल पीवे वा छाणके, सब जीवाँ दया विचार ॥
सब जीवाँ दया विचार, एक ग्रैसो मन ग्रानूँ। संत कहै समझाय शास्तर वेद बखानूँ ॥
जन सुरतराम साँची कहै, कहै भागोत पुकार। माँही उज्ज्वल नाम सूँ ग्रैसा ज्ञान विचार ॥७॥८३॥

भ्रम विध्वंस (२४)

एकादशी तुम करत हो, पण पँदरा दिन परभाल। विचि धाड़े ति पहुँचि है तव कूण करै प्रतिपाल।
तब कूण करै प्रतिपाल, चोर जब ग्राय लगावे। लिया नही बोलाब पंथ जब उजड़ चलावे ॥
जन सुरतराम साँची कहै, लूट लिया सब माल। एकादशी तुम करत हो, पणि पँदरा दिन पर भाल ॥१॥
ठाकुर सबही सेत है, भोग लगावे सोय। म्हाप्रसाद कुण पात है, नजर करो सब कोय ॥
नजर करो सब कोय, हाथ तो सबै पसारे। खाय लेय बताय, भिन्न कोइ नाहि धारे ॥
जन सुरतराम साँची कहै, रुच-रुच पावे जोय। ठाकुर सबही सेत है, भोग लगावे सोय ॥२॥
म्हाप्रसाद नहि पात है, महा मूढ़ नर जोय। जन सुरतराम साँची कहै, भला जु कैसे होय।
भला जु कैसे होय, भर्मना नाहीं मिटी। पूर्ण ब्रह्म नहि धार चक्षु की नाहँ दटी।
ज्ञान भक्ति नहि धार हैं, निर्मल कैसे होय। म्हाप्रसाद नहि पात हैं महा मूढ़ नर सोय ॥३॥
जगत सबेही खात है, सगा जु मिल-मिल सोय। जे कबहुं नहीं जीमि हैं, तो बडो फजीती होय ॥
तो बडी फजीती होय, हम्म में ग्रवगुण काँई। ग्राम्हा साम्हा बैठ, सगारथ तबै कराई ॥
जन सुरतराम साँची कहै, लड़ लड़ मरहैं जोय। जगत सबेही खात है सगा जु मिल मिल सोय ॥४॥

ठाकुर कू भोग लगाय के, महाप्रसाद ले पाय । तो वाको म्हातम सत्य है, कर्म रहे नहि काय,
कर्म रहे नहि काय, दिव्य हिरदय हो जावे । दुवध्या दुर्मति दोष, धोयके दूर बहावे ॥
जन सुरतराम इस विधि कियाँ मुक्ति रूप है ताय । ठाकुर कू भोग लगाय के म्हाप्रसाद ले पाय ॥५॥
इस विधि भिन्न उठाय दी, तो तुम ठाकुर साँच । या बिनु और उपाय है, सो सब जानू काँच ॥
सो सब जानू काँच, कपट की भक्ति करावे । चाकर उनका बाज भिन्न मन में क्यू ल्यावे ॥
जन सुरतराम साँची कहै, दया दोपड़ी बाच । इस विधि भिन्न उठायदी, तो तुम ठाकुर साँच ६॥८६॥

भेष (२५)

कलयुग स्वामी भ्रष्ट भया है, दो जग राह चलाई वे । चून जु मांगे, दमड़ा जोड़े गुरु को मटी बिकाई वे ॥
दमड़ा जोडे, ब्याज चलावे दूणा त्यूणा भाई वे । जन सुरतराम भज राम रमइया अंध धुंध जग छाँई वे ॥१
दादू कहिये आदू तजिया दो जग राह चलाईवे । दादू कहिया सो नहि लखिया, खर मस्ती मन भाई वे
ज्ञान ध्यान तो नाहीं सूझे, पिछला मूल गुमाईवे । जन सुरतराम भज रामरमइया क्या ले संग चलाईवे ॥२
सांग पहर सोरा भया, अब क्यू ध्यावे राम । पाँचू पोखे चापड़ा अब पाया विश्राम ॥
अब पाया विश्राम विरक्ति दशा कहावे । काम क्रोध अहंकार, दुबीधा नाहि गुमावे ॥
जन सुरतराम साँची कहै, चाहि जमारो बाम । सांग पहर सोरा भया, अब क्यू ध्यावे राम ॥३
काला कपड़ा पहरि के सांग कछयो संसार । रंगो चंगो तूम्बड़ी घर घर फिरे जु लार ॥
घर घर फिरे जु लार, भोइणी बात चलावे । उलट लिया ससार, ठगन को दाव लगावे ॥
जन सुरतराम साँची कहै, सांगो भया खुवार । काला कपड़ा पहरि के साँग कछ्यो संसार ॥४
पहली तृष्णा कूकरी, अब हड़कि भया तन लार । रोना घाल्या शहर में, पड़ी गाँव के लार ॥
पड़ी गाँव के लार, गल्याँ में देख चलावे । पकड़ लई अब पीठ, चाह का रक्त बहावे ॥
जन सुरतराम साँची कहै, दोउ लोक में ख्वार । पहली तृष्णा कूकरी, अब हड़कि भया तन लार ॥
समरथ सू सबही बणे, बे समरथ कुछ नाहि । अपणी तपत जु ना मिटे, शरण कूण गति पाहि ॥
शरण कूण गति पाहि, नासती बचन उचारे । हाय भाय कर खाय रैंग दिन पीड़ पुकारे ॥
जन सुरतराम साँची कहै, देखो जग निरताहि । समरथ सू सबही बणे, बे समरथ कुछ नाहि ।
समरथ ज्ञान विचारिये, समरथ शरणो जोय । आन धर्म विभचारणी नित ही परलै होय ॥
नित ही परलै होय, भजन बिनु जन्म गुमायो । राम नाम सुख छांड भर्म संग पाप कुमायो ॥
जन सुरतराम साँची कहै, चार जुगाँ दुख होय । समरथ ज्ञान विचारिये, समरथ शरणो जोय ॥७

101

रेखता सम्भाग

गुरुदेव (१)

प्रथम राम रमतीत जू सदगुरु सबही संत।
जन सुरतराम वन्दन करें बारम्बार अनंत ॥१॥

सदगुरु मिलत ही भर्म सब मेटिया सुरति ही शब्द सूं जाय चूंटी।
आठ ही पहर में नाम सूं लग रह्या काल अरु जाल की फांस खूंटी॥
आस सब मेट के ज्ञान निर्भय दिया राव अरु रंक की शंक भागी।
आन कूं पूजता भर्म में भूलता ज्ञान का शब्द सूं बुद्धि जागी॥
रामहीचरण गुरु मिलत शीतल किया तीन ही ताप की तपति भागी॥
जन सुरतहीराम अब जाग निर्भय भया चरण की शरण में सुरति लागी ॥१॥
सदगुरु बाज ही सुणत कर दोड़िये शीश नवाय परनाम कीजे।
मन्न की कल्पना सर्व ही चूर के शीत चरणामृत घोल पीजे॥
उन्न का दर्श सूं पाप सब नासिहैं काल परचंड को डंड खोवे।
तीन ही ताप की तपत मेटे सही होय आनद में सुक्ख सोवे॥
उनका शब्द ही सुणत शीतल बहे मन्न की वासना सर्व पूरे।
जन सुरतहीराम अब ढील क्यूं कीजिये संत ही दर्श धमराय भूरे ॥२॥

धार सदगुरु सो पार पल में करे धार ससार को नाहि बोवे।
सार अस्सार को न्याव भिन भिन करे मंत्र निज राम को नाम देवे॥
ज्ञान दे ध्यान दे शील संतोष दे आप अच्चाहि कुछ नाहि लेवे।
तर्क संसार सूं फर्क फक्कीर है राम सूं रत्त नित रहत भीना।
जन सुरतहीराम गुरुदेव अैसा मिल्या शिष्य उन शरण में काज कीना ॥३॥

सुरति ही जाय के सदगुरु सोधिया ज्ञान ही भक्ति का भया मेला।
सांच अरु भूंठ की खबर भी वाहां पड़े सार अस्सार का दिया गेला॥
नाम निर्वाण चित्ताय हिरदय धर्या तासु कूं रट्ट के गत्ति होई।
जन सुरत ही राम एह संत सांची कहै ब्रह्म चरणारबिंद दृष्टि पोई ॥४॥

सुमरण (२)

राम रट राम रट राम रट रे मना राम के तुल्य कोई और नाहीं।
रटत है शेष मुख संहस सूं एक रस कबहु नाहि सो बिसर जाही॥
रिषब के पुत्र नोयोगि आया सही जनक कूं नाम निज राम दीना।
शिब्ब अरु सनक निज राम ही राम कहै राम के नाम नारद् भीना॥

दत्त जड़ भरत रघुराय जब देखिया छांड संसार निज नाम लीना ।
अनंत ही साधु अरु संत सब राम भज सुरत ही राम सो राम भीना ॥१॥
सांस ही सांस बिच राम नीका कहो राम का भजन बिनु कलत काया ।
जन्म अरु मरण को दुख अपार है राम का नाम सूं अमर काया ॥
और करणी किया उपज अरु खपत है नाम कूं लेय प्रभ नांहि आया ।
धाम देवल कियां नाम रहे अल्प दिन नाम सूं नाम कलि मांहि भाया ॥
अनंत ही भूप धन धाम तज राज कूं छांड संसार हरि नाम चाया ।
जन सुरतहीराम आराम में मिल रह्या राम कूं भजत नहीं काल खाया ॥२॥
राम का नाम सूं समंद कूं पाटिया राम का नाम कूं शुक ध्याया ।
राम का नाम सूं फंद भी कट गया, शेष रु महेश हनुमान गाया ॥
राम का नाम सूं अधम भी तिर गया राम का नाम सूं शंख पूर्या ।
राम का नाम के तुल्य दीसे नहीं सबं ही धर्म या संग दूर्या ॥
अनंत ही जुगा बिच राम कूं ध्याइया ध्रुव भी ध्यान वैकुंठ ध्यावे ।
जन सुरत ही राम अब तासु कूं देखिले राम का भजन बिनु जन्म जावे ॥३॥
राम रमतीत सर्वांग व्यापीक है तासु कूं खोज मत दूरि ध्यावे ।
राम पैदा किया तासु कूं भज्जिये तासु का भजन बिनु जन्म जावे ॥
भर्म अरु कर्म सब छांड़ पग डंडीया राम निज पंथ में क्यूं न आवे ।
जन सुरतहीराम अब सुरति कर जोइये राम निज बीज निज धाम पावे ॥४॥८॥

भक्ति महिमा (३)

ज्ञान हि भक्ति में रूप कर देखिये देखिरे बावरे सुख कैसा ।
देव दाणा घणा सुख दीसे नहीं प्रभु की भक्ति में सुख अैसा ॥
राव अरु रंक कूं सुख दीसे नहीं तोहि पछाड़ के काल भाने ।
जन सुरतहिराम ये संत जन सांची कहें प्रभु की भक्ति में सुख जाने ॥१/९॥

अवधूत (४)

अवधूत भी होय के द्वन्द्व सब छांडिया ज्ञान ही भक्ति बैराग्य लीया ।
आठ ही पहर में नाम सूं लग रह्या जम्म का सीस पर पांव दीया ॥
भूमि का संभ पर मन्न कूं चूरिया पांच पच्चीस कूं जेर कीया ।
मूल का ध्यान धर डाल सब छांड कर सदगुरु शब्द सूं रस्स पीया ॥
रामहीचरण गुरु ब्रह्म का चेरिया ब्रह्म ही सुख में बास कीया ।
जन सुरतहीराम फकीर निरभय भया काय ही नगर में अमल कीया ॥१/१०॥

बिरक्त (५)

बैराग्य का ख्याल तो बहुत बारीक संसार की प्रीति तो नाहि प्यारी ।
हाल मस्तान गलतान ह्वै नाम में जगत की प्रीति तो दूर टारी ॥
पाँच कूं जेर पच्चीस कूं मार है काम अरु क्रोध कूं खोय न्यारे ।
जन सुरतहीराम फकीर सोहि सही होय आसिक महबूब प्यारे ॥१/११॥

वाचक ज्ञानी (६)

काम में क्रोध में लोभ में फस रह्या ज्ञान की बात तो बहुत ल्यावै ।
पाँच इंद्रयां तणा जाल रोपे सही ब्रह्म की ठीक तो नाहि पावै ॥
भर्म में कर्म में आप डोले सदा बाद के माहि तो बहुत ऊठे ।
जन सुरतहीराम अब चेत भज मूर्खा बिना हरि भक्ति जम दूत कूटै ॥१/१२॥

काल (७)

काल किलकार कर खाय रे सबन कूं राम गह जाय सो बचत भाई ।
और उपाय सूं बचत नहीं बावरे कोटि ओ जतन सो करत काई ॥
यार असनाव अरु बाप भाई खड़े देखतां जाय नहीं खबर पाई ।
हाय घोड़ा करै कूक मारे सही मार दे जम्म घर कूट जाई ॥
गोत्र परिवार के बात मिल मिल करे करत नाहि कोई तेरी सहाई ।
जन सुरतहीराम सो काल सूं ऊबर स्याम इक राम है सुमर ताई ॥१ १३॥

चेतावनी (८)

राम भज राम भज राम भज बावरे देख रे राम बिनु कोइ तेरा ।
माइया भाइया सुत अरु भावनी एह सब काल का देख घेरा ॥
धन्न अरु धाम सब संग चाले नहीं अंत की बार में नाहि नेरा ।
जन सुरतहिराम अब चेत भज राम कूं राम भजि राम भजि दाव तेरा ॥१॥
योवन की छक्क में अंध ह्वै चालिया फिट रे मूरखा राम भूल्या ।
दिना ही चार का पेषणा तुझ कूं अंत की बार में खाय शूला ॥
कामणि दामणि जीव बहुता रंगा राम के रंग तो नाहि भीना ।
जन सुरतहिराम जम मार ले जावहिगे थोथरि कूटसी पाप कीना ॥२॥
हल रे हल रे हल रे जीवड़ा अब्ब के दाव मत चूक मेरा ।
जुगा ही चार के बोसरे पाइया समझ कर देख रे दिल तेरा ॥
रत्न ही जन्म या बहुरि नहीं पाइगा कर्म ही संग मति हार मेरा ।
जन सुरतिहिराम अब चेत भज राम कूं बहुरि नहीं मिलसी दाव फेरा ॥३॥

गर्भ हि वास में कौन काठा किया आठ ही पहर में नांहि भूले ।
नर्क की ताप में शीश ऊंधो किया अमड़ा दुख तन मांहि झूले ॥
सांकड़ी जाग में पांव ऊंचा किया सास भी नेक भर नांहि आवे ।
बात कासूं कहूं और दीसे नहीं तुम बिना ताप देह नांहि जावे ॥
जन्म की बार में सांकड़ा बीतियां तीन ही लोक निजर न आया ।
जन सुरतिहिराम अब राम कूं भज ले पाप की ताप से दुख पाया ।
जन्म ही पाय के राम कूं भूलिया गर्भ की ताप तोहि नांहि भाखी ॥४॥
नारि ही सुत सूं जीव बहुता दिया इनके संग बहु दुःख पाखी ।
आठ ही पहर में काम सूं लग रह्या राम का भजन बिन बुद्धि नासी ॥
मावीया भाइया सर्व सूं मिल रह्या मोह का जाल में काल खासी ।
मूढ़ चेते नहीं अंध भी ह्वै रह्या राम का भजन बिन जन्म हारया ॥
जन सुरतिहिराम अब चेत चिताय कहै देखतां देखतां काल मारया ॥५॥
राम का नाम में रुच्चि रे बावरे भर्म का जाल में काल खासी ।
आन कूं पूज के कूण सुख पाइया थोथरा नाज में दाम जासी ॥
पेड़ कूं छांड के डाल कूं सींचिया आम का रस्स तो नांहि आवे ।
पिंड कूं छांड के तीर्थां लागियां राम को धाम तो नांहि पावे ॥
तीन हि लोक में देख ले जीवड़ा राम का नाम को जश गावे ।
जन सुरतिहिराम अब राम कूं भजी ले जम की त्रास सब मिटी जावे ॥६॥
चेत रे चेत रे चेत नर बावरे पांच मिरगा तेरो खेत खायो ।
पांच की लार पच्चीस की डार है जाग रे आंधरे भूल छायो ॥
ज्ञान की तेग कर भजन की तलब कर सांस उसांस की पीट ताली ।
शील की बाड़ कर सांच को जत्त दे काम अरु क्रोध कूं फूंक जाली ॥
जब नाम खेती फले समता पाकि है अमी रस्स सूं सींची पाली ।
जन सुरतिहिराम जब धन्न आवे सही दुख दारिद्र कूं दूर टारी ॥७॥
खेत कूं हांक के बाह बहुती दई खाद भी नाखि पलाव कीन्हा ।
मंजड़ा फेर के खूब भी कर रख्या घास अरु फूस कूं काढ़ दीन्हा ॥
बीज बोरे नहीं काल जाइ काटि है खेत कूं देख के खुसी होई ।
खुसी ही खुसी में दिन्न सब बीतियां थोथरी बात में रोज रोई ॥
वास ही व्रत्त कर कूण सुख पाइया बींद बिन जान बेकाम जावे ।
जन सुरतिहीराम अब समझकर देखिये शीश बिन धड़ किम काम आवे ॥८/२१॥

ग्रन्थ संभाग

गुरु प्रकाश (१)

गुरु अवग्या नरक जात है, कबहूँ कीजे नांहि । जन सुरतराम सांची कहै, वेद साध नित गांहि ॥१॥
वेद साध नित गात हैं राम गुरु को ध्यान । जन सुरतराम अवज्ञा करै सोही अंध अज्ञान ॥२॥

गुरु अवज्ञा सूं नरक पठाई । गुरु अवज्ञा चौरासी जाई ॥
गुरु अवज्ञा सूं बहु दुख पाई । गुरु अवज्ञा तो नांहि भलाई ॥३॥
गुरु अवज्ञा सूं कोढ़ी होई । गुरु अवज्ञा सूं पंगुल जोई ॥
गुरु अवज्ञा रसातल जाई । गुरु अवज्ञा तो नांहि भलाई ॥४॥
गुरु अवज्ञा सूं भूत ज होई । भरम भरम कर सब जुग रोई ॥
गुरु अवज्ञा सूं निर्दय हुवाई । गुरु अवज्ञा तो नांहि भलाई ॥५॥
गुरु अवज्ञा सूं जगत हँसाई । गुरु अवज्ञा सूं जनम धराई ॥
गुरु अवज्ञा जमदूत मराई । गुरु अवज्ञा तो नांहि भलाई ॥६॥
गुरु अवज्ञा अज्ञान ज छाई । गुरु अवज्ञा सूं बुद्धि नसाई ॥
गुरु अवज्ञा तन ताप जलाई । गुरु अवज्ञा तो नांहि भलाई ॥७॥
गुरु अवज्ञा दिन रैण भ्रमावे । भर्म भर्म कहुँ सांच न आवे ॥
गुरु अवज्ञा परचांट हुवाई । गुरु अवज्ञा तो नांहि भलाई ॥८॥
गुरु अवज्ञा तो द्रव्य विलाई । गुरु अवज्ञा तो मुलक छुड़ाई ॥
गुरु अवज्ञा तो कुण सिधि पाई । गुरु अवज्ञा तो नांहि भलाई ॥९॥
गुरु अवज्ञा तो प्रेम नसाई । गुरु अवज्ञा तो परकाश घटाई ॥
गुरु अवज्ञा अंध कूप नखाई । गुरु अवज्ञा तो नांहि भलाई ॥१०॥
गुरु अवज्ञा सूं भगति नसाई । गुरु अवज्ञा सूं कर्म बधाई ॥
गुरु अवज्ञा सूं कुण गति जाई । गुरु अवज्ञा तो नांहि भलाई ॥११॥
गुरु अवज्ञा सूं जतमत खूटे । गुरु अवज्ञा सूं धर्म ज छूटे ॥
गुरु अवज्ञा सूं दुष्ट कहाई । गुरु अवज्ञा तो नांहि भलाई ॥१२॥

गुरु अवज्ञा सब सूं बुरी, तीन लोक सुख नांहि ।
जन सुरतराम सांची कहै, अधर पधर मग जांहि ॥१३॥
अधर पधर लटक्या रहे, कहूँ ज आदर नांहि ।
जन सुरतराम सांची कहै, मघहर जूं गति पांहि ॥१४॥
भक्त दुखन सब सूं बुरो, हरि नांह माफ कराइ ।
जन सुरतराम सांची कहै, दुरवासा फिरि आइ ॥१५॥

सावज माफ ज हरि करै, तब ही साता पाइ।
जन सुखराम यों कहै, संत ज साहि कराइ ॥१६॥
गुरु सेवा सूं नव निधि पाई। गुरु सेवा सूं मुक्ति सिधाई॥
गुरु सेवा सूं सुचि बुधि पाई। गुरु सेवा सूं ब्रह्म मिलाई ॥१७॥
गुरु सेवा नारद गति पाई। गुरु सेवा चौरासि भजाई॥
गुरु सेवा ऐसी ह्वै आई। गुरु सेवा तो ब्रह्म मिलाई ॥१८॥
गुरु सेवा द्रुपदि चीर बधाई। खैंचि खैंचि कहूँ पार न पाई॥
गुरु सेवा सूं राकस भजाई। गुरु सेवा तो ब्रह्म मिलाई ॥१९॥
गुरु सेवा पाँडु जिग्य जीत्या। करत-करत दिन केता बीत्या॥
गुरु सेवा चित्त धरि आई। गुरु सेवा सूं ब्रह्म मिलाई ॥२०॥
सतगुरु सेवा सब सुख पाई। सतगुरु सेवा दुःख बिलाई॥
सतगुरु सेवा प्रम गति पाई। सतगुरु सेवा ब्रह्म मिलाई ॥२१॥
सतगुरु सेवा हृदै प्रकाशा। ज्यूंणी संकट बहुरिन वासा॥
सतगुरु सेवा भक्ति ज पाई। सतगुरु सेवा ब्रह्म मिलाई ॥२२॥
सतगुरु सेवा नित प्रति कीजे। तन मन अरप राम रस पीजे॥
सदगुरु सेव अग सीतल ह्वै आई। सतगुरु सेवा ब्रह्म मिलाई ॥२३॥
सदगुरु सेव जम द्वारि न जाई। सतगुरु सेवा ब्रह्मा जस गाई॥
सदगुरु सेव तिहुँ लोक बड़ाई। सदगुरु सेवा ब्रह्म मिलाई ॥२४॥
सदगुरु सेव दया उपजाई। सदगुरु सेवा हरि गुण गाई॥
सदगुरु सेव मिनख भव आई। सदगुरु सेवा ब्रह्म मिलाई ॥२५॥
सदगुरु सेव गुरु पद पाई। सदगुरु सेवा अगम सिधाई॥
सतगुरु सेव हंस चाल चलाई। सतगुरु सेवा ब्रह्म मिलाई ॥२६॥
सदगुरु सेवा निसदिन कीजे। मिनखा जनम लाभ तब लीजे॥
चौरासी तजि नरतन पाई। सतगुरु सेवा ब्रह्म मिलाई ॥२७॥
सुकृत कीजे हरि रस पीजें। साध संगति में लाहा लीजें॥
ऐसो औसर बहुरि न पाई। सतगुरु सेवा ब्रह्म मिलाई ॥२८॥
दास कबीर तो भलि बजाई। जगज ज नाता दूरि तुड़ाई॥
भक्त नामदेव प्रान चढ़ाई। सतगुरु सेवा ब्रह्म मिलाई ॥२९॥
रांका बांका मत का पूरा। कंचन धूलि ज जान्यो सूरा॥
बीण कुटकली पेट भराई। सतगुरु सेवा ब्रह्म मिलाई ॥३०॥
राजा हरिचंद राज चढ़ाई। तीन लाख को बोल बुलाई॥
बिक्या ज तीनूं पग न छुड़ाई। सतगुरु सेवा ब्रह्म मिलाई ॥३१॥
ऐसी भक्ति ज राम रिझाई। तीन लोक की आसा जाई॥
तन मन अरपि ज चरण चढ़ाई। सतगुरु सेवा ब्रह्म मिलाई ॥३२॥

अब का भगतां गाल बजाई । सधै न टेक ज प्राण खुजाई ॥
चले ज जोड़ हम भी भाई । सतगुरु सेवा ब्रह्म मिलाई ॥३३॥
तन मन अरपि राम रस पीजे । देखि अभ्यागत सुकृत कीजे ॥
ऐसो दाव बहुरि नहिं पाई । सतगुरु सेवा ब्रह्म मिलाई ॥३४॥
नर देह दइ ज हरि रस पीजे । द्रव्य ज दियो ज सुकृत कीजे ॥
मिनखा जनम लाभ तब आई । सतगुरु सेवा ब्रह्म मिलाई ॥३५॥
खोटा करमां नांहि गुमाई । बार बार येह नांहि पाई ॥
ब्रह्मा हुलसे ऐसो ह आई । सतगुरु सेवा ब्रह्म मिलाई ॥३६॥
गुरु मिलाप एह जांनिये, सुनियो संत सुजान ।
जन सुरतराम सांचो कहै, उपजे तत्त ज ज्ञान ॥३७॥
बिनु सतगुरु पावै नहीं, कोटिक पचो जिहान ।
जन सुरतराम सांची कहै, छुटै नहीं अज्ञान ॥३८॥
गुरु प्रकाश एह ग्रन्थ है पावे भक्ति ज ज्ञान ।
जन सुरतराम सांची कहै, तबही होत कल्याण ॥३९॥
कल्याण जगत ज करत है, सतगुरु बारम्बार ।
जन सुरतराम सांची कहै, तिरतां लगै न बार ॥४०॥
पार करै इक पलक में, सतगुरु दीन दयाल ।
जन सुरतराम सांची कहै, चरण शरण रिछपाल ॥४१॥

नाम बत्तीसी (२)

सुरतराम करै प्रमहंस जू, राम गुरु सूँ बंदन ।
नाम महातम करूँ बत्तीसी, जाति सबद की छंदन ॥
सुनत हि भरम करम सब भागे, उपजे नाम जिज्ञासा ।
नाम महातम परम्परा सूँ थिर चित ल्यौ पद वासा ॥१॥

नाम सनाना नाम हि दाना, नाम ही तरपण सन्ध्या ।
नाम उचरिया सोही करिया, तन मन सुचि नां गंधा ॥
नाम हि सेवन नांम हि पूजन, धूप दीप परकासा ।
नाम महातम परम्परा सूँ, थिर चित ल्यौ पद वासा ॥२॥

नाम हि गंगा नाम हि संगा, नाम हि प्राग रू कासी ।
नाम हि गोकुल नाम बृंदावन, नाम हि मथुरा वासी ॥
नाम हि नीला नांम हिज सीला, नाम हि पूरै आशा ।
नाम महातम परम्परा सूँ, थिर चित ल्यौ पद वासा ॥३॥

नाम सूं गुरु नाम सूं चेला, नाम सुं विधि व्यवहारा ।
नाम हि पाक जानि तन गंधा, नाम लिया श्राचारा ॥
नाम हि लेणा नाम हि देणा, क्यूं बकि खोवे स्वासा ।
नाम महातम परम्परा सूं, थिर चित ल्यौ पद वासा ॥४॥

नाम हि हेला नाम हि देला, नाम हि बोल्या भाई ।
नाम सुं पावे नाम सुं जावे, नाम सु नाम सहाई ॥
नाम हि प्यारा नाम हि सारा, नाम भक्ति ग्ररु दासा ।
नाम महातम परम्परा सूं, थिर चित ल्यौ पद वासा ॥५॥

नाम हि तप्पा नाम हि जप्पा, नाम हि जग्गी जोगी ।
नाम हि कर्मा नाम हि धर्मा, नाम सुं नाम निरोगी ॥
नाम हि तीरथ नाम हि बरता, नाम हि करो उपासा ।
नाम महातम परम्परा सूं, थिर चित ल्यौ पद वासा ॥६॥

नाम हि वेदा नाम हि भेदा, नाम हि पढ़िए गुनिए ।
नाम हि मंडित नाम हि पंडित, नाम हि ऋषि ग्ररु मुनिए ॥
नाम हि ग्यानी नाम हि ध्यानी, नाम समाधि निवासा ।
नाम महातम परम्परा सूं, थिर चित ल्यौ पद वासा ॥७॥

नाम सासतर नाम पु राना, नाम हि नौ व्याकरणा ।
नाम हि कथिए नाम हि सथिए ले जान नाम का सरना ॥
नाम हि ग्रगमी नाम हि सुगमी, हिरदे नाम उजासा ।
नाम महातम परम्परा सूं, थिर चित ल्यौ पद वासा ॥८॥

नाम हि धूनी नाम हि सूनी, नाम हि ग्रनहद बाजा ।
नाम हि जुगति नाम हि ज्योति, नाम करे सब काजा ॥
नाम हि हद्दी नाम विहद्दी, ग्रगम गम्म नहिं नासा ।
नाम महातम परम्परा सूं, थिर चित ल्यौ पद वासा ॥९॥

नाम हि करणी नाम निसरणी, नाम हि मेटे मरना ।
नाम हि बंदा नाम हि जिंदा, नाम लियाँ भव तिरना ॥
नाम हि सिद्धि नाम हि रिद्धि, नाम पुजावे खासा ।
नाम महातम परम्परा सूं, थिर चित ल्यौ पद वासा ॥१०॥

नाम हि मत्ता नाम हि कथ्था, नाम हि पंथ प्रवीणा ।
वृत्ति विराग नाम ही कहिए, नाम हि मारग भीणा ॥
ग्रधम उधार नाम तुम जानूं, काटे जम की पासा ।
नाम महातम परम्परा सूं, थिर चित ल्यौ पद वासा ॥११॥

नाम हि राजा, सब भक्तन को स्वामी ।
सब धर्मन को नाम हि राजा, सब भक्तन को स्वामी ।
प्रेम प्रकाश नाम सूं प्रगटे, नाम नाम सूं नामी ॥

नाम हि सांचो नाम हि बांचो, नाम हि दिल्ल दिलासा ।
नाम महातम परम्परा सूं, थिर चित ल्यो पद वासा ॥१२॥

नाम हि जंतर नाम हि मंतर, नाम मोहनी मोह्या ।
नाम सुहावे नाम हि भावे, नाम मनो मल धोया ॥
नाम सुं खाना नाम सुं पीना, नाम सहूति सत भासा ।
नाम महातम परम्परा सूं, थिर चित ल्यो पद वासा ॥१३॥

चार वर्ण चारू आसरमा, नाम किया पैदासा ।
नाम न गावे आन रिझावे, झूंठी जिनकी आसा ॥
नाम बिना दुख मिटे न भारी, जन्म मरण की त्रासा ।
नाम महातम परम्परा सूं, थिर चित ल्यो पद वासा ॥१४॥

कर्म कमाना नाम न गाना, तन कसि धारे आशा ।
ऊंच नीच बहु देही धारे, सुख दुख भोग विलासा ॥
सूरतराम कहै प्रमहंसा, वंश कर्म तज प्यासा ॥
नाम महातम परम्परा सूं, थिर चित ल्यो पद वासा ॥१५॥

श्रीनरायण पारषद षोडस, एक नाम आधारा ।
नाम उचारे रूप निहारे, करे सतुती अपारा ॥
कमला अरु साबित्री गौरी, नाम जोगपति पासा ।
नाम महातम परम्परा सूं, थिर चित ल्यो पद वासा ॥१६॥

जोगी शंकर भेष भयंकर, नाम अधार महेसा ।
लिङ्ग पुजावे जग डहकावे, मुक्ख न नाक न सीसा ॥
मूरतीवंत लोक में शंकर, सुन्दर मुख सिर नासा ।
नाम महातम परम्परा सूं, थिर चित ल्यो पद वासा ॥१७॥

ब्रह्मा बेद चहुँमुख उचरे, राम नाम परतापू ।
कर में बेद कहै विधि सारो, मुक्ति राम को जापू ॥
दूजी किरिया फल मन धरिया, मिट्या न सुख दुख सांसा ।
नाम महातम परम्परा सूं, थिर चित ल्यो पद वासा ॥१८॥

श्रीमुख आप कहैं निज महिमा, राम नाम कहु गाना ।
नाम लिहारी जन जो प्रेमी, मेरो परगट प्राना ॥
प्रीतम भक्ति काज तन धारूं, वांकी पूरूं आशा ।
नाम महातम परम्परा सूं, थिर चित ल्यो पद वासा ॥१९॥

ध्रुव प्रहलाद नाम सूं नामी, अजामील कुल टारी ।
चतुर बीस अवतार स्वयम प्रभु भक्त बछल बलिहारी ॥
नारद शारद नाम उपासी भृगु वशीष्ट पुलिस्ता ।
नाम महातम परम्परा सूं थिर चित ल्यो पद वासा ॥२०॥

110

गौतम वामदेव शुक सौनक देवल सुत अद्पासी ।
हनू विभीषण भीषम अर्जुन उद्धव नाम विलासी ॥
गरुड़ भुसुंडि सिद्ध चौरासी नव नाथ संप जटासा ।
नाम महातम परम्परा सूँ थिर चित ल्यौ पद वासा ॥२१॥

सनकादिक प्रह जनक विदेही ऋषभदेव नव जोगी ।
कर्दम कपिल दत्त देवहूति राम नाम का भोगी ॥
रुकमाङ्गद अंबरीस परीक्षित पृथु रू चन्दर हासा ।
नाम महातम परम्परा सूँ थिर चित ल्यौ पद वासा ॥२२॥

वालमीकि ध्रुव विश्वामित्र अंतरिक्ष बलि शेषा ।
रघू यदू विदुर बनवासी नाम लेत तप भेषा ॥
मैत्रेय पाराशर सञ्जय वैशम्पायन व्यासा ।
नाम महातम परम्परा सूँ थिर चित ल्यौ पद वासा ॥२३॥

रामानन्द निमानंद स्वामी विष्णू मध्वाचारज ।
बावन द्वारा शिष्यन सहती ए नाम लेत गये पारज ॥
नाम कबीरा सदना सैना नानक नाम रदासा ।
नाम महातम परम्परा सूँ थिर चित ल्यौ पद वासा ॥२४॥

हरियानंद राघवानंदा अनंतानंद रु सुरिया ।
परशूराम पयहारी अग्गर कील नाम निस्तरिया ॥
पीपो नापो कालू कीतो धाटम नाम निवासा ।
नाम महातम परम्परा सूँ थिर चित ल्यौ पद वासा ॥२५॥

तुरसी तीन गयेश श्रीरङ्गा कान्हड़ जंगी ध्याना ।
धन्नो लाहो टोलो कमधज भवन भवन गलताना ॥
माधौ मधू मलूक मुरारी पदम परस्पर दासा ।
नाम महातम परम्परा सूँ थिर चित ल्यौ पद वासा ॥२६॥

चौधड़ खोजी नाभो त्यागी ततवेता हरिदासा ।
भट्ट व्यास हरिवंश नरायण श्रीधर नाम विभासा ॥
गदाधर गोबीन्दो ग्यानी रामरसिक रस प्यासा ।
नाम महातम परम्परा सूँ थिर चित ल्यौ पद वासा ॥२७॥

भक्ति फरीदा ।
शाह सुलतानि काजी महमद हेतम भक्ति फरीदा ।
कूटण मूहण निपट निरञ्जन दादु शेख बजींदा ॥
गोपीचन्द भरतरी गोरख गालव चिमन मुडासा ।
नाम महातम परम्परा सूँ थिर चित ल्यौ पद वासा ॥२८॥

नाम के रस की ।
बारा पंथ निरंजनि साधु हुए नाम के रस की ।
ररंकार परवाणी संतजी परवा नहीं मन किसकी ॥

धुनि में ध्यान ज्ञान के ज्ञाता मिळि रकार निवासा ।
नाम महातम परम्परा सूं थिर चित हवो पद वासा ॥२६॥
बड़े महंत किरपाल दयालू सबहिन सूं किरपालम ।
ररंकार रत मन के त्यागी मिल गये राम हुवालम ॥
रामचरणजी राम बिराजे मन की पूरे आसा ।
नाम महातम परम्परा सूं थिर चित हयो पद वासा ॥३०॥
रामचरणजी रामचरणजी उचरत लय हुइ पावम ।
सतगुरु मेरा ऐसा समरथ जिनको एह परतापम ॥
सहज समाधी मती अगाधी जाणे कोई जिज्ञासा ।
नाम महातम परम्परा सूं थिर थिर हयो पद वासा ॥३१॥
जन सुरतराम कहु प्रमहंसा सदगुरु मेरे सीसा ।
राजा राम सकल घरमन को मोहि कियो बकसीसा ॥
नाम महातम छन्द बतीसी करत सुनत दुख नासा ।
नाम महातम परम्परा सूं थिर चित हयो पद वासा ॥३२॥

चेतावनी बोध (३)

राम गुरु सूं वन्दना, जन सुरतराम दिल सोध ।
कृपा करो सब संत जू, चेतावणी करूं बोध ॥१॥
सुणे सामले कोइ जो, उपजे अति आनंद ।
जन सुरतराम रामै भज्यां, कटे कर्म का फंद ॥२॥
जठर अगनि ज्वाला जहं कहिए । ताके बीचि किसी बिधि रहिए ॥
जहाँ नीर की पिणग जमाई । राम नाम जपल्यो रे भाई ॥३॥
राम गुंसाई दीन दयाला । उदर जु मांहि करी प्रतिपाला ॥
ताहि बिसर क्यूं खोटा खाई । राम नाम जपल्यो रे भाई ॥४॥
आदू ऐक निरञ्जण रामा । ताते उपज्यो ब्रिहमंड धामा ॥
ता मधि सबही संत समाई । राम नाम जपल्यो रे भाई ॥५॥
ना कोइ साथी ना कोइ संगी । ऐको जासी आप असंगी ॥
कोइ पिता न ना कोइ माई । राम नाम जपल्यो रे भाई ॥६॥
ना कुइ नारी ना कुइ नाती । न कोइ जाती नहि कोइ पांती ॥
ना कोइ बन्धु पिता न माई । राम नाम जपल्यो रे भाई ॥७॥
न कोइ माया न कोइ काया । न कोइ धाम नहि कोइ भाया ॥
निशदिन राम करत है धाई । राम नाम जपल्यो रे भाई ॥८॥

चढ़ि गज बाजि बहुत नर फूले । राम धणी कूँ धंधा भूले ॥
काल तके ज्यूँ कुतो बिलाई । राम नाम जपल्यो रे भाई ॥९॥
सर्व मुलक में करते राजा । रात दिवस बाजे घर बाजा ॥
चल गये कोइ खबर न पाई । राम नाम जपल्यो रे भाई ॥१०॥
पहरे तन पर मलमल खासा । नाना गंध ज लेवे बासा ॥
षट रस भोजन स्वाद कराई । राम नाम जपल्यो रे भाई ॥११॥
स्वाद बाद कूँ सब जग चावे । राम नाम सुपने नहिं भावे ॥
ताते मूरख बहु दुख पाई । राम नाम जपल्यो रे भाई ॥१२॥
आंगण मङ्गल गीत गवावे । मरबे की कछु खबर न पावे ॥
सोवतड़ा तेरा नहिं कोई । राम नाम जपल्यो रे भाई ॥१३॥
सुपना में छोडे घर बारा । और और तब करे पसारा ॥
यो संसार सुपनवत जाई । राम नाम जपल्यो रे भाई ॥१४॥
यो जग सबही जानों सुपना । आंख खोल देखे नहीं अपना ॥
मोह फांसि में कांइ बंधाई । राम नाम जपल्यौ रे भाई ॥१५॥
सब जग जाय रहै नहि ऐका । क्या परजा क्या भूपति भेखा ॥
भजन करे दत्तब रह जाई । राम नाम जपल्यो रे भाई ॥१६॥
भली बुरी दुइ इकसी बोई । जो करसी जो कीरति होई ॥
राम भज्यां निर्भय घर जाई । राम नाम जपल्यो रे भाई ॥१७॥
चाले जोइ रंक अरु राना । क्या तपसी क्या देव रु दाना ॥
शशि रवि तारा कोइ न रहाई । राम नाम जपल्यो रे भाई ॥१८॥
रावण गया रह्या नहिं कंसा । कौरव पाण्डु यादव बंशा ॥
बडे बडे जन केते भाई । राम नाम जपल्यौ रे भाई ॥१९॥
ब्रह्मा विष्णु महेश्वर देवा । काल अचानक इनकूँ लेवा ॥
मृत्यु लोक की कूण चलाई । राम नाम जपल्यो रे भाई ॥२०॥
इन्द्र जाय इन्द्रासण छांडी । इन्द्राणी तब फिरै न आडी ॥
आपण स्वारथ सर्वं मिटाई । राम नाम जपल्यो रे भाई ॥२१॥
अपणी अपणी करहैं अंधा । गाल बजाय फुलावे कंधा ॥
जमकै द्वारे पकड़ मँगाई । राम नाम जपल्यो रे भाई ॥२२॥
लालच लोभ कदे नहि छूटे । मांही बारे ज्यूँ त्यूँ लूटे ॥
ज्यूँ मूँसे पर तके बिलाई । राम नाम जपल्यो रे भाई ॥२३॥
अैसे मूढ़ हरामी गंधा । निशि सोवे दिन करि है धंधा ॥
जम्म खड़े सिर करत बड़ाई । राम नाम जपल्यौ रे भाई ॥२४॥
जम के द्वार पड़े बहु मारा । कहो तहँ कूण करै संभारा ॥
आपणीं भुक्ते करी कमाई । राम नाम जपल्यौ रे भाई ॥२५॥

जीव पुकारे बहु दुख पावै । मुकत होइ तो ताहि छुड़ावै ॥
भजन कियाँ जम द्वारे न जाई । राम नाम जपल्यो रे भाई ॥२६॥
चेतावनि यह बोध जु सुनत सकल सिध होइ ।
जन सुरतराम जो हरि भजे परम मुक्त वे सोइ ॥२७॥
जन सुरतराम सब जग कले कहा देव अवतार ।
रहसी सतगुरु को शबद राम नाम ततसार ॥२८॥

कका बतीसी (४)

सतगुरु कूं नित बन्दना नमस्कार नित राम । सब संतन की महर सूं करूं ग्रंथ कका बतीसी नाम ॥१॥
कका–किरपा कर गुरुदेवजी, लियो शरणागत मोय । दियो भजन निज ब्रह्म को, सार्‌या कारज सोय ॥२॥
खखा–खूब भयो मन भजन मधि दुन्दरता गइ भाग । और दिशा चित ना चलै रह्यो चरण मन लाग ॥३॥
गगा–ग्यान भयो परकाश तब हरि सरबंग दरशाय । खाली कहुं दीसे नहीं सचराचर मधि पाय ॥४॥
घघा घट में बस रह्या घट सूं न्यारा नाहि । जैसे जल मधि तरंग है नीर तरंग क माहि ॥५॥
ङना नाम उच्चारतां निकसे पाप अघोर । भबंग दूर जाय घर माँहि सुणि मोरां हुंदी सोर ॥६॥
चचा–चौरा पलट नरतन मिल्यो सो हरि के हित लाय । फेर नरातन ना मिले कीजे कोटि उपाय ॥७॥
छछा छांडि सहकामना भजिये केवल ब्रह्म । याकी कहूँ विशेषता त्रय जुग सिरे धरम्म ॥८॥
जजा–जुग जुग मांहि राम को ध्यान जानिये सार । पै कलियुग मांहि नाम की महिमा अधिक बिचार ॥९॥
झझा झगड़ो नाम बिनु सब परिहरिये दूर । कलि इन कारज ना सरै भासत संत समूर ॥१०॥
ञना नवधा भक्ति सँग कलियुग खैंचाताण । दशधा सुमरण राम को धार्‌या होय कल्याण ॥११॥
टटा–पकड़ि टेक प्रहलाद जन पकड़ी दास कबीर । गह नामदेव छांडि नहिं सही जु त्रास शरीर ॥१२॥
ठठा–ठीमरताई राखिये मत उलझै भाई । जैसे सरवर अथग में बहु नदियां आई ॥१३॥
डडा डिगपच छांड कै धर हरि को विश्वास । हानि बृद्धि करड़ी बखत मत हरिपद होय उदास ॥१४॥
ढढा–ढोर बुद्धी समझै कहा हरी धरम्म प्रभाव । कर्म करै भर्मंत फिरै कै पेट भरन को चाव ॥१५॥
णना–निशि बासुर भ्रमता फिरै जगत विषय के हेत । त्वचा रसन सुख कारणे चौरासी दुख लेत ॥१६॥
तत्ता तिरबा कारणे नरतन पायो आज । अपणो लख संसार कूं करिहै अंध अकाज ॥१७॥
थथा थिती सब लूट कै देसी सब छिटकाय । पीछे बिरधा बृषभ सम घासहुँ नाहीं खाय ॥१८॥
ददा दिल में देख ले कहा चलत है संग । सुत नारी सम्पति विभव सब तज जाय अनंग ॥१९॥
धधा–धनपति रावण बाजतो कुल कुटुम्ब सब भाय । कुल कञ्चन सँग ना चल्यो सो होइ छार उड़ाय ॥२०॥
नन्ना नीकां देख कै तज मोह माया संग । सदगुरु शरणै होय कै भजिये राम अभंग ॥२१॥
पपा–प्रीति करो परब्रह्म सूं जगत प्रीति छिटकाय । कठिन काल करड़ी बखत हरि बिनु कोइ न सहाय ।२२।
फफा–फरक रहो संसार सूं गरक राम पद मांहि । सतगुरु चरणां चित धरो सहज काज सर जाहि ॥२३॥
बबा–बार बार मिलबो नहीं नर नराण अवतार । तहि सुर सुरपति बंछवे शिव ब्रह्मा विष्णु विचार ॥२४॥

भभ्भा भक्ति कारणे नरतन बंछत ऐह । नरतन पाय न हरि भजे सो नर जानि कवेह ॥२४॥
ममा— मर्कट सम वे जानिये नरतन पारख नांहि । विषय जु सूकर कारणे करत हीर न खांहि ॥२५॥
वावा— या बिरियां तू चेत रे खोवे मत अब वाद । जनम सुधारण रामजी ताकूं करिये याद ॥२६॥
ररा रसना राम भज बेगा बेगी बीर । श्वास अलेखे जात है हरि भज ले गुरु सीर ॥२७॥
लल्ला लै कूं लायके भजिये केवल राम । राम भजन करतां सही पावेगा निज धाम ॥२८॥
वा वा वारि नाम की पल पल बारम्बार । सुमरत ही सब मल गया यो किय सदगुरु उपकार ॥२९॥
सस्सा सदगुरु कर दया कियो जीव कूं पार । ऐसे गुरु कूं कीजिये वन्दन बारम्बार ॥३०॥
हहा हरी गुरु महर कर दई बुधि ऐह मोह । ऐह ग्रन्थ सुण हरि भजे ता कारज सही होइ ॥३१॥
कका बतीसी ग्रंथ मध भाख्यो सुमरण सार । वांच विचारे जो कोइ जन सुरतराम होय पार ॥३२॥

भ्रम खण्डन (५)

जंतर मंतर नाटक चेटक करिहैं आनम घाता ।
तंतर टोटक टामण कामण परगट खोटा खाता ॥
भूत परेत वीर आराधे नरक पड़ेगा सोई ।
राम भजन बिनु गति न तिरन की करि देखो सब कोई ॥१॥

देवी देव सीतला भैरव पाबू खेतरपाला ।
रिगत्यो रेवत पितर अऊता सती सोक को साला ॥
पात घड़ावे गल पहरावे राम विमुख दुख होई ।
राम भजन बिनु गति न तिरन की करि देखो सब कोई ॥२॥

जैनी जुल्मी जुल्म कमावे कर्म कर्म कह बोले ।
खोटा कर्म न छोड़े मूरख दसे दया के बोले ॥
दया कहै अरु पाले नाहीं पाले सच्चा सोई ।
राम भजन बिनु गति न तिरन की करि देखो सब कोई ॥३॥

गावे नाचे हाथ हिलावे ताता थेई ताना ।
अनन्य भक्ति प्रेम परकासा सो नहिं जगत रिझाना ॥
मन की आस मेट भज भगवत ध्यान सिद्ध तब होई ।
राम भजन बिनु गति न तिरन की करि देखो सब कोई ॥४॥

बैठ इकंतर साधे पवना कष्ट सिद्धि के काजा ।
भलो बुरो सिध वचन हमारो आवे राणा राजा ॥
भलो बुरो सिध वचन हमारो आवे राणा राजा ॥
भलो बुरो कर्ता के सारे यूंही करणी खोई ।
राम भजन बिनु गति न तिरन की करि देखो सबकोई ॥५॥

कर्ण नासिका दूजा देवे खान पान गुर गावे ।
गई वस्तु को भेद बतावे या दिसि में जा लावे ॥
जगत रिझावन भले कहावन भूला मारग सोई ।
राम भजन बिनु गति न तिरन की करि देखो सब कोई ॥६॥
नेती धोती नोली कर्मा धांत धोइ मल काढ़ै ।
संख पखारन कुंजर किरिया बस्ती किरिया काढ़ै ॥
कहै निरोगी रोग न व्यापे कर्म गति नहि जोई ।
राम भजन बिनु गति न तिरन की करि देखो सब कोई ॥७॥
कोई उलिहैं गहि जाइ कोई जीवत को ले माटी ।
कोई ब्रह्म भूलि जिव भाखे मूंडै बांधे पाटी ।
बेला तेला अरु चन्द्रायण व्रत पपीला होई ।
राम भजन बिनु गति न तिरन की करि देखो सब कोई ॥८॥
अन्न छांड़ फल फूल अहारा को जल पीवे दूधा ।
स्वर्ग नर्क का कर्म कमावे हरि मारग तजि सूधा ॥
भूल्या भरमी भग सूं बंध्या सुख दुख फल है दोई ।
राम भजन बिनु गति न तिरन की करि देखो सब कोई ॥९॥
कोइ आन को जाप जपावे शत्रु मारण काजा ।
कोइ मोहनी जड़ी जमावे सेवक बस हो ताजा ॥
हद बेहद चर्चा कर भाखे अगम गम्म हम जोई ।
राम भजन बिनु गति न तिरन की करि देखो सब कोई ॥१०॥
कोई ज्योतिषी पत्री देखे भला बुरा ग्रह भाखे ।
अपने स्वारथ दान करावें दम टूटा नहि राखे ॥
कोइ दोष कोइ बूझा करहैं दीपक जोइ भुलोई ।
राम भजन बिनु गति न तिरन की करि देखो सब कोई ॥११॥
कोइ पीर पैगंबर धोके अजमति देहैं भारी ।
कहै औलिया शीश नमावे भरे मजीदा थारी ॥
काजी मुल्ला अर्थ कतेबी करें शुद्ध नहि होई ।
राम भजन बिनु गति न तिरन की करि देखो सब कोई ॥१२॥
कोई भर्मी भर्म दृढ़ावे जप तप सेती लागा ।
कर्म कराके मुक्ति बतावे राम नाम सूं भागा ॥
ग्यान बतावे ब्रह्म दृढ़ावे विषय दृष्टि नहि कोई ।
राम भजन बिनु गति न तिरन की करि देखो सब कोई ॥१३॥
सप्तपुरी को म्हातम गावे नौ ऊखर असनाना ।
मरण समय काशी कूं ध्यावे कर्म गति नहीं जाना ॥

सुची असुची भूमि बतावे सकल ब्रह्म नहि कोई।
राम भजन बिनु गति न तिरन की करि देखो सब कोई ॥१४॥
कोई पुण्यी कोई पापी नर्क स्वर्ग दुई वासा।
ऊँच नीच बहु देही धारे कहूँ नहीं सुख सासा॥
तिरण काज बहु कष्ट कमावे गुरु बिन गम्म न होई।
राम भजन बिनु गति न तिरन की करि देखो सब कोई ॥१५॥
गुरु सूँ ज्ञानी गुरु सूँ ध्यानी गुरु सूँ तत्व प्रकाशा।
गुरु सूँ गैला गुरु सूँ चेला गुरु छुडावे पासा॥
गुरु सूँ अणभै अगम प्रकाशे गुरु वासना खोई।
राम भजन बिनु गति न तिरन की करि देखो सब कोई ॥१६॥
सतगुरु मातपिता कुल बन्धू गुरु काटे जम फंदा।
जग का जीव मलिन बुधि गंदा गुरु मिल होवे बंदा॥
त्रिसना तरक मिटावे सतगुरु सुरति शब्द में पोई।
राम भजन बिनु गति न तिरन की करि देखो सब कोई ॥१७॥
सारा सार विवेक विचारे सो सतगुरु सूँ पावे।
भरम भाड़ सूँ तुरत बचावे साँचा पंथ बतावे॥
गिरा गँभीर उचारे अणभै बंध मुक्ति कहु दोई।
राम भजन बिनु गति न तिरन की करि देखो सब कोई ॥१८॥
गुरु कूँ वंदन मेट्या द्वन्द्वन काट्या भर्म विकारा।
मैं शरणागति तुमरी स्वामी पल पल बारम्बारा॥
नमो गुरुजी नमो गुरुजी भय भ्रम भागा दोई।
राम भजन बिनु गति न तिरन की करि देखो सब कोई ॥१९॥
नमो गुरुजी नमो गुरुजी राम नाम तत दीना।
सिकल विकल मेट्या मन धोखा सुरति शब्द में भीना॥
जन सूरतराम कहै प्रमहंसा संशय सरका खोई।
राम भजन बिनु गति न तिरन की करि देखो सब कोई ॥२०॥

सत्संग सार (६)

नित्य नमो गुरुदेव कूँ संत जु सिरजणहार। जन सुरतरान अब महर सूँ कहूँ ग्रन्थ जु सत्संगसार ॥१॥
सत्संगसार ग्रन्थ ज कहुँ देहु बुद्धि गुरु राम। जन सुरतराम ताकुँ सुनत लहै अचल विश्राम ॥२॥
विश्राम लहै सत्सँग सूँ कहै बेद जन सोइ। जन सुरतराम सत्सँग बिनु सुलझे नाहीं कोइ ॥३॥
सुलझे नहीं सत्संग बिनु कोटिक करै उपाइ। जन सुरतराम साँचो कहै साध संगति सुख पाइ ॥४॥

साधु संगति में अति सुख पावे । शेष महेश मुख अैसे गावे ॥
ब्रह्मा वेद जु भाखे भाई । साधु संगति सूं मुक्ति पठाई ॥५॥
साधु संगति सनकादिक करे । जो में आइ ध्यान नित धरे ॥
साधु संगति सम सुक्ख न भाई । साधु संगति सूं मुक्ति पठाई ॥६॥
साधु संगति सूं नारद तिरिया । वांका काज सहज हि सरिया ॥
साधु संगति तो है अधिकाई । साधु संगति सूं मुक्ति पठाई ॥७॥
साधु संगति सूं प्रीक्षित तिरिया । सब सूं जान उतम ऐ किरिया ॥
याके तुल्य और नहि कोई । साधु संगति सूं मुक्ति पठाई ॥८॥
नारद संग प्रहलाद सुख पावे । अैसे संतजन सच्चे गावे ॥
गर्भ मांहि तो भेद बताई । साधु संगति सूं मुक्ति पठाई ॥९॥
साधु संगति सूं ध्रुवजी राजी । दिल की दुबध्या सबही भाजी ॥
करिहि राज वैकुंठा जाई । साधु संगति सूं मुक्ति पठाई ॥१०॥
अजामील से पापी होते । चोखी बात कदे नहि जाते ॥
सप्तऋषि जहां मिले जु आई । साधु संगति सूं मुक्ति पठाई ॥११॥
एक बेन जो माने सजना । मिट्टी त्याग करायो रजना ॥
जाके पाप सकल मिट जाई । साधु संगति सूं मुक्ति पठाई ॥१२॥
बाल्मीकि लिए मान जु बेना । अणभै वायक अगम जु कहना ॥
रामचन्द्र सो लिय उतराई । साधु संगति सूं मुक्ति पठाई ॥१३॥
साधु संगति सब सूं अधिक जानत है सब कोइ । बड़ भागो सो करत है जन सुरतराम कह सोइ ॥१४॥
लोहा कंचन करत है पारस अैसे जान । जगत जीव जन करत है जन सुरतराम सत मान ॥१५॥
बिनु सत्संग दुख पावे भारी । फिर आवो तिहुं लोक मंझारी ॥
वेद शास्तर जन सत भाखे । सत्संग महिमा सब अभिलाखे ॥१६॥
मलिया गिरि संग चंदन होई । दारु सुभाव पलटिया सोई ॥
भ्रंग जु लट कूं भ्रंग बनाई । वाको संग असो है भाई ॥१७॥
अैसे हरिजन संगति मानूं । जीव बुद्धि पलटी ही जानूं ॥
सत्संग मांही राम जु गावे । जीव पलटि शीव होइ जावे ॥१८॥
दही तरवर जो एक जु होइ । भवंग छांह तल निकसे कोई ॥
तक्ष को विष जु सबे मिटाई । अैसे संगति निरमल ताई ॥१९॥
निर्मल मणि सत्संग है सकल जहर हर लेह । जन सुरतराम सांची कहै आतम निर्मल ऐह ॥२०॥
निर्मल होय राम रस पीवे । होई अमर जुगे जुग जीवे ।
जासू जानूं संगतीसार । ताहि करत जीव होवे पार ॥२१॥
जहाज रूप सत्संगति जानूं । ता मधि बैठ्या पार लंघानू ॥
जग जल तिरे जु सत्संग सेती । और उपाय तिरे नहि केती ॥२२॥
सत्संग तूंबा जानीए बांध्यां होवे पार । जन सुरतराम बांधे नहीं ताते बूडै धार ॥२३॥

बार जु मांहि दुखी है जे सत्संग नांहि कराइ। जन सुरतराम सांची कहै बिनु सत्संग दुख पाइ ॥२४॥
दुख पावें सत्संत बिनु तीन लोक के मांहि। जन सुरतराम सुख चाहिए चितवण संग कराहि ॥२५॥
जलावनि सत्संग है चितवन कोइ कराइ। जैसी चितवन करत है तैसा ही रस पाइ ॥२६॥
साधु संगति नैनो गही थिरत नाम तन ऐह। जन सुरतराम सांची कहै राम रस ही लेहु ॥२७॥
अमृत रस ही पीजिए सत्संगति के मांही। जन सुरतराम सांची कहै जलन सबे मिट जाहि ॥२८॥
जलन मिटे सत्संग से सबही ताप बिलाइ। जन सुरतराम सत्संग सूं बहुत जीव तिर जाइ ॥२९॥

साधु संगति की महिमा भारी। खट दिलोप मुहुरत कीअ पारी ॥
निर्मल होइ राम मे मिलिया। साधु संगति मिल कारज करिया ॥३०॥
साधु संगति सूं फंद कटाई। गिनका जैसी लई बचाई ॥
सुवा पढ़ावत निर्मल होई। पुरी सहित तिर गई ज सोई ॥३१॥
साधु संगति सूं चोर बचाई। शूली सज्जा दूर मिटाई ॥
बिनु संगति तो सूली दीया। चोरी करत पकड़ ही लीया ॥३२॥
साधु संगति सूं सांच जु पाई। घोड़ो पलटि श्रोर होइ जाई ॥
साधु संगति तो है ततसार। जन सुरतराम जग होइ उधार ॥३३॥

अनेक कुबुधि भांडा भर्‌या झूठ कपट दिल मांहि। जन सुरतराम जिव उधर्‌या एक सांच डर आहि ॥३४॥
बूडा तिरिया साधु संग, मारग दिया बताइ। जन सुरतराम सांची कहै रांड जु रोवे आई ॥३५॥
साधु संगति खुरसाण है कर्म काट कर दूर। जन सुरतराम सांची कहै झलके मुख पर नूर ॥३६॥
नूर झलके भजन सूं कहै संत समझाइ। जन सुरतराम सांची कहै ताते भजन कराइ ॥३७॥

अब तो सुमरण करिऐ भाई। सुमरण बिनाँ सुक्ख नहि पाई।
सुमरण ते सिंधु शिला तिराई। जमुना जल गुजरी लंघि जाई ॥३८॥
सब धर्मन में धर्म विशेका। जाकी जोड तुले नहीं ऐका ॥
तुलसी पत्र लिख्यो है नामा। सर्व धर्म सिर भारी रामा ॥३९॥
कृष्णदेव अवतार जु होई। सतभामा नारद दीअ सोई ॥
वांकी लैर चले अवतारा। नारद ऋषि कूं लागे प्यारा ॥४०॥
सोला हजार एक सो राणी। वांकी प्रीति अवतारा सुं ताणी ॥
जोइ जोइ रथ निकस सब चाली। सतभामा कूं काढ़े गाली ॥४१॥
चलताँ चलताँ नारद पाये। किसनदेव भये जहाँ ठाये ॥
नारद ऋषि कूं अरज कराई। हम पति कूं तुम कहं ले जाई ॥४२॥
नारद ऋषि तब बोले ताँही। सतभामा मम दान कराही ॥
इनके पाइ बहुत हम लागी। एक दिया ले जाइ क्यु आगी ॥४३॥
इनके तुल लीजे कुछ और। ए बहु राण्यां सिर जाणो मोर ॥
हीरा पन्ना ले तुला तुलाई। एक तखड़े में उभय चढ़ाई ॥४४॥
चाँदी सोना बहुत भराई। ताके सम तुले नही कांई ॥
माणक मोती मणी अपार। सम न तुले राण्यां गइ हार ॥४५॥

कृष्णदेव तब युक्ति बताई । राणी रुकमणी लई बुलाई ॥
तुलसी पत्र लै लिख्यो जु राम । तुमरा सर जावे सब काम ॥४६॥
रकार मकार जु मांडे राणी । कृष्ण कह्यो सो युक्ति जु जाणी ॥
लिखकर राम तखड़ मेलूवाई । अवतार पलड़ो ऊँचो जाई ॥४७॥
राम नाम सम और न कोई । धरी देह सो हलकी होई ॥
नाम जु महिमा कहत न आवे । अनंत कोटि जन ऐसे गावे ॥४८॥
अधिक तत्व सो जाणऊ राम । नारद ऋषि लिए आने श्याम ॥
वहां सूं चले आपणे थान । एकाग्रचित्त धरि है ध्यान ॥४९॥
सुमरण नित ही करत है, शेषनागजी सोइ । जन सुरतराम सांची कहै, सहंसमुखां ध्वनि होइ ॥५०॥
सहंस मुखां ध्वनि होत है, ररंकार की घोर । जन सुरतराम सांची कहै, निर्मल भयो जिहि ठौर ॥५१॥
राम राम गाइ मांहि मिलाया । बिन गायां हरि नांही पाया ॥
तासूं राम जु गावो भाई । भक्ति करत हरि मांहि समाई ॥५२॥
ध्यान धरत राम जु हुवा, जुदा नहीं है कोइ । जल में लूण जु पड़ गया, जन सुरतराम जल होइ ॥५३॥
जल में जल जु मिल गया, भेदी भेदी नांहि । सुमरण करतां सुरतराम, जीव अगति नहिं जांहि ॥५४॥
जीव अगति भइ दूर, पूर परम पद पाइया । कर सुमरण भरपूर, निश्चल गगन मढाइया ॥५५॥
निश्चल होइ गगन में चढ़िया । बाहर साधन सब ही खंडिया ॥
एक टकटकी ध्यान जु लाया । निर्मल होइ आतम पति पाया ॥५६॥
सुरत सुन्दरी बैठी जाई । राम पीव सो परसे ध्याई ॥
अनहद बाजा बाजे जाँही । बिन ही मुख राग जहाँ गाई ॥५७॥
बिन कर तो तहँ बाजे तूरा । ब्रह्म सभा जहँ है भरपूरा ॥
भक्ति करत भगवत कूं पाई । बिना भक्ति वा देशन जाई ॥५८॥
अब हि कहूँ जु भगती विवेका । जा में परसंग बहुत अनेका ॥
भगति करत ही जावे माना । निश्चल होइ कर लागे ध्याना ॥५९॥
दुबध्या रहित सो जानूं ज्ञाना । दोष निवार धरे नित ध्याना ॥
घट घट मांही ब्रह्म विचारे । ज्यूं अवनी में नीर जु सारे ॥६०॥
घाट बाध कहूँ जाने नांही । हर सरवगता आप जु मांही ॥
है आकाश सकल भरपूरा । ऐसें ब्रह्म सकल में नूरा ॥६१॥
चकमक मध्य आग जू होई । बाहर परगट भाड़ या सोई ॥
पुहुप गंध पय घृत जू मानूं । तिलां मांहि ज्यूं तेल बखानूं ॥६२॥
ऐसें जान करनि कोइ करे । जाके अन्दर अमृत ही भरे ॥
आपूं आप आपही पावे । बेद साध ही जैसा गावे ॥६३॥
आप आप में लखीया, भरम जु दीए खोइ । जन सुरतराम सांची कहै, सुख पद लीजे सोइ ॥६४॥
सुख मांहि गलतान होइ, जासूं चिंता दूर । जन सुरतराम सांची कहै, नित ही रहै हजूर ॥६५॥
ज्ञान जु सोही जानिए, हरिजी कूं पावे । जन सुरतराम हरि ना मिले, तो कूकस ही गाहबे ॥६६॥
कुकस गाहबो जानिए, राम भजन बिन वीर । जैसें आभा गगन में, जन सुरतराम बिन नीर ॥६७॥

बिना नीर का बादला, यूं फोकट ज्ञानी जान। सुगत सुज्ञानि सुलझिया, अज्ञानी उलझान ॥६८॥
बुद्धिमान गुण सुलझिया, बाकी का उलझार। जन सुरतराम साँची कहै, बिन अकल न ज्ञान विचार ॥६९॥

अकल बिना नहीं पावे ज्ञान। अकल बिना नहीं पावे ध्यान।
अकल बिना नहि सुक्ख जु होई। अकल बिना नर सरवस खोई ॥७०॥
अकल सोही गुरु सरणे आवे। अकल बिना चौरासी जावे॥
ब्यार खान में दुखी जु होई। अकल बिना नर सरवस खोई ॥७१॥
अकल होई तो मिल है राम। राम रट्याँ सूं होय नहकाम॥
अकल बिना है भूंडू सोई। अकल बिना नर सरवस खोई ॥७२॥

अकलवान सो जानिए, नहीं धुगावे धीर। जन सुरतराम साँची कहै, ते थिरता मन धीर ॥७३॥
धीर सदाई रहत है, अकलवान के मांहि। जन सुरतराम साँची कहै, उलझ कदे नही जाहि ॥७४॥
उलझै नांहीं कोइ, अति ऊंडा गहरा घणा। जहं राग दोष नहि होइ, अब कहुँ धार विराग की ॥७५॥

अबै कहुं वैराग की धारा। जंडे राग बीव होइ पारा॥
माया मोह सबही जु निवारे। नहीं किसी की आशा धारे ॥७६॥
कनक कामणी त्यागे भाई। रंभा जैसी केती आई॥
अडिग ध्यान धरता है सोई। माया छल सूं छले न कोई ॥७७॥
भूत वित की चिंता नहि राखे। सुरति समेट राम दिश झांके॥
ए गुरु गम का जानूं ज्ञाना। बड़ भागी सो धरें ज ध्याना ॥७८॥
रिधि सिधि लक्ष्मी रह नित चेरी। तो भी हरिजन रखे न नेरी॥
ऐ जानत है माया बैरी। इनसूं बंध्यां मुक्ति नहि सेरी ॥७९॥
ताते हरिजन नेह ना करे। नेह करतां चतुरासी परे॥
ताते उलटी तांणे भाई। सतगुरु सरणे सुक्ख जु पाई ॥८०॥
आशा धरे न राखे संचै। जगत जाल सूं मन कूं खंचै॥
आई पाई भिक्षा पुन करे। जाका काज सहजे ही सरे ॥८१॥

विराग धारणा जाणिए, जाकूं कहूं न राग। जन सुरतराम साँची कहै, एक रमईया लाग ॥८२॥
राग मिटि आनन्द भया, लगी जु परब्रह्म लाग। जन सुरतराम भज राम कूं, काल भीत गये भाग ॥८३॥

कोइ कह याकूं काल जु मारे। हरिभज नहीं काल के सारे॥
कोइ कह याकूं सर्प जु मारे। सर्प जु सांसा के नहीं सारे॥ ८४॥
कोइ कह याकुं सिंह जु मारे। नाहीं क्रोध सिंह के सारे॥
कोइ कह याकुं स्याली मारे। लालच स्याली के नहि सारे ॥८५॥
कोइ कह याकुं चीतो मारे। चिंता चीता के नहि सारे॥
कोइ कह याकुं भूत जु मारे। भर्म भूत के नाहीं सारे ॥८६॥
कोइ कह याकुं डाकण मारे। हरसा डाकण के नहीं सारे॥
कोइ कह याकुं पृथ्वी मारे। पाप पृथीवी के नहि सारे ॥८७॥
कोइ कह याकूं रीछ जु मारे। हूंस रीछड़ी के नहि सारे॥
कोइ कह याकुं बिजली मारे। माया बिजली के नहि सारे ॥८८॥

कोइ कहु याकुं ओला मारे। ओला सो गज के नहि सारे॥
कोइ कहु याकुं भूख जु मारे। आशा भूख जु के नहि सारे॥८९॥
कोइ कहु याकुं तिरषा मारे। विपता तिरषा के नहि सारे॥
कोइ कहु याकुं ठिग्ग जु मारे। मोह ठिगीं के नाही सारे॥९०॥
कोइ कह याकूं अग्नि जु मारे। चाह अग्नि के नाही सारे॥
कोइ कहु याकुं जल्ल जु मारे। लोभ हि जल के नांही सारे॥९१॥
कोइ कहु याकुं दगो जु मारे। दुर्मति दग्गा के नांही सारे॥
कोइ कहु याकुं जहर जु मारे। काम जहर के नांही सारे॥९२॥
कोइ कहु याकुं बैरी मारे। बैरी मन के नांही सारे॥
कोइ कहु याकुं तोप जु मारे। सरक तोप के नांही सारे॥९३॥
कोइ कहु याकुं गोली मारे। गोली गुमराइ नहि सारे॥
कोइ कहु याकुं शेल जु मारे। वचन शेल के नांही सारे॥९४॥
कोइ कहु याकुं तीर जु मारे। त्रिष्णा तीर जु के नहि सारे॥
और विघन हुआ बहु भारी। सुते सिद्ध जन भुगते सारी॥९५॥

इता त्रास दीनां सही, मारि सका नहि कोइ। मींच सूरज हि हाथ है, जन सुरतराम दिल जोइ॥९६॥
ऊगे आंथे है सही, जासूं दम घटि जाइ। छसै इकीस हजार ही, श्वास जु जाइ विलाइ॥९७॥
कोइ कहै जम मार है, जम भी मारे नांहि। पाप पुण्य सुख दुक्ख है, समझ देख मन मांहि॥९८॥

पुनि कहुं एक पुन्न को ब्योरो। जाकुं करत जीव होइ सोरो॥
ताते पुन ही कीजे भाई। एक राम में चित जु लगाई॥९९॥
पाप पुण्य का सुख दुख होई। ए निश्चय कर जानूं सोई॥
एक इतिहास फेरहि भाखूं। भिन भिन करके भेद जु दाखूं॥१००॥
इक नरपति ही जानूं भाई। आप जु पुण्य करै नहि कोई॥
और करे तो फिर है आडा। दुष्ट मता ए पकड्या गाढा॥१०१॥
वांकी एक जु दासी होई। छाने संत सेव कर सोई॥
इक रोटी बाहर कढवावे। रूखे बिरखे संत जिमावे॥१०२॥
एक नरपति और जहं होई। दुइ के राड़ मंडि है सोई॥
आम्हा साम्हा गोला बाई। तब दासि रोटी आडो आई॥१०३॥
चक्रमान जो रोटी होई। राजा आडी फिरहै सोई॥
गोली तीर पार हुय नांही। जो आवे जो रोटी मांही॥१०४॥
जब नरपति मन ज्ञान उपावे। कूंन भर्म मोहि आडो आवे॥
जीती राड़ बजाया तूरा। हैंवर गैंवर खड़ा बहु सूरा॥१०५॥
अपणा नगर चलत सो आय। ब्राह्मण जोशी लिया बुलाय॥
कूण पुण्य मैं कीन्हा भारा। मिल कर कहो विप्र तुम सारा॥१०६॥
जब ही विप्र जु बोल्या भाई। बड़ो राय तुम पुण्य कराई॥
जवही असैं राय कहाई। हम तो पुण्य कियो नहि काई॥१०७॥

जबही बोले विप्र जु अंसे । बिना पुण्य बचि जावो कैसे ॥
जहं तहं यांकी पूछ करावो । पूछत वाको भेद जु पावो ॥१०८॥
जबहि राय हेलो फिरवावे । पुण्य कियो कोइ मोहि बतावे ॥
जब राणी सब लइ बुलाई । तुम में दत्तव कुण कराई ॥१०९॥
तुम हर सेती पुण्य न कीना । मति कोइ राय पटा के छिना ॥
पुण्य करण की रहती.बहोत । सुणतही राय क्रुद्ध अति होत ॥११०॥
जब दासिन कूं लई बुलाई । इक दासी मन संक्या आई ॥
मति कहि राय आणही जावे । जाणत थका जु मोहि मरावे ॥१११॥
हाथ जोड़ ऊभी जब होई । हम तो पुण्य करयो नहि कोई ॥
जब इक दासी बोली अैसे । होइ बात सो भाखूं जैसे ॥११२॥
रोटी पुण्य जु एक कराई । खरी बात ए जानूं राई ॥
राजा बोले घनरी बाई । तुम पुनहि मोहि लियो बचाई ॥११३॥
राय सदाव्रत बांधियो दासी की सुण बात । जन सुरतराम सांची कहै सुकृत सूं सुख पात ॥११४॥
सुकृत नित ही कीजिये सुकृत आछो बीर । सुकृत सूं सुख होत है जन सुरतराम मिट पीर ॥११५॥
दुर्वासा जी चले सनाना । बहे सुरसरी जहां सयाना ॥
करत सनान कोपीन बुहाई । ऋषि का मन में शंका आई ॥११६॥
घर सूं चलि पाण्डव की नारी । वाकी बुद्धि रसालि जु भारी ॥
स्नान करन कूं घाट जाई । दुर्वासा का दर्शन पाई ॥११७॥
वहां सूं चलि दूसरे घाटे । कर स्नान ले कपड़ा छांटे ॥
वहां सूं उलटि फेरि जो आई । ऋषि को दर्शन फेरि कराई ॥११८॥
बहुत बार के ऊभा सोई । वां सूं हल्या चल्या नहि कोई ॥
द्रौपदी मन आशंका आही । ऋषि क्यूं ठाडा जल के मांही ॥११९॥
जब मन मांहि कियो विवेक । ऋषि अंग वस्त्र नहीं देखा ॥
तब ही द्रौपदी चीर फड़ाई । करि करि लीर ऋषि दिशा बलाई ॥१२०॥
किती लीर तो गई बुहाई । ऐक लीर ऋषि हाथ जु आई ॥
ले करि लीर ढ़काई काया । ता पीछे ऋषि बाहरि आया ॥१२१॥
जब ही लगी द्रौपदी पाई । लगकरि चरणां घर कूं जाई ॥
ऋषि भी चले अपने अस्थाना । जाइ स्थान लगायो ध्याना ॥१२२॥
एक समय जो ऐसो होई । जूवा खेल रच्यो है सोई ॥
नगर हस्तिनापुर में ख्याल । पासो कपट रच्यो भूपाल ॥१२३॥
दुर्योधन युधिष्ठिर दोई । जूवा खेलन लागे सोई ॥
हारे तबै युधिष्ठिर राजा । राज पाठ धन वनिता साजा ॥१२४॥
द्रौपदि लाऐ सभा मझारी । दुष्ट बुद्धि दुस्शासन धारी ॥
पाछी फिरत खेंचीयो चीर । करुणा जु करी मिटाई भीर ॥१२५॥

खैंचत चीर चली ना जाई। बधियो चीर पार नहि पाई ॥
द्रौपदि उलटि र हेरे भाई। दुष्ट बदन सो गयो मुरझाई ॥१२६॥
ऐक लीर को बधीयो पुन्य। द्रौपदी जग में भई जु धन्य ॥
हरि के जन की सेव कराई। जाकी प्रभु जी लाज रखाई ॥१२७॥
द्रौपदि चीर बधाइया, पड़या ढेर का ढेर। जन सुरतराम साँची कही, सुकृत कीजे फेर ॥१२८॥
सुकृत फेर जु करत है, मन में आनंद लाइ। जन सुरतराम साँची कही, सुकृत लाज रखाइ ॥१२९॥
सतजुगा के मांहि ने, दुभिख काल पड़ि सोइ। बूक बाकलादेत ही, विपर सुखी अति होइ ॥१३०॥
विप्र सुक्ख अति पाइयो, दान दियो तिहि बार। जन सुरतराम साँची कही, भयो चकराज विचार ॥१३१॥
चकराज जु पाइयो, पुनि कहुँ दीजे सोइ। जन सुरतराम साँची कही, पाप उदै दुख होइ ॥१३२॥
पाप उदै दुख पाइ है, सदा दुक्ख की खान। जन सुरतराम ई काम संग, भए बड़ हैरान ॥१३३॥
सहँस भगां इन्दर भयो, कलाहीन शशि जोइ। जन सुरतराम गौतम नारि देखो शिला ज होइ ॥१३४॥
इन्द्र गयो गौतम के घर ही। शशि कूँ देखि कूकड़ो कर ही ॥
गौतम ऋषि जब गये स्नाना। जमुना तटि जीव बोले नाना ॥१३५॥
हे महाराज कहाँ तुम आऐ। घरौं विघ्न सो कहु समझाऐ ॥
वहाँ सूँ चले विप्र जु पीछा। भयो विघ्न सो मन कूँ वीचा ॥१३६॥
बसत जु द्वारे ससि ही आड़ा। जहाँ दिया ऋषि धोवत छांटा ॥
कलाहीन तुम होज्यो भाई। ये श्राप मुख सूँ उचराई ॥१३७॥
पीछे निकसे इन्द्र ही भागा। अपने घर के मारग लागा ॥
पीछे ऋषि मुख सूँ यह भाखे। तेरे अंग सहँस भग राखे ॥१३८॥
ऐ जु श्राप ऋषि दीनाँ सोई। सो यह फेरि टलै नहि कोई ॥
जब ही इन्द्र भयो भे भोता। कोई भरे अरु कोई रीता ॥१३९॥
जबही इन्द्र जु करूना करहै। राम बिना मो दुख को हरहै ॥
जब आऐ बैकुण्ठ ज नाथा। ब्रह्मा महेश देव सब साथा ॥१४०॥
करैं अरज लघुताई भारी। तुम हो ऋसि बड़ परम मुरारी ॥
देव अरज अब तुम ही मानो। इन्द्र भग्ग सब दूरि करानो ॥१४१॥
तबहि अरज ऋषि मानी भाई। सबही मेटि लिलाट रखाई ॥
पाप तणाँ ऐह जानूँ दुक्ख। जामे नहीं रती भी सुक्ख ॥१४२॥
रती सुक्ख पावे नहीं, तीन लोक फिरि जोइ। जन सुरतराम हरि भजन बिन, जाइ नर्क गति सोइ ॥१४३॥
नरक जाइगा निजस नर, कहूँ तास का भेद। जन सुरतराम बे प्राणियाँ, भुगतैगा बहु खेद ॥१४४॥
अब ही कहूँ नरक का भेदा। तामें जीव बहु पावैं खेदा ॥
अष्टाबीस कुण्ड ही जानूँ। ता में दुक्ख बहुत ही मानूँ ॥१४५॥
कौन पाप ते नरका जाई। या को भेद कहो समझाई ॥
परगट भाखो भेद जु सारे। हम तो सतगुरु शरण तुमारे ॥१४६॥
संतजन निन्दा कीजे नाई। निन्दा कियाँ सूँ नरका जाई ॥
पर नारी कूँ तांके कोई। जाइ नरक में पड़ि है सोई ॥१४७॥

पर धन माही चित लगावे । ते नर तो नरकां मन भावे ॥
कोई पापी दोष लगाई । इन पापन सूं नरकां जाई ॥१४८॥
जीव हिंसा जो करिहै कोई । पड़े नरक में जाइ जु सोई ॥
वहां दुक्ख पावे बहुतेरा । सुक्ख जु दीसे नांही नेरा ॥१४९॥
सुख तो शुभ कर्मां सूं पावे । विक्रम मांही दुक्ख ज ग्रावे ॥
वेद साध सो ऐसे गाई । ग्रकलिवान गुरु गम सूं पाई ॥१५०॥

नरक जाइ है पाप सूं पाप जु कीजे नांहि । जन सुरतराम सांची कहे सूकृत मन में लाहि ॥१५१॥
सुकृत मन में लाइए मिनखा देही पाइ । जन सुरतराम तन उतम हुइ संता शरणे ग्राइ ॥१५२॥
संत शरण सुख पाइहै मिटे दुक्ख भै भीत । जन सुरतराम सांची कहे के संता को सीत ॥१५३॥
सीत प्रसाद महात्तम कहो सतगुरु तुम मोहि । ताहि लिया दुक्ख नासहै बुधि प्रकाश ग्रति होहि ॥१५४॥

सीत प्रसाद जु महिमा भाखू । होइ जिसो ज्यूं को त्यूं दाखू ॥
नाभो डूम ऐक जो होई । जाको सगो कुटुम नहि कोई ॥१५५॥
ताही बारसी छोडी भाई । नाभो चलतो गलते ग्राई ॥
वहां सन्त होते बहुतेरा । जनके चरण रह्यो सो नेरा ॥१५६॥
गुरु रामानंद को परतापू । जाके सिक्ख जपे हरि जापू ॥
सबे सिखन की साक्षय भारी । तिन में किसन बड़े पयहारी ॥१५७॥
उनके सिक्ख उभे बड़ होई । ग्रगरज कील नाम है सोई ॥
ग्रग्रज ध्यान मानसी धरे । नाभो ऊभो पीछो जु करे ॥१५८॥
ग्रगर सिक्ख इक साहु होई । गयो दिसावर खेपज सोई ॥
भरि के खेप पिछे चलि ग्राया । जहाज मांहि सब माल भराया ॥१५९॥
जहाज सिन्धु के मांहि चलाई । चलता चलता जहाज फटाई ॥
ग्रर्ध जहाज जल मांहि डुबाई । साहु कहै ग्रब कीजे काई ॥१६०॥
साहु ने जब उपज्यो ज्ञान । तबही धर्यो ग्रग्र को ध्यान ॥
ध्यान धरत ग्रग्रजी जाणी । नाभो बोल्यो जहाज तिरानी ॥१६१॥
ग्रग्रजजी जब बोल्या ऐसे । नाभा ठीक पड़ी तोहि कैसे ॥
यह परताप तुमारो स्वामी । मैं तो जात कमीणा नामी ॥१६२॥
तुम चरणोदक सीत जु पाई । तासूं मोही ठीक पड़ाई ॥
जबही ग्रग्र खुसी हुय बोल्या । सबही सतन का मत तोल्या ॥१६३॥
पारस मिलि लोह कंचन होई । लोह समान क्यूं बरते सोई ॥
गलीया को जल गंगा जाई । सब गंगोदक होइहै भाई ॥१६४॥
नाभो जाति नीच कुल हीना । सन्तन सरणे भयो प्रवीणा ॥
जांसूं पंगति याकूं लीज्यो । कह्यो हमारो सबहि कीज्यो ॥१६५॥
तुम कहो सो ग्राछी स्वामी । तुम चरणां हम लह्यो बिसरामी ॥
तुम ग्राज्ञा सो सिर पर धारें । हम तो लग्या तुम्हारे लारें ॥१६६॥

पंचित माँहि नाभा कूं लीन्हा । आप स्वरूप जानिए कीन्हा ॥
सीतप्रसाद जु महिमा भारी । ताकूं लियाँ कोइ रहे न विकारी ॥१६७॥
सितप्रसाद कि जानिये महिमा बहुत विशेष । ता आचरण कोइ करे तो कर्म रहे नहिं ऐक ॥
सीत चरणामृत लेतहि चित बुधि निर्मल होइ । जन सुरतराम साँची कहै मुक्ति परापति होइ ॥१६८॥
वेदव्यास अवतार जु होई । अनेक ग्रन्थ कीन्हाँ है सोई ॥
भारत आदि ले जानु भाई । करता तन में अग्नि जलाई ॥१६९॥
व्यास कह्यो ऐ कोई होई । तन में अग्नि लगी है सोई ॥
करे कल्पना मन में भारी । क्याँ सूं अग्नि बुझे यह म्हारी ॥१७०॥
ऐक समय जो ऐसो होई । नारद दर्शण पाया सोई ॥
हाथ जोड़ि के लागे पाई । करी अरज तन लागी लाई ॥१७१॥
जबही बोल्या ऐसे मूनी । तुम तो किया ऐक ही खूनी ॥
जासूं तेरे लागी लाई । तन माँही दुख जोसूं पाई ॥१७२॥
कुन खून कीन्हाँ मैं सोई । भाखो मोहि करूं सो जोई ॥
याको मोहि कहो तुम नामा । दुख पाया मैं कुन जु कामा ॥१७३॥
जब नारद ऋषि गिरा उचराई । ग्रन्थ बहुत तें कीन्हा भाई ॥
जामे जुध बहुतेरा गाया । जा बिच भक्ति अस नहिं लाया ॥१७४॥
जबहि व्यास यह अरज कराई । सत पुरुषाँ ग्रन्थ बहुत बनाई ॥
उनके ताप लगी नहीं कोई । याको अचरज आवे सोई ॥१७५॥
जब नारद ऋषि कहे फुरमाई । सत्पुरुषाँ जस हरि के गाई ॥
तुम्ही कुटलो गायो बीरा । जासूं तन में लागी पीरा ॥१७६॥
तबे व्यास बोले है ऐसे । ब्रह्मा पुत्र भये तुम कैसे ॥
भगवत के तुम होई मन्न । सकल जहाँनि तोहि कहे धन धन्न ॥१७७
जब नारदजी ऐसे कह्यो । ऐक दिवस मन आनन्द लह्यो ॥
असी मन में आसंक्या आई । कौन सुकृत सूं गति यह पाई ॥१७८॥
तब ब्रह्मा सूं अरज कराई । तुम सुत भयो कौन पुनि आई ॥
श्रीभगवान मन्न अधिकारा । सब संतन कूं लागे प्यारा ॥१७९॥
जबही ब्रह्मा गिरा उचराई । पूर्व कथा तोहि कहुँ सुनाई ॥
काशी नगर पुरी जो भारी । विप्र सुदर्शन ज्ञान अधिकारी ॥१८०
ताके दासी तुमरी माता । बाके तुम सुत भये विख्याता ॥
ऐक समय हरिजन तहँ आये । विप्र प्रीति करि दर्शन पाये ॥१८१॥
तब संतन सूं अरज कराई । यो दीदार परम सुख पाई ॥
संतन अरजि विप्र की मानी । वहाँ मास चहुँ रहे निधानी ॥१८२॥
थिरता करि जन विप्र घरि आये । तुम माता कूं सेव बताये ॥
तुम्हारी माता आज्ञा मानी । संत सेव कहो करूं निधानी ॥१८३॥

बहुत भाँति भोजन ले जावे । सत्पुरुषों ने जाइ जिमावे ॥
माता संगि सुत तू भी जावो । उन सन्तन को दर्शन पावो ॥१८४॥
वहाँ संत भोजन करवाये । पनवाड़ा ले दूरि नखावे ॥
पनवाड़ा तुम जाइ चटाई । एक दिवस जन निजरयों आई ॥१८५॥
एक जनाँ वहाँ सैन लखाई । दासी पुत्र सुवारथ पाई ॥
पनवाड़ा सो चाँच करावो । इक पनवाड़ो याहि दिवावो ॥१८६॥
तुम संतन सूं अरज कराई । भोजन क्षुधा मेरे नहि काई ॥
जबहि संत जु बोल्या बैन । बालक जान प्रसाद दियो ऐन ॥१८७॥
सो प्रसाद लियो है जानी । संतन कृपा करी जु निदानी ॥
ऐ प्रसाद सूं अधिको हेत । कणको कणको बीण जु लेत १८८॥
सब कणका तुम लेकर पावो । सीत प्रसाद महातम भावो ॥
जासु तुम बुधि निर्मल होई । तन विकार मन सर्वस खोई ॥१८९॥
कर चोमासो फिर जन रमिया । ता पीछे सुत तुम भी चलिया ॥
दौड़ दूर तुम पहुँच्या जाई । संतजनन के लागे पाई ॥१९०॥
संत कहै लड़का क्यों आया । मन उपजी सो भाखो भाया ॥
यो वैराग मोहि अब स्वामी । राखो चरणा अन्तरजामी ॥१९१॥
जब स्वामीजी बोल्या ऐसे । हम वैराग तोहि दे कैसे ॥
तुम माता के सुत हो एका । और दूसरा नाहि जु देखा ॥१९२॥
तासूं अब तुम पाछा जाई । पुत्र बिना माता दुख पाई ॥
जीवे जौलूं टहल करावो । पहुँचे शान्ति तबे बन जावो ॥१९३॥
आज्ञा मान उलट फिर आया । केई वर्ष संग मात रहाया ॥
घरिहै ध्यान ऐहु मन लावे । कब मरे माँइ तबे बन जावे ॥१९४॥
एक दिवस असो भयो आई । मुई मात तबे बन धाई ॥
कहाँ जाइ कर ध्यान लगायो । उर संतन को विरह बढ़ायो ॥१९५॥
तुम विलाप कीन्हो सुत भारी । जब दर्शन दियो आप मुरारी ॥
दर्श करत उर आनन्द होई । आँख भमूंको जानू सोई ॥१९६॥
अन्तरध्यान जब हरजी भऐ । उर विलाप ज्यूं का त्यूं रऐ ॥
जबै भई आकाश जु बाणी । क्यूं विलाप करहैं अति प्राणी ॥१९७॥
ई समये इनो द्रस तोही । छूटे देह ब्रह्मा सुत होई ॥
पुनि भगवत को मन अधिकारी । मुनि नारद हुइ नाम तुम्हारी १९८॥
ले विश्वास केई दिन रहिया । छूटे देह ब्रह्मा सुत भइया ॥
नारद मुनि तुम नाम जु पाई । भगवत के मन भये सदाई ॥१९९॥
असी गिरा ब्रह्मा उचराई । सोहि व्यास मैं तोहि सुनाई ॥
असो सीत महातम भारी । सो तुम ल्यो हिरदा में धारी ॥२००॥

अब तुम सीत महातम गावो । तुमरा तन की तप्त मिटावो ॥
तबै व्यास आज्ञा यह मानी । सीत महातम महिमा गानी ॥२०१॥
तबै व्यास भागोत सुनायो । सीत महातम अधिको गायो ॥
तबही तप्त मिटी तन केरी । सीतल भये ताप सब गेरी ॥२०२
सीत प्रसाद व्यास तब पायो । जबही मन में आनन्द आयो ॥
ऐसो सीत महातम जाणू । पावे गावे तास कल्याणू ॥२०३॥
ब्रह्मा नारद व्यास को, यो सम्वाद विचार । ए सुण उर धारण करें, जन सुरतराम हुइ पार ॥२०४॥
पार भये भव सेतु तें, ताप मिटी सब सोइ । जन सुरतराम साँचो कहै, संत सीत सूं जोइ ॥२०५॥
सीत लेत बहुता तिर्या, सत्संगति गुण एह । जन सुरतराम सत्संग की, महिमा को नहि छेह ॥२०६॥
महिमा सत्संगत तणी, कहं लग बरणि जाइ । जन सुरतराम जग तिरण कूं ए टुक कही सुनाइ ॥२०७॥
सत्संग सार यह ग्रन्थ है, भिन भिन निर्णय कीन । जन सुरतराम अघ मिटत है, सुणत होइ प्रबीण ।२०८।
सत्संग सार जु ग्रन्थ कूं, सुणत कल्याण जु होइ । जन सुरतराम साँचो कहै बुद्धिमान ल्यो जोइ ॥२०९॥

आरती

आरति तेरी राम अभंगी । घट-घट चेतन आप असंगी ॥टेक॥
नहि निराकार नहि आकारा । राम जपे जप राम संचारा ॥१॥
शेष महेश्वर पार न पावे । नेति-नेति ही निगम बतावे ॥२॥
आदि अंत मध है इक सारा । जन सुरतराम सो राम पियारा ॥३॥१॥

आरति राम निरंजन स्वामी । जाण राय सबही घटनामी ॥टेक॥
चेतन शक्ति तुम्हारी होई । राम बिना दूजा नहि कोई ॥१॥
ब्रह्मा बिष्णु महेश्वर गावे । नारद शारद शेष जु ध्यावे ॥२॥
ऋषि मुनि योगी जन सारा । नेति-नेति ही निगम पुकारा ॥३॥
तिरलोकी में फिरत दुहाई । निराकर निर्लेप सदाई ॥४॥
जन सुरतराम राम तब पावे । ध्यान स्वरूप होइ माहि समावे ॥५॥२॥

卐

श्रीरामस्नेही संदेश के नियम

१. अध्यात्म विषयक, भगवद्भक्ति, भक्तचरित्र, आत्मोन्नति में सहायक, व्यक्तिगत आक्षेप रहित लेखों के अतिरिक्त अन्य विषयों के लेख 'संदेश' में प्रकाशित नहीं किये जाते। लेखों को घटाने-बढ़ाने और मुद्रित करने का अधिकार सम्पादक को है। अमुद्रित रचना बिना माँगे लौटायी नहीं जाती। रचनाओं में प्रकाशित मत के लिये सम्पादक उत्तरदायी नहीं है।

२. 'संदेश' का विशेषांक सहित, डाक व्यय के अतिरिक्त अग्रिम वार्षिक शुल्क भारत-वर्ष में ११.०० रुपये और भारतवर्ष से बाहर के लिये २१.०० रुपये (भारतीय मुद्रा) अर्थात् २ पौण्ड या ५ डालर नियत है।

३. 'संदेश' का आजीवन सदस्यता शुल्क १०१.०० रुपये है। साथ ही जो भी साहित्य संस्था द्वारा प्रकाशित होगा, उस पर दस प्रतिशत की अतिरिक्त छूट दी जावेगी।

४. 'संदेश' का नया वर्ष विक्रम सम्वत् के चैत्र मास (फूलडोल महोत्सव) से प्रारम्भ होता है। ग्राहक वार्षिक ही बनाये जाते हैं। इच्छुक सज्जन वर्ष में कभी भी ग्राहक बन सकते हैं।

५. वर्ष में कुल चार अंक प्रकाशित होते हैं, जिनके महिनों के नाम हैं—चैत्र, आषाढ़, आश्विन और पौष। चैत्र मास का अङ्क विशेषाङ्क होता है।

६. श्रीरामस्नेही संदेश में व्यवसायियों के विज्ञापन किसी भी दर में प्रकाशित नहीं किये जाते हैं।

७. वर्तमान में ब्रह्मलीन पं० सन्त श्रीरामप्रसादजी मित्रपुरा द्वारा लिखित 'श्रीरामस्नेही मतसिद्धान्त दर्पण' ग्रन्थ के ४ पृष्ठ एवं समाज पौराणिक-इतिहास-वेत्ता संत श्री गुरुमुखरामजी 'रामस्नेही' गंगापुर द्वारा लिखित 'श्रीस्वामी सन्तदासजी महाराज' लेखमाला के ३ पृष्ठ प्रत्येक अंक में दिये जा रहे हैं।

८. आगामी वर्षों में इस वर्ष की भाँति ही अन्यान्य अनुभव वाणियों का प्रामाणिक भावार्थ-टिप्पणी आदि सहित प्रकाशन की योजना है।

९. कार्यालय से दो-तीन बार जाँच करके ही श्रीरामस्नेही संदेश प्रत्येक ग्राहक को (उनके नाम तथा पूरे पत्ते पर) भेजा जाता है। यदि किसी को कोई अंक न मिले तो संदेश कार्यालय को सूचित करना चाहिये। इच्छित अंक, प्राप्य रहने की दशा में ही पुनः भेजा जा सकता है। अन्यथा नहीं।

१०. पत्ता–बदलने की सूचना कार्यालय में अवश्य देनी चाहिये। पत्र में ग्राहक संख्या का उल्लेख अवश्य करना चाहिये।

पंजीकृत संख्या—आर० एन० ४०२८८/८३

॥ राम ॥

श्रीरामस्नेही संदेश का उद्देश्य

भक्ति, ज्ञान, वैराग्य, धर्म और सदाचार सम्बन्धित लेखों द्वारा जन मानस को कल्याण के मार्ग की ओर अग्रसर करने का प्रयत्न करना।

अन्तर्राष्ट्रीय श्रीरामस्नेही सम्प्रदाय—शाहपुरा (मेवाड़) का साहित्य प्रकाशित करने के साथ-साथ आत्मोन्नति में सहायक भारतीय अध्यात्म जगत् के प्रत्येक विषय से सम्बन्धित लेखों का प्रकाशन करना।

वर्तमान स्वार्थपरक प्रदूषित वातावरण में स्वान्तः सुख प्राप्ति हेतु महापुरुषों द्वारा उपदिष्ट मार्ग को जन साधारण तक पहुँचाना।

भगवद्भक्ति, भक्त चरित, वैराग्य परक सदुपदेशों का प्रचार-प्रसार करना।

श्री रामस्नेही संदेश की सदस्यता ग्रहण करने के लिये सम्पर्क करें :—

१. भाई श्री गोविन्दरामजी लाबूरामजी काबरा; ५-राजस्थान सोसायटी—शाहीबाग, अहमदाबाद—३८०००४ (गुजरात)

२. श्री प्रवीणभाई उम्मेदरामभाई रेशमवाला; चांचवाशेरी, लिम्बडाचौक, सूरत—३९५००२ (गुजरात)

३. भाई श्री रमाकान्त रामकुँवारजी विजयवर्गीय, उदापुरा-इन्दौर—४५२००२ (म०प्र०)

४. भाई श्री इन्दुलालजी गोवर्धनलालजी शाह, सदर बाजार, संतरामपुर—३८९२६० गु.

५. भाई श्री रामनारायणजी रामस्नेही, १३/२/३३५, जाम्बी हनुमान मार्ग, कारवान साहू—हैदराबाद—५००००६ (आन्ध्र प्रदेश)

६. भाई श्री रामचन्द्रजी मोतीलालजी गुप्ता "प्रिन्सीपल" फतेपुरा (गुजरात) ३८९१७२

नियम आठ फार्म चार देखिये

श्री रामस्नेही-संदेश नामक हिन्दी त्रैमासिक के सम्बन्ध में विवरण।

१. प्रकाशन का स्थान—मल्होत्रा प्रिन्टर्स—नई दिल्ली २४ के लिये प्रिंटिंग सेन्टर चौड़ा रास्ता—जयपुर

२. प्रकाशन की आवृत्ति—त्रैमासिक।

३. मुद्रक एवं प्रकाशक का नाम—सन्त उत्तमराम रामस्नेही।
राष्ट्रगत सम्बन्ध—भारतीय।
पता—६/१, श्री रामद्वारा मार्ग, श्रीनिवासपुरी नई दिल्ली ११००६५,

४. सम्पादक का नाम—सन्त उत्तमराम रामस्नेही एवं वृजेन्द्र कुमार सिंहल
राष्ट्रगत सम्बन्ध—भारतीय।
पता—उपरोक्त।

५. उन व्यक्तियों के नाम-पते जो इस पत्रिका के मालिक हैं और जो इसकी पूँजी के साझीदार हैं। — श्री रामस्नेही प्रकाशन परिषद, श्री रामनिवास धाम, शाहपुरा (मेवाड़)

मैं सन्त उत्तमराम रामस्नेही संदेश कार्यालय के लिये इसके द्वारा यह घोषित करता हूं कि ऊपर लिखी बातें मेरी जानकारी और विश्वास के अनुसार यथार्थ हैं।

दिनाङ्क ११-३-८५, चैत्र कृष्णा ५ वि० सं० २०४१.

सन्त उत्तमराम रामस्नेही
सन्देश कार्यालय के लिये प्रकाशक